भारतीय समस्याएँ

और

उनका समाधान

लेखक :— जगदीशचन्द्र सर्राफ, प्रभाकर

भारतीय समस्याएँ और उनका समाधान

लेखक
जगदीशचन्द्र सर्राफ, प्रभाकर
भिवानी

प्रकाशक
अशोक-प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक
अशोक-प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य ३.००

मुद्रक
काशीनाथ गुप्त
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, वाराणसी–१

दो शब्द

भारत काफी दिनों तक दासता की जंजीरों में जकड़ा रहा और एक लम्बे संघर्ष के बाद आजाद हुआ। आजादी के उदय के साथ ही विभिन्न प्रकार की समस्याएँ देश के सामने आ खड़ी हुईं। उनमें से कई एक तो इतनी भयंकर थीं कि यदि हमारे नेता उनके प्रति सचेत न होते तो वे समूचे देश को निगल जातीं और फिर हम सैकड़ों वर्षों के लिए दासता के गहन गर्त में गिर जाते। जहाँ हमने कुछ समस्याओं का हल किया वहाँ आज भी देश के सामने अनेक समस्याएँ भयंकर रूप धारण किये राक्षसी के समान मुँह बाये खड़ी हैं। अगर हम जरा भी असावधानी करेंगे तो ऐसा मालूम देता है कि फिर विनाश के अतिरिक्त हमारे लिए कुछ शेष न रह जाएगा।

हर समझदार भारतवासी आज की हालतों से चिन्तित और व्याकुल है तथा चाहता है कि आज प्रत्येक भारतीय स्वार्थ छोड़-कर एवं एक दूसरे के साथ कंधे से कंधा मिलाकर वर्तमान परि-स्थितियों से जूझे। आज की समस्याओं पर ईमानदारी से विचार करना चाहिए। हममें से देश के बहुत से नागरिक इन समस्याओं पर ईमानदारी से विचार करते भी हैं, पर वे अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचा नहीं पाते।

हमारी वर्त्तमान समस्याओं ने मेरे जैसे एक साधारण व्यापारी और गृहस्थ को भी विचार करने के लिए मजबूर किया और यह पुस्तक इन्हीं विचारधाराओं का एक संग्रह है। मैं अपने पाठकों से नम्र निवेदन करना चाहता हूँ कि न तो मैं कोई राजनीतिज्ञ

हूँ और न कोई लेखक ही। इसलिए हो सकता है कि उन्हें मेरी भाषा में कुछ त्रुटियाँ दिखाई दें। पर ये विचार हृदय की पुकार हैं, अतः विश्वास है कि ये आपके हृदय को अवश्य अपनी तरफ आकर्षित करेंगे।

पुस्तक में किसी धर्म, सम्प्रदाय या राजनैतिक दल का पक्ष न लेकर सर्वथा निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसके साथ ही जिन मित्रों, लेखकों और पुस्तकों आदि से मेरे मौलिक विचारों ने मेल खाया है उनको मैंने यथास्थान प्रकट किया है।

'आर्थिक संगठन', 'अर्थशास्त्र का सरल अध्ययन', 'नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त तथा भारतीय संविधान और प्रशासन' आदि पुस्तकों से मुझे विशेष सहायता मिली है, अतः मैं उनके लेखकों का विशेष आभारी हूँ।

इन सबके अतिरिक्त मैं अपने सुयोग्य अध्यापक श्री देशबन्धु गुप्त एम० ए० शास्त्री, विद्यावाचस्पति का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय लगाकर पुस्तक को पढ़ा और इसकी भाषा तथा भावों में उचित परिवर्त्तन तथा पथ-प्रदर्शन किया। आपने मेरी प्रार्थना पर पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की है उसके लिए मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

इन सब बातों के साथ मैं पुनः अपने सुयोग्य पाठकों से विनम्र प्रार्थना करूँगा कि वे पुस्तक को पढ़ें और अपने विचारों से अवगत कराकर मुझे अनुगृहीत करें। इस पुस्तक से देशवासियों को कुछ भी लाभ पहुँचेगा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

भिवानी (हरियाणा)
दीपावली १–११–६७

विनीत—
जगदीशचन्द्र सर्राफ

भूमिका

विश्व-गुरु कहलानेवाला हमारा यह भारत लगभग एक हजार वर्ष तक विदेशियों और विधर्मियों का गुलाम रहा। इस परतन्त्रता के काल में भी इस देश में विद्वानों, धनियों, जांबाज वीरों और वीरांगनाओं की कमी नहीं थी। धन-धान्य की दृष्टि से भी यह देश 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। इस काल में कबीर, तुलसी और सूर जैसे अनुपम कवि; साँगा, प्रताप, शिवा और गुरु गोविन्दसिंहजी जैसे अनोखे वीर; लक्ष्मीबाईजी जैसी वीरांगना तथा दयानन्द जैसे महान् सुधारक होने पर भी क्या कारण था कि हम परतन्त्र ही रहे। यदि हम इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो पता लगता है कि जहाँ हमारी राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक या धार्मिक अवस्थाएँ दूषित थीं जहाँ स्वार्थपरता और फूट का राज्य था, वहाँ हमारे राष्ट्र के शरीर का हर घटक खराब हो चुका था, और वह घटक होता है प्रत्येक व्यक्ति और उसका वैयक्तिक जीवन। जब तक किसी राष्ट्र का हर व्यक्ति राष्ट्र और समाज के दृष्टिकोण से अपना निर्माण नहीं करेगा अपने आपको राष्ट्र और समाज का अंग नहीं समझेगा तब तक कोई भी राष्ट्र या समाज उन्नति न कर सकेगा। हमारे परतन्त्रता-युग में कुछ नेता तो हुए, पर लोगों ने उन्हें अवतार मानकर उनकी पूजा करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझी और अपने तथा अपने समाज और राष्ट्र के बारे

में कुछ भी नहीं सोचा। जब व्यक्ति ही खोखले हो जायँ तो समाज स्वयं ही निर्जीव और खोखला हो जाता है।

अब हम स्वतन्त्र हैं। अब इस देश के सम्बन्ध में हर व्यक्ति को सोचना चाहिए। यह सोचने का ढंग स्वार्थपरक न होकर सामाजिक और राष्ट्रीय होना चाहिए। हर एक को देश की राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक अवस्था पर विचार करना चाहिए। जहाँ भी कोई त्रुटि या कमी हो उसे दूर करने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

आज राष्ट्र के समक्ष अनेक समस्याएँ अपना भयंकर मुख बाये खड़ी हैं और यदि इस समय समूचा राष्ट्र न चेता तो ये हमें निगल जाने को तैयार हो चुकी हैं। हम वर्तमान काल को भारत का समस्या-युग कह सकते हैं।

समस्याओं पर हर समझदार व्यक्ति विचार करता है। इस पुस्तक के लेखक श्री जगदीशचन्द्र सर्राफ भी एक समझदार नागरिक की भाँति देश की वर्तमान अवस्था से चिंतित हैं। उनके अन्तरतम की वेदना छिपी न रह सकी और उन्होंने अपनी समझ के अनुसार वर्तमान समस्याओं पर विचार करके उसका समाधान भी किया है। मैंने आद्योपान्त इस पुस्तक को पढ़ा है। और मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं कि यह पुस्तक हर भारतीय के लिए पथ-प्रदर्शन का काम करेगी।

श्री जगदीशचन्द्रजी को हम २० वर्ष से जानते हैं। वे बड़े गम्भीर और सुलझे हुए व्यक्ति हैं। व्यापार के कामों में अकेले तथा अत्यन्त उलझे एवं व्यस्त होने पर भी इन्होंने अपने अध्ययन और लिखने के लिए इतना समय निकाल लिया यह इनकी ही हिम्मत है। जहाँ जगदीशजी से मेरे व्यक्तिगत सम्बन्ध

घनिष्ठ हैं वहाँ मुझे यह भी गौरव है कि ये मेरे प्रिय और श्रेष्ठ शिष्यों में से हैं।

आज मेरा हृदय हर्ष से प्रफुल्लित है कि गृहस्थी और व्यापार की समस्याओं में उलझा हुआ भी हमारा एक प्रियजन भारत की समस्याओं पर दृष्टि डाल कर उनके समाधान की चेष्टा करता है।

पुस्तक को मैं हर प्रकार से उपयोगी और सामयिक समझता हूँ और आशा करता हूँ भारत का हर नागरिक इन समस्याओं पर विचार करता हुआ इससे लाभ उठावेगा।

शान्ति-निकेतन, भिवानी
८ नवम्बर १९६७

देशबन्धु गुप्त, एम. ए. शास्त्री
विद्यावाचस्पति, भिवानी

विषय-सूची

जनसंख्या

किसी भी देश की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि हमें उस देश की जनसंख्या, क्षेत्रफल, प्राकृतिक साधन आदि बातों की पूरी जानकारी हो। इसके साथ ही हमें यह भी पता लगे कि देश की वर्तमान आबादी कितनी है और जनसंख्या के आधार पर यह बढ़ी है या घटी है। हमें इसके क्षेत्रफल का भी पता होना चाहिए इसके प्राकृतिक साधनों का ज्ञान होना चाहिए ताकि हम उन्हीं आँकड़ों के आधार पर आगे बढ़ते चले जाएँ। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए हमारे देश में जनगणना शुरू की गई। सर्वप्रथम भारत में जनगणना सन् १८७२ ई० में शुरू की गई। उसके बाद १८८१ में। उसके पश्चात् हर दसवें वर्ष जनगणना होती आई है, और यह १९६१ तक हो चुकी है।

सन् १८९१ से १९२१ ई० तक के ३०० वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि बहुत ही धीमी तथा अनियमित गति से हुई थी। यह वृद्धि केवल १२२ लाख थी जबकि १९२१ से १९३१ तक के १० वर्षों में वृद्धि २७४ लाख हो गई (पहले के ३० वर्षों की वृद्धि के दो गुणा से भी अधिक) थी।

सन् १८९१–१९०० के दस वर्षों में जनसंख्या बढ़ने के स्थान पर ४ लाख कम हो गई थी। क्योंकि इन दस वर्षों में देश के विभिन्न भागों में अकाल, प्लेग, मलेरिया आदि महामारियों के कारण बहुत से लोगों की मृत्यु हो गई थी।

सन् १९०१ से १९१० तक के अगले वर्षों में यह वृद्धि १३५ लाख हो गई। क्योंकि इस समय खेती की दशा सामान्य रही और देश में कोई बड़ा अकाल या महामारी नहीं हुई। इस कारण यह क्रम इसी प्रकार से कभी ज्यादा और कभी कम होता गया।

सन् १९२१ से १९६१ तक के चालीस वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि नियमित तथा अवाध गति से बढ़ी है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस अवधि में जहाँ जन्म-दर ५ या ३ वर्ष के अन्तर से थी वह अब घटकर अधिकांश बच्चे २ या १ वर्ष के अन्तर से होने लग गये हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य में कुछ सुधार होने से मृत्यु-दर में कुछ कमी हुई है और विशेषतः अकाल तथा महामारियों से अकाल होने वाली मृत्युओं की संख्या बहुत कम रही है। फलस्वरूप १९२१ से १९६१ के बीच जनसंख्या २४·८१ करोड़ से बढ़कर ४३·८० करोड़ हो गई। सन् १९५१ से १९६१ के बीच लगभग ८ करोड़ बढ़ी है। (वर्तमान समय पर प्रतिवर्ष लगभग १० लाख व्यक्तियों की वृद्धि) भारत जैसे एक अल्पविकसित देश में जनसंख्या का इतनी तेजी से बढ़ना बड़ी चिन्ता का विषय है।

इसलिए आज के युग में आबादी की समस्या एक प्रमुख समस्या बन गई है। यह केवल भारतवर्ष के लिये ही नहीं अपितु समस्त विश्व के लिए है। अभी पिछले दिनों इसी समस्या को लेकर एक अधिवेशन हुआ था जोकि १० दिन तक चला था और इसके लिए बड़ी गम्भीरता से विचार-विमर्श किया गया था कि हम इस पर किस प्रकार काबू पा सकते हैं। आबादी-विशेषज्ञों का कहना है कि एक रोज ऐसा समय आयेगा जबकि मानव को इस पृथ्वी पर रहना तक दूभर हो जायगा। केवल मानव को

रहने के लिए ही नहीं अपितु उसके पालन-पोषण के लिए खाद्य-सामग्री और आवागमन वगैरह सब साधनों की आवश्यकता होती है। इसलिए जरूरी है कि यह नियन्त्रित रूप में बढ़े।

इसके साथ ही भारत एक गरीब देश है। यहाँ आबादी का बढ़ना वरदान नहीं, अपितु अभिशाप का द्योतक है। इस मौजूदा समय में भारत में लगभग ५०॥ करोड़ हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि लोग हैं। हमारी तीन पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं। चौथी योजना बनकर तैयार हो गई है। हमारी सरकार ने इस दिशा में कुछ सरसरी रूप से गौर भी किया है तथा इसको एक प्रमुख समस्या समझते हुए इसके उपायों की चेष्टा की है। परन्तु सन्तोषजनक रूप से न तो कोई कार्य ही कर सकी है और न कोई ठोस और कारगर उपाय बना सकी है। यदि हमें इस समस्या से छुटकारा पाना है तथा देश को इस बीमारी से बचाना है तो अब इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारी आबादी कम से कम ५० वर्ष के लिए इससे और अधिक नहीं बढ़नी चाहिए। यह सर्वविदित है कि किसी भी देश की उन्नति उसकी आबादी पर निर्भर नहीं अपितु मानव को वास्तविक मानव बनाने में है। इसके साथ ही आज हम देखते हैं कि हम अशान्त, उदासीन तथा भाररूप जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसा क्यों ? क्योंकि बगैर सीमा (LIMIT) के चल रहे हैं। हमारा कोई भी कार्य व्यवस्थित नहीं क्योंकि अधिकांश भारतीय निरक्षर हैं। उन्हें यह ज्ञात नहीं कि हमारे पहले की आर्थिक व्यवस्था ठीक है अथवा नहीं। हम अपने आप शादी कराने जा रहे हैं इसके पहले हम स्वावलम्बी हो गये हैं या नहीं हैं।

आगे कार्यप्रणाली के आसार कैसे हैं। हम इन सब बातों की

तरफ ध्यान न देकर केवल भाग्यवाद पर भरोसा करने लग जाते हैं, हमारे पास जो कुछ है वह तथा शादी होना, बच्चों का होना, रोजगार मिलना या न मिलना इत्यादि भगवान की देन समझते हैं। हम यह नहीं सोचते कि हमारा भी कुछ कर्त्तव्य है। चाहे हम कुछ भी मानें परन्तु उसके ही ऊपर निर्भर न होकर हमें अपने एक ही लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए तथा शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए आगे बढ़ना चाहिए। इस प्रकार से हम अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ेंगे और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे। कहना न होगा कि अनैतिकता, भ्रष्टाचार, निर्धनता, दुश्चरित्रता, अयोग्यता, निरक्षरता, बेकारी, रहन-सहन तथा आवागमन के साधनों की कमी तथा खाद्य-समस्या ये सब चरम सीमा पर पहुँच गई हैं। सरकार तथा सामाजिक संस्थाएँ इनको हल करने के अनेक प्रकार के प्रयत्न कर रही हैं। परन्तु इनका उन्मूलन नहीं होता। कारण कि हम योजना के अन्दर प्रोग्राम (Programme) बनाते हैं कि इतना अन्न अधिक उपजाना है इसलिये कृषि को प्राथमिकता देते हैं, परन्तु योजना पूरी भी नहीं होने पाती कि उधर उससे भी ज्यादा नई आबादी और बढ़ जाती है और हमारी योजना सफल नहीं होने पाती। यदि एक-एक समस्या को हम लें और उस पर विचार करें तो हमें स्पष्ट मालूम होगा कि इस आबादी के बढ़ने के कुचक्र ने हमें कहाँ लाकर खड़ा कर दिया है, पिछली शताब्दी में और इस शताब्दी के पहले २० वर्षों तक भारत खाद्यान्न का निर्यातकर्ता देश था। इसके बाद भारत खाद्यान्न का आयातकर्ता देश हो गया। और तब से यहाँ का आयात निरन्तर बढ़ रहा है। १९२१–२५ की अवधि में प्रतिवर्ष औसत आयात १·६ लाख टन थी। १९३६–४० में यह बढ़कर

१३.८ लाख टन हो गई थी और १९४७-५२ में यह ३२.७ लाख टन हो गई थी। इस प्रकार से आज तक यह उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है और हम इसका हल नहीं पा रहे हैं। इसके साथ यह नहीं कि हमने खाद्यान्न के साधन नहीं बढ़ाये हैं। हम विदेशों से कितना ऋण लेकर कितनी योजनाएँ सिंचाई की बना चुके हैं तथा बन रही हैं जोकि हमारे सामने हैं। जैसे : भाकड़ा बान्ध, तुङ्गभद्रा, नागार्जुन, हीराकुंड बान्ध, चम्बल-योजना, रिहन्द-बान्ध आदि तथा कुएँ तालाब वगैरः जोकि लाखों एकड़ जमीन की सिंचाई करती हैं, परन्तु यह समस्या हल नहीं होती और हमें फिर विदेशों की तरफ ताकना पड़ता है। इसी प्रकार से आप कोई भी क्षेत्र लें। शिक्षा का, बेकारी का, रहन-सहन, आवागमन वगैरः का। अपनी योजना के अनुसार कार्य करते हुए भी हम हर दिशा में अभाव ही देखते हैं। पिछली योजनाओं में कितने स्कूल, कालिज, विश्वविद्यालय, रोजगार के लिए नये उद्योग-धन्धे, मकान, सड़कें, डाकखाने, बिजली, नल वगैरः की व्यवस्था की गई है, परन्तु हम देखते हैं कि देश फिर भी सम्भल नहीं रहा है। हम प्रतिदिन अशान्त प्रेम-भाव से दूर छल-कपट में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आज के आर्थिक नियोजन (Economic Planning) के युग में कोई भी आर्थिक योजना तैयार करते समय पहले यह जानना पड़ता है कि जनसंख्या कितनी है, वह किस दर से बढ़ रही है। उसके लिए कितना अन्न-वस्त्र, रहने के लिए मकान आदि चाहिए। इस प्रकार कई एक दृष्टिकोणों से देश की जनसंख्या का अध्ययन आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। आज यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यदि हमें देश में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, अशिक्षा निर्धनता, नैतिक पतन, खाद्यान्न की समस्या, अयोग्यता आदि को खत्म करके उन पर काबू पाना है

तो हमें अभी से ही आबादी को नियन्त्रित करना होगा। अन्यथा हमारे सब उपाय निरर्थक सिद्ध होंगे।

कुछ लोगों का विचार है कि जब हमें भगवान् ने एक मुख दिया है, दो हाथ-पाँव भी दिये हैं तब हम प्रकृति के नियमों का उल्लंघन क्यों करें, क्यों परिवार-नियोजन के लिए लूप (Loop) आपरेशन वगैरह करायें। हमारे लिए प्राकृतिक साधन भी इतने हैं कि अभी और आबादी भी यहाँ खप सकती है। परन्तु यदि हम इन सब बातों पर ध्यान करें तो हम देखेंगे कि आज देश में लगभग ५० करोड़ आदमी हैं और उनमें से चन्द लोगों को छोड़ कर आज उनके पास न तो रहने को स्थान है न खाने को अन्न, न पहनने को वस्त्र, न शिक्षा का प्रबंध, और न आर्थिक हालत ही ठीक है। कोई भी व्यवस्था ठीक नहीं तथा साधन भी उपलब्ध नहीं। तब इन अयोग्यों को बढ़ाकर क्या करना है। जब तक आज जो आदमी मौजूद हैं इनकी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति तथा सही विकास नहीं होता है तब तक और बढ़ना सिवाय खतरे के और कुछ नहीं। और ऐसा करने के लिए जहाँ हमारे कुछ धार्मिक भाइयों की यह मान्यता कि हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं करें तो यह भी संभव नहीं कि सब संयम से इतना लम्बा समय व्यतीत कर सकें। फिर इन मान्यताओं की अपेक्षा यदि हम इन कृत्रिम साधनों के द्वारा भी परिवार-नियोजन का पालन करें तो इतना दोष नहीं जितना दोष जनसंख्या के बढ़ने में है।

जनसंख्या में नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित उपाय किये जायें :—

(१) परिवार नियोजन

परिवार-नियोजन का व्यापक रूप से प्रचार किया जाए। इसकी हमारे यहाँ अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि अधिकांश जनता अशिक्षित है। परिवार-नियोजन का अर्थ है—परिवार का जान-बूझकर अपनी इच्छा के अनुसार सीमा में और उचित कालान्तर के पश्चात् बच्चे उत्पन्न करना। यह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। व्यक्ति के लिए इसका आर्थिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी दोनों दृष्टिकोणों से महत्व है। क्योंकि कम सन्तान उत्पत्ति से स्त्री और पुरुष दोनों का स्वास्थ्य ठीक रहेगा तथा आर्थिक हालत और उनका पालन-पोषण सुचारु रूप से हो सकेगा। इसलिए आवश्यकता है कि सरकार की तरफ से प्रत्येक व्यक्ति को उसे अधिक सन्तान पैदा करने की अनुमति न हो। इसके अतिरिक्त यदि कोई अधिक सन्तान का इच्छुक हो तो उसके ऊपर अतिरिक्त कर लगा दिया जाय ताकि वह सन्तान हमारी योजना में तथा समाज के ऊपर भार और बाधक न हो। यदि इन तीन सन्तान की पैदाइशों के अन्तर्गत कोई सन्तान गुजर जाए तो उसको पैदाइश की अनुमति दी जावे, परन्तु तीन हो चुकने के बाद नहीं।

(२) नियोजन के उपाय

इस प्रकार के साधन बनाये जावें जो इसके लिए कम खर्च के हों, जैसे—आजकल कोई व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) आपरेशन कराता है तो उसका काफी खर्च लग जाता है। इसकी जगह इस प्रकार के साधन बनाए जायँ कि वहाँ इस कार्य के लिये खर्च बहुत कम हो तथा प्रत्येक के लिए सुलभ हो। प्रायः प्रत्येक जिले में इसके लिए १ या इससे अधिक स्पेशल हॉस्पिटल हों। जहाँ गरीब अमीर भी आपरेशन करा सकें। लूप

का भी प्रचार किया जावे। जैसे इसके चढ़ाने से बच्चे काफी समय के अन्तर से पैदा हो सकें क्योंकि एक तो बच्चे की परवरिश ठीक रूप से हो जायेगी। दूसरे आपको बच्चों का भार भी कम मालूम होगा। वैसे लूप प्रणाली कोई ऐसी चीज नहीं जो हमेशा काम दे सके। उसके लिए अभी प्रचलित अप्राकृतिक साधनों में आपरेशन ही अधिक ठीक है।

(३) देर से शादी

शादियाँ भी लड़के-लड़कियों की बालापन में न हो तथा उन्हें संयमता के फायदों का विशेष रूप से ज्ञान कराया जाना चाहिए। खान-पहरान भी देश की जलवायु के हिसाब से सात्त्विक और सादा हो। शादी के लिए आयु निर्धारित हो कि इससे पहले कोई स्त्री-पुरुष शादी न करा सके।

(४) शिक्षा

आज देश में शिक्षा का अभाव होने से यहाँ की अधिकांश जनता परिवार-नियोजन की आवश्यकता, महत्त्व व विधियों से पूर्णतया परिचित नहीं है। हम देखते हैं कि आज हालत यह है कि जो लोग ८-१० बच्चों का पालन कर सकते हैं वे दो-तीन बच्चों के बाद आपरेशन करा लेते हैं। इसके विपरीत जो निर्धन लोग या अशिक्षित वर्ग है वह एक भी बच्चे का पालन-पोषण न करने योग्य होने पर भी ८ या १० बच्चों को पैदा कर डालता है जिससे अयोग्यता का वातावरण समाज पर और अधिक बढ़ जाता है। शिक्षित व्यक्ति ही अपने प्रति, परिवार के प्रति तथा समाज के प्रति ठीक प्रकार से अपनी जिम्मेदारी को समझते हैं।

इसलिये हम देखते हैं कि शिक्षित व्यक्ति एक तो देर से विवाह कराते हैं और अक्सर स्वावलम्बी होकर करते हैं।

दूसरी ओर विवाह के पश्चात् कम बच्चे उत्पन्न कर परिवार का आकार छोटा रखना चाहते हैं जिससे कि वे अपना और बच्चों का रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा का स्तर ऊँचा रख सकें।

(५) उत्प्रवास

भारत की फालतू जनसंख्या को विदेशों में भेजना भी एक उपाय है। परन्तु आज की राजनैतिक गतिविधियों को देखते हुए यह ठीक नहीं है क्योंकि दक्षिण अफ्रीका, लंका, बर्मा, नेपाल इत्यादि दूसरे देशों में लोगों का रहना मुश्किल हो रहा है।

(६) आत्मसंयम

जो लोग आत्मसंयम के द्वारा इसका पालन करें वह बहुत ही अच्छा है। प्रकृति के नियम के अनुसार भी है परन्तु इसका पालन हर व्यक्ति के लिए असम्भव है। आत्मसंयम से सर्वप्रथम यह लाभ होता है कि सन्तान बलिष्ठ होती है वह कभी क्षीण एवं रुग्ण नहीं होती। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि दम्पति की दिनचर्या नियमबद्ध एवं सुचारुरूपेण सरल हो। इससे खाद्य-समस्या भी कुछ हद तक हल हो सकती है।

(७) विशेषज्ञों का एक ऐसा कमीशन नियुक्त हो जो परिवार-नियोजन के लिए इनके इलावा और अन्य उपाय खोज निकाले, जैसा कि विदेशों में हो रहा है। जैसे कि कोई दवा वगैरह का प्रयोग या इन्जेक्शन काम दे सके।

(८) मनोरंजन के साधन इस प्रकार के बनाये जाएँ जिनसे आम जनता कुछ शिक्षा ग्रहण कर सके। वे खर्चीले न हों और विषयों से प्रवृत्ति दूर कर सके। हम देखते हैं कि गरीब लोगों का मनोरंजन केवल मात्र यही रह गया है।

(१) संयुक्त परिवार-प्रणाली (Joint Family System)

भारत में अभी तक संयुक्त प्रणाली प्रचलित है। इसमें विवाह करने या बच्चे उत्पन्न करने से पूर्व दम्पति यह नहीं सोचते कि उन बच्चों का भरण-पोषण किस प्रकार होगा? संयुक्त परिवार के संयुक्त साधन उनके भरण-पोषण के लिए उपलब्ध होते हैं। व्यक्तिगत प्रणाली में ऐसा नहीं होता। वह व्यक्ति जो गृहस्थी में प्रवेश करता है और परिवार से अलग हो जाता है वह प्रायः अपनी आर्थिक योजना के अनुसार बच्चों का तथा घर का खर्च निगाह में रखते हुए सब कार्य करेगा।

इस प्रकार आवश्यक है कि हम इस कार्य की तरफ पूर्ण रूप से ध्यान रखते हुए इस पर जल्दी से जल्दी नियन्त्रण करें क्योंकि यह एक प्रमुख समस्या है। लोगों को इसका हर पहलू समझा कर उनसे इसका पालन कराया जाये और कानून बनाया जाये। इस प्रकार हमारी योजनायें सफल होंगी और हम अपना जीवन सुख-शान्ति का बना सकेंगे। विदेशों की तरफ हमें ताकना नहीं पड़ेगा।

शिक्षा-पद्धति

यह निर्विवाद है कि आजादी आने के बाद भी हमारे देश में शिक्षा जो कि मानव-समाज का एक आवश्यक अंग है उसकी यथोचित प्रगति नहीं हो सकी है। शिक्षा के क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। कोई भी देश तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक कि उसकी शिक्षा-प्रणाली समीचीन ढंग से न हो। शिक्षा किसी भी राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी है। जिस प्रकार रीढ़ की हड्डी को शरीर के अन्दर एक बहुत महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है उसी प्रकार शिक्षा का स्थान समाज में होता है। परन्तु खेद का विषय है तथा सरकार की ढीली और शिथिल नीति का कारण है कि आज भारत के अन्दर शिक्षा तो दूर, अक्षर-ज्ञान भी लोगों में नगण्य हो गया है। पश्चिम के देश तथा दूसरे प्रगतिशील देश आज शिक्षा के क्षेत्र में काफी उन्नति कर चुके हैं। अमेरिका, रशिया, ब्रिटेन, फ्रान्स तथा इसी प्रकार से दूसरे मुल्क जहाँ आज साक्षर ज्ञान में ८०% ९०% कहीं-कहीं ९५% तथा ९८% तक पहुँच गये हैं वहाँ भारत उनकी अपेक्षा काफी पीछे है।

साथ ही लोकतन्त्र में शिक्षा का बड़ा भारी महत्व होता है। शिक्षा से ही मनुष्य में अच्छे गुणों का विकास होता है तथा शिक्षा के द्वारा मनुष्य में सहानुभूति, प्रेम और त्याग उत्पन्न होता है। शिक्षा के बगैर प्रजातन्त्र का पौधा नहीं फल सकता।

गुप्तकाल जोकि भारत के इतिहास का 'स्वर्णयुग' कहा जाता है। इस समय शिक्षा की काफी प्रगति हुई। शिक्षा का प्रचार सर्व-साधारण में हुआ। तक्षशिला, नालन्दा तथा सारनाथ के विश्वविद्यालय स्थापित हुए। इनमें विदेशी छात्र भी पढ़ने के लिये आया करते थे। परन्तु बाद में देश दासता की जंजीरों में जकड़ने से और मुगलकालीन शासन आने से अन्य हानियों के साथ-साथ शिक्षा का स्तर भी दिन-प्रति-दिन गिरता चला गया। अंग्रेजों के आने से पहले भारत में शिक्षा का काम राज्य की ओर से नहीं होता था। मन्दिरों वगैरः में पाठशालाएँ होती थीं और ये संस्थाएँ धनी लोगों अथवा राजाओं के दान पर चलती थीं। इनमें ज्यादा-तर शिक्षा धार्मिक विषयों पर ही होती थी। गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों पर पठन-पाठन नगण्य था। बाद में राजा राममोहन राय जैसे नेताओं ने कोशिश करके इसमें काफी सुधार किये और शिक्षा राजनीति का विषय बन गई। हालां कि अंग्रेजों के शासन-काल में भारत में शिक्षा-सुधार के काफी प्रयत्न हुए किन्तु दो सौ साल के उस युग में बहुत कम भारतीय शिक्षित हो सके। वास्तव में शिक्षा-सुधार के सभी प्रयत्नों के पीछे ब्रिटिश शासकों का स्वार्थ छिपा हुआ था। उन्हें अपने राज्य-कार्य के लिये कुछ शिक्षित हिन्दुस्तानियों की आवश्यकता थी। परन्तु फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम बनने से तथा पाश्चात्य स्तर पर शिक्षा-प्रणाली के होने से भी भारत में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। इसी बौद्धिक उन्नति ने आगे चलकर कई प्रकार के आन्दोलनों को जन्म दिया। लोगों में सामाजिक जागृति आई। परन्तु आजादी आने के पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में जो आधारभूत मूल परिवर्तनों की आवश्यकता थी, वह नहीं हो सकी है। हम

करीब-करीब उसी हिसाब से चल रहे हैं जोकि अंग्रेजों के समय में था। यह ठीक है कि कुछ स्कूल, कालेज वगैरः और खुले हैं। परन्तु वे भी इतनी मात्रा में नहीं खुले हैं जितने की आज हमें आवश्यकता है। आबादी की दृष्टि से जहाँ हमारे यहाँ करीब पाँच लाख गाँव हैं तो यदि हम प्रत्येक गाँव में एक स्कूल का भी हिसाब लगायें तो हमारे यहाँ अभी काफी गाँव ऐसे हैं जहाँ एक भी शिक्षा संस्था नहीं है। तकनीकी, प्रशिक्षण-कला और विज्ञान के डिग्री-कालेजों, उच्च विद्यालयों की तो अत्यन्त आवश्यकता है ही, परन्तु हम अभी तक तो प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय भी सब जगह स्थापित नहीं कर सके हैं। हालांकि यह मानना होगा कि हमारे पास इसके लिये धन की कमी है और जो खर्च इस पर होना चाहिये वह हमारी सरकार अर्थाभाव के कारण इस पर खर्च नहीं कर सकती परन्तु फिर भी यदि हम दृढ़ता, उत्साह, कठोर परिश्रम और आज जो फिजूलखर्ची तथा विदेशी ढंग की बड़ी-बड़ी बिल्डिगें बना कर खड़ी कर देते हैं और कहीं एक साधारण कमरा भी बैठकर पढ़ने के लिये नहीं है। भारत जैसे गरीब देश के लिये इस प्रकार के शिक्षण-केन्द्र बनाना देश को और अधिक गरीब बनाना है। इसलिये आवश्यकता है कि हम कम से कम लागत के सादे रूप के शिक्षण-केन्द्र बनायें जहाँ विद्यार्थी भी सादगी की तरफ आकर्षित हों। इसके अतिरिक्त हमारे यहाँ आज जो शिक्षा-प्रणाली है वह आर्थिक दृष्टि से काफी महँगी है और ठीक नहीं है।

उनके इस प्रकार के नियम और शिक्षण-अध्ययन इस प्रकार से हैं कि विद्यार्थी B. A. के बाद भी अपने को स्वावलम्बी अनुभव नहीं कर सकता। जबकि भारत में B. A. तक की शिक्षा दिलाना एक परिवार के लिये बहुत ही मुश्किल की चीज है।

लड़का यौवन-काल में प्रवेश कर जाता है तथा उस पर पारिवारिक आर्थिक भार का कार्य मजबूरन आ पड़ता है। वह अपने आपको इस समय असहाय पाता है। फिर क्यों नहीं इस प्रकार का शिक्षण-कार्य-क्रम चलाया जाये कि एक मैट्रिक पास लड़का अपने परिवार पर भार रूप न रहे। इसलिये आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे हमारा नैतिक स्तर, मानसिक बल, बौद्धिक विकास और आर्थिक स्तर ऊँचा हो। जिसको प्राप्त करके हम स्वावलम्बी हो सकें। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य एक आदर्श नागरिक बनाना होना चाहिए। वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य के अन्दर छिपी हुई शक्तियों को प्रकाश में ला सके। कुछ विषयों को जान लेना ही शिक्षित हो जाना नहीं कहलाता। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो हमारे ऐसे विचार बनाये कि जिनके द्वारा हमारे जीवन, मनुष्य और चरित्र इन तीनों के निर्माण में योग दे सके। कुछ विदेशी शब्दों को रटकर या किताबों को पढ़कर यदि हम यह कहें कि हम शिक्षित हो गये या हमने शिक्षा ग्रहण कर ली तो यह गलत है। इससे तो आप केवल कोई लिपिक, इन्सपेक्टर या डिप्टी कलक्टर आदि का पद या नौकरी हासिल कर सकते हैं। परन्तु यह सब तो केवल जीविका का ही साधन हुआ। हमें आवश्यकता ऐसी शिक्षा की है जो जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाये, मानसिक बल दे, राष्ट्रीयता की भावना प्रदान करे, हमारे चरित्र और संस्कृति को बढ़ाये तथा ऊँचा उठाये। आदर्श शिक्षा वह शिक्षा है जो हमें अपने प्रति, परिवार के प्रति और समाज के प्रति जो हमारे कर्तव्य हैं उनकी ओर अग्रसर करे। हम उन आदर्शों पर चलने की सामर्थ्य प्राप्त करके उनको पूरा करते चले जायें। हम भयंकर से भयंकर विपत्तियों में अपने धर्म और कर्तव्य को न भूलें। हमारा दृष्टिकोण

संकुचित न हो। हमारे अन्दर जातिवाद तथा सम्प्रदायवाद न हो। हम मानव को मानव की दृष्टि से देखें। यह नहीं कि उससे घृणा करें। हमारे अन्दर ऊँच-नीच के भाव न हों तथा हम किसी भी परिस्थिति में अपने आपमें अहंकारत्व न आने दें। इसलिये हमारी शिक्षा-प्रणाली में निम्नलिखित सुधारों की आवश्यकता है—

(१) अध्ययन के लिये पर्याप्त मात्रा में स्कूल-कालिज हों। जिनपर आधुनिक रूप से विशेष खर्च न किया गया हो, मकानात बहुत सादे हों।

(२) प्रत्येक व्यक्ति के लिये शिक्षा अनिवार्य हो। चाहे वह कोई भी धर्म, मजहब, जाति, गरीब-अमीर तथा अन्धा, गूँगा, बहरा कोई भी हो।

(३) प्रौढ़ों के लिये भी शिक्षण-केन्द्र होने चाहिए।

(४) लड़के-लड़की की पढ़ाई का प्रबन्ध पृथक्-पृथक् हो।

(५) प्रत्येक प्रकार की शिक्षा का पूर्ण रूप से प्रबन्ध हो जैसे—डाक्टरी, आयुर्वेदिक, इञ्जीनियरिङ्ग, वनस्पति-विज्ञान और मनोविज्ञान आदि।

(६) अध्यापक को सरकार की तरफ से एक मान्यता-प्राप्त उपाधि प्राप्त हो। जिस प्रकार से आज B. T, B. Ed., O. T., L T. इत्यादि करके अध्यापक बनाये जाते हैं। इसके साथ ही अध्यापक वे ही बनाये जायें जिनका व्यक्तित्व तथा चरित्र अच्छा हो।

(७) प्रत्येक स्कूल-कालिज में बौद्धिक शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य हो। इसके द्वारा उनके अन्दर किताबी ज्ञान के साथ-साथ आत्मिक ज्ञान और राष्ट्रीयता की भावना पैदा हो सकेगी। आज जो छात्र-आन्दोलन चला रहे हैं उनका एक यह भी कारण है कि उनको बौद्धिक ज्ञान नहीं मिल रहा है जिससे वे शीघ्र ही जोश

के साथ होश खो बैठते हैं। इस प्रकार वे गुमराह हो जाते हैं। यदि उनको इस प्रकार की विचार-धारा मिलती तो वे अपने प्रति और राष्ट्र के प्रति सही मार्ग-दर्शन करते। उनके अपरिपक्व विचार उनको जल्दी ही हिंसक विचारों की तरफ अग्रसर कर देते हैं। इसके साथ ही उनकी जो उचित माँगें हैं वे भी इस प्रकार के वातावरण और आन्दोलनों से धूमिल हो जाती हैं। बौद्धिक ज्ञान के द्वारा साथ में बुरी संगति से बचना, गन्दे सिनेमा तथा आवारा घूमने की आदत, धूम्रपान तथा नशा सम्बन्धी बातों से हटाना, स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का बोध, तथा अच्छे महापुरुषों के विचार और संस्मरण, दहेज जैसी समाज में फैली हुई व्याधियाँ, अन्धविश्वास, जातिवाद, रूढ़िवाद आदि बातों से जानकारी करायी जावे जिनसे आज समाज में अत्यधिक हानियाँ हो रही हैं। इस प्रकार के बौद्धिक ज्ञान से उनको इस अध्ययन काल में जो विचारधारा मिलेगी वह सहज में ही अनुकरणीय होगी। ये विचार उनको चिरकाल तक काम देते रहेंगे।

(८) लड़के और लड़कियों की पाठ्य-पुस्तकें एक समान न होकर अलग अलग हों ताकि शुरू से ही जो लड़के के लिये उपयोगी हो वे लड़कों के लिये और जो लड़कियों के लिये उपयोगी हों वे लड़कियों के लिये नियत हों। यह नहीं हो कि कोई भी लड़की जो आठवीं, दसवीं, श्रेणी पास कर लेने के बाद गृहस्थी में प्रवेश करती है तो वह बेकार अलजबरा ज्योमेट्री जैसे विषय लेकर उनमें अपना समय लगावे। हाँ, जिनको इञ्जीनियरिंग, डाक्टरी या कोई दूसरी उच्च डिग्री लेनी है तो वे अवश्य लें परन्तु इनमें भी प्रत्येक नहीं। उनके लिये यह उपयोगी है कि इस प्रकार की पुस्तकें हों जो गृहस्थी में उनका मार्ग-दर्शन

कर सके। जैसे घरेलू कार्य करने की निपुणता, सादगी से रहना, उच्च विचार रखना, सास-ससुर की सेवा, बच्चों के पालन-पोषण, खान-पहिरान की निगरानी रखना, उनको अच्छी अच्छी बातें सिखाना। क्योंकि माता भी गुरु होती है आज बच्चों पर जो कुसंस्कार पड़ते हैं उनमें अधिकांश माताओं का ही प्रभाव होता है। इसके साथ ही पाकशाला का ज्ञान भी होना चाहिए कि किस ऋतु में कैसा भोजन बनाया जाय जो स्वास्थ्य के लिये उपयोगी हो। क्योंकि हमारे यहाँ अधिकांश लोग भोजन का सही ज्ञान न होने से रोगी होते हैं। इसलिये आवश्यक है कि इन सब बातों का पहले ही ज्ञान कराया जाये ताकि वह एक शिक्षित गृहिणी बन सके।

(९) आज के कहे जानेवाले सांस्कृतिक समारोह हमारे नवयुवक और नवयुवतियों को ऊँचा नहीं उठा सकते। ये प्रायः उनको उच्छृंखल बनाते हैं न कि गम्भीर। ये भी नैतिक पतन के एक प्रमुख कारण हैं। जो लड़के-लड़कियाँ हाथ में हाथ डाल कर एक साथ नृत्य व गायन आदि करती हैं क्या हम उनसे यह आशा कर सकते हैं कि ये राष्ट्र को ऊँचा उठायेंगे ? कदापि नहीं। क्योंकि यह अश्लीलता है इस प्रकार के वातावरण में पले हुए अपने नवयुवक और नवयुवतियों से यदि हम आशा करें कि ये तिलक, गान्धी और दयानन्द बनेंगे तो यह असम्भव है। हाँ, वे आज सिनेमा के अभिनेता ही बन सकते हैं। इससे उनका चरित्र ऊँचा नहीं उठता अपितु पतन की तरफ जाता है। इसलिये आवश्यक है कि ऐसे समारोहों से इस प्रकार के प्रोग्राम–जो उच्छृंखलता सिखाते हैं, चरित्रपतन के साधन हैं—हटा दिये जायें इनकी जगह ऐसे समारोह हों जो शिक्षाप्रद तथा चरित्र बनानेवाले हों।

(१०) किताबों का अन्वेषण किया जाये तथा पठन-पाठन की पुस्तकें इस प्रकार की हों जिनमें साक्षर ज्ञान के साथ-साथ धर्म, राजनीति, प्राचीन संस्कृति और सच्चे इतिहास का ज्ञान हो सके। इन पुस्तकों के जरिये प्रत्येक विद्यार्थी में राष्ट्रीयता, अनुशासन, कर्त्तव्य-परायणता, ईमानदारी तथा चरित्र बनाने की भावना पैदा हो सके। शारीरिक आत्मिक तथा सामाजिक ज्ञान हो सके। वे जीवन को सादा, सरल तथा सात्विक बनाने में प्रेरणाप्रद हों। इसके साथ ही प्रत्येक क्लास के साथ-साथ धार्मिक पुस्तकें कोर्स के साथ पढ़ाई जायँ जिसके द्वारा हमारी धर्म में आस्था बनी रहे और हम अन्धविश्वास तथा रूढ़िवाद से बचे रहें। इन पुस्तकों में चारों वेद तथा दर्शन शास्त्र के उन मूलमन्त्रों का अनुवाद हो जो हमें ज्ञान, कर्म, अर्थ और मोक्ष की शिक्षा प्रदान करें जिनके द्वारा हम जीवन-संघर्ष को भलीभांति सीखकर जीवन में प्रविष्ट हों।

(११) देश में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त होनी चाहिये ताकि हर वर्ग का व्यक्ति आसानी से पढ़ सके। इससे शिक्षा को प्रोत्साहन मिलेगा और वे बाद में इसकी अनिवार्यता को महसूस करने लगेंगे।

(१२) अंग्रेजी माध्यम की अपेक्षा हिन्दी माध्यम उच्च शिक्षा के लिये होना चाहिये। प्रादेशिक भाषाओं में शिक्षा केवल प्रारम्भिक अथवा माध्यमिक कक्षाओं तक ही होनी चाहिये। यदि सारे देश में उच्च शिक्षा के लिये हिन्दी माध्यम नहीं रखा गया तो एकरूपता नहीं रहेगी। विदेशी पुस्तकों के अनुवाद प्रत्येक प्रादेशिक भाषा में नहीं मिल सकेंगे और स्तर भी गिर जायगा।

(१३) बुद्धि को परखने की परीक्षाओं पर अधिक जोर दिया जाय और विद्यार्थियों का व्यावहारिक ज्ञान बढ़ाया जाय। यह

नहीं कि कुछ आवश्यक (Important) प्रश्न को ही विद्यार्थी रट लगाकर तैयार कर लेवें और उसी के आधार पर तिहाई या जैसा नियुक्त हो उतने नम्बर लेकर पास हो जायँ।

(१४) आजकल किताबी शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है और टैक्नीकल शिक्षा पर बहुत कम। इसकी जगह टैक्नीकल शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाय ताकि विद्यार्थी स्वावलम्बन महसूस कर सकें।

(१५) अध्यापकों का मान बढ़ाया जाय। उनको अच्छा वेतन मिले; उनका व्यक्तिगत जीवन आदर्श हो और नौकरी सुरक्षित हो। सरकार को शिक्षा विभाग के प्रति भी वही आकर्षण उत्पन्न करना चाहिये जो कि आई० ए० एस० (I. A. S.) तथा पी० सी० एस० (P. C. S.) में है।

इस प्रकार से जब बुनियादी शिक्षा का प्रबन्ध होगा तो देश दिन प्रति दिन प्रगति करेगा। विद्यार्थियों का नैतिक स्तर ऊँचा होगा रचनात्मक कार्यों की तरफ उनकी रुचि बढ़ेगी और देश-भक्ति की भावना पैदा होगी तथा अनुशासन उत्पन्न होगा। इसलिये आवश्यक है कि हम इसकी तरफ पूर्ण रूप से ध्यान देकर शिक्षा का जो मूल उद्देश्य है कि 'प्रत्येक मनुष्य की पूर्ण उन्नति करना' वह हल हो तभी समाज सुख-शान्ति से रहेगा।

उद्योग-धन्धे

आज का युग उद्योगों का है। इसमें वे ही देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत या विकसित माने जाते हैं, जिनमें उद्योग-धन्धों का पर्याप्त विकास हो चुका है। परतन्त्रता के कारण औद्योगिक क्षेत्र में हमारा देश बहुत पिछड़ रहा है। प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक साधन होते हुए भी हम इस क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सके। वे देश जिनमें प्राकृतिक साधनों की काफी कमी है परन्तु वहाँ उद्योग-धन्धों का विकास होने से आज वे उन्नत राष्ट्रों की गिनती में हैं। उदाहरण-स्वरूप यदि हम जापान को एशिया का समृद्धि-शाली देश मानें तो यह अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि जापान अधिकतर कच्चा माल बाहर से मँगाने में मजबूर है तथापि हर उद्योग की क्रीड़ा-भूमि बनता जा रहा है। आकर्षक, सस्ता और अच्छी किस्म का माल तैयार करने में जापान अग्रणी है। छोटी से छोटी चीज से लेकर वह बड़ी से बड़ी चीज तैयार करता है। कैमरे, टेपरिकार्डर, जेबघड़ी, छोटे रेडियो जापान की अद्भुत विशेषता हैं। युद्ध के बाद जापान की आम जनता का जीवन-स्तर तेजी से ऊपर बढ़ा है। इसके अतिरिक्त जबकि हमारे यहाँ प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक साधन मौजूद हैं तब भी हम कितने पिछड़े हुए हैं। इसलिये आर्थिक विकास के लिये हमारे यहाँ उद्योगों का विकास अत्यन्त आवश्यक है। उद्योग-धन्धे लोगों को काम प्रदान करते हैं तथा बेकारी दूर करने के साधन हैं।

उद्योगों के विकास से जब देश में धन का उत्पादन बढ़ता है तो लोगों में बचत करने की शक्ति बढ़ती है। उधर देश में विनियोग का क्षेत्र भी बढ़ता है। इससे लोग बड़ी मात्रा में बचत व विनियोग करते हैं। जिससे देश में पूँजी-निर्माण की दर में वृद्धि होती है और अर्थ-व्यवस्था विकास के पथ पर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती चली जाती है।

उद्योगों के विकास से जब देश में धन का उत्पादन बढ़ता है तो सरकार की आय भी बढ़ती है। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आज देश को आजाद हुए लगभग २० वर्ष हो चुके फिर भी सरकार ने इसके लिये कोई ठोस कार्रवाई शुरू नहीं की है। आजादी से पूर्व जबकि यहाँ पर अंग्रेज राज्य करते थे उन्होंने अपने कार्य-काल में इसकी तरफ जनता का ध्यान नहीं दिलाया क्योंकि उनकी नीति यह थी कि यहाँ का (खनिज-पदार्थ) कच्चा माल वे स्वयं यहाँ से अपने देश में ले जाते थे। फिर उससे कपड़ा वगैरः तैयार करके काफी मुनाफा से हमारे देश में बिक्री करते थे। इस प्रकार कुछ उद्योग उस समय अवश्य स्थापित हुए परन्तु वे पर्याप्त नहीं थे। जैसे—

(१) सूती कपड़े का उद्योग—

यह उद्योग हमारे भारत का एक प्रमुख उद्योग है। इसके अन्दर काफी पूँजी लगी हुई है। भारत के उद्योगों में यह एक प्राचीन उद्योग है। इसका स्थान सर्वप्रथम है, सूती कपड़े का पहला कारखाना १८०८ में कलकत्ते में और १८५४ में बम्बई में लगाया था। प्रथम महायुद्ध ने अन्य उद्योगों के साथ-साथ इस उद्योग को भी बहुत प्रोत्साहन दिया। मिलें भी काफी लग गईं और इनकी संख्या बढ़ती गई। सूती कपड़े के कारखाने अधिक-

तर बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद, शोलापुर, नागपुर और दिल्ली आदि में हैं।

(२) लोहा तथा इस्पात-उद्योग—

किसी भी देश के औद्योगीकरण का आधार लोहा तथा इस्पात होता है। १८७५ में बंगाल में बाराकर आयरन वर्क्स आरम्भ किया गया। परन्तु इसका वास्तविक आरम्भ १९०७ में जमशेदपुर (बिहार) में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना से होता है। प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध में इस उद्योग का काफी विकास हुआ। युद्ध के बाद इसके उत्पादन में कुछ कमी अवश्य आई परन्तु आजादी के पश्चात् सरकार ने इसकी तरफ़ काफी ध्यान दिया। एक कारखाना मध्यप्रदेश में भिलाई के स्थान पर, दूसरा उड़ीसा के राउरकेला में तीसरा पश्चिमी बंगाल के दुर्गापुर में और चौथा बोकारो में। इस प्रकार से इस उद्योग का भविष्य काफी उज्ज्वल है।

(३) जूट-उद्योग—

सूती कपड़े के उद्योग के बाद बुनाई उद्योग में जूट का दूसरा स्थान है। जूट-उद्योग भारत का प्रमुख निर्यात-उद्योग है। इसकी पहली मिल १८५५ कलकत्ते में लगाई गई थी। बाद में ये काफी संख्या में लगाई गई। देश के बँटवारे से इन उद्योगों को काफी धक्का लगा। परन्तु आजादी के बाद इसके उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न किये गये।

(४) चीनी-उद्योग—

यह उद्योग काफी महत्वपूर्ण है और इसका कृषि अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अमरीका के पश्चात् भारत विश्व में चीनी का सबसे बड़ा उत्पादक है। इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र

उत्तरप्रदेश और बिहार है। इस उद्योग का आधुनिक ढंग का प्रारम्भ १६०३ के आस-पास हुआ और आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन यह कुछ विकसित हुआ है परन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए इसमें काफी विकास की आवश्यकता है।

(५) सीमेंट-उद्योग—

यह एक बुनियादी उद्योग है क्योंकि इससे सड़कें, पुल तथा इमारतें आदि बनती हैं। सीमेंट का पहला कारख़ाना १६०४ में लगाया गया। इसके बाद काफी कारखाने लगे हैं। परन्तु जनसंख्या की बढ़ोतरी से अभी इसका उत्पादन पर्याप्त नहीं। आजादी के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन इसके उत्पादन की क्षमता बढ़ी है। परन्तु अब भी यह परमिट के द्वारा जनता को सप्लाई (वितरण) की जाती है। क्योंकि इसमें और अधिक उत्पादन की जरूरत है।

(६) कोयला-उद्योग —

किसी भी देश के औद्योगीकरण के लिये कोयला-उद्योग बहुत आवश्यक उद्योग है। कोयला शक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। देश के कल-कारखाने और रेलें आदि इसीसे चलती हैं। लोहा और इस्पात उद्योग के लिये यह आवश्यक कच्चा माल है। घरेलू कार्यों में भी इसका प्रयोग बहुत होता है।

(७) फिल्म-उद्योग—

यह उद्योग आज के मनोरंजन का एक प्रमुख उद्योग है। १६१२ में सबसे पहली फिल्म 'हरिश्चन्द्र' बनाई गई। इसके बाद बोलने वाली फिल्म 'आलम आरा' १६३१ में बनाई गयी। अब

यह उद्योग दिन प्रतिदिन काफी तेजी से बढ़ रहा है। इसकी कम्पनियाँ ज्यादातर बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में हैं।

(८) कागज-उद्योग—

यह भी एक प्रमुख उद्योग है। क्योंकि कागज की खपत दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। मशीन द्वारा कागज बनाने का काम १८७० में आरम्भ हुआ। पहले हमारे यहाँ अखबार का कागज नहीं बनता था जिसकी प्रति दिन काफी आवश्यकता होती है। बाद में मध्यप्रदेश में इसकी मिल लगाई गई।

(९) भारी रसायन-उद्योग—

इस उद्योग में कास्टिक सोडा, गन्धक का तेजाब, सोडा ऐश, ब्लीचिङ्ग पाउडर और रासायनिक खाद आदि हैं। रसायनों की सहायता के बिना कांच, चमड़ा, साबुन, कपड़ा, धातु, कागज, दवाइयाँ, रबड़, रंग, वार्निश आदि तैयार नहीं हो सकते। आबादी के बाद सरकार ने इस ओर ध्यान दिया और राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला की स्थापना बिहार में और सिंदरी में रासायनिक खाद का कारखाना खोला।

इसी प्रकार इनके अतिरिक्त और भी बड़े-बड़े उद्योग हैं— दियासलाई उद्योग, शीशा उद्योग, वनस्पति घी, ऊनी कपड़ा, रेशमी कपड़ा, नमक सिगरेट, साइकिल, बिजली का सामान, रेडियो आदि। इन उद्योगों ने काफी उन्नति की है।

देश स्वतंन्त्र होने के बाद सरकार ने भी स्वयं कुछ कारखाने खोले हैं। जैसे—बंगलौर में वायुयान कारखाना, विशाखापट्टनम् में समुद्री जहाज-कारखाना, चितरञ्जन में इंजन बनाने का कारखाना, दिगम्बर में रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना, राँची में भारी मशीनरी का तथा जलहल्ली (बंगलौर) में राडार आदि

बनाने का कारखाना बनवाया है। और भी बहुत से कारखाने सरकार ने स्वयं खोले हैं। परन्तु यह सब होकर भी आज इनकी गिनती नगण्य है। विशाल देश की जनसंख्या को देखते हुए उनके लिए जितनी विभिन्न प्रकार के उद्योगों की आवश्यकता है वहाँ आज यह बहुत कमी है। आधुनिक युग के अन्दर किसी भी देश की आर्थिक हालत में समृद्धिशाली होने के लिये उद्योगों की अत्यन्त आवश्यकता है।

हिन्दुस्तान में इसके लिये काफी साधन हैं। आवश्यक कच्चा माल आदि की आज तो यह प्रणाली है कि एक व्यक्ति के पास ऐसे उद्योग हैं जो लाखों और करोड़ों वार्षिक कमाते हैं। एक तरफ हालत यह है कि एक व्यक्ति यदि कोई छोटी-सी भी मशीन लगाना चाहे तो उसको कोई सुविधा नहीं। यह दुर्व्यवस्था खत्म करनी होगी। एक मिल या फैक्टरीवाला और भी मिल या फैक्टरी खोल सकता है। परन्तु जिसके पास एक भी नहीं है वह नहीं खोल सकता। उसके सामने अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं। जिसके पास फैक्टरी है वह दे-लेकर भी कोटा मंजूर करा सकता है। उसके पास ऐसे साधन हैं कि सब काम हो सकते हैं। परन्तु दूसरे का नहीं हो सकता। इसलिये समाजवाद जिस देश में लाना है वहाँ इस प्रकार की व्यवस्था समाजवादी प्रणाली के लिये घातक है और वहाँ समाजवाद लाना केवल स्वप्नमात्र है।

साथ ही जो बड़े मिल मालिक हैं उनके प्रायः ऐसे साधन बन गये हैं कि वहाँ प्रायः दिनरात हर प्रकार से गोल माल होती रहती है। जैसे टैक्स की, मजदूरों को बोनस वगैरह की, कोटे वगैरह को लेकर पूरा माल न बनना आदि। क्योंकि जो बड़े काम हैं उनको न तो पूरी तरह से सम्भाला जा सकता है। न वे ज्यादा माल स्टाक में रख सकते हैं। उनकी बाजार में अपनी

मनमानी हो सकती है। यदि यह सब छोटे स्तर पर हो तो इन सब बातों से बचा जा सकता है। उद्योगों तथा देश की आर्थिक आय का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और समाजवाद का ढाँचा लोगों की आर्थिक समस्या पर निर्भर करता है। समाजवाद को यदि लाना है तो उद्योगों को आज की हालत में चलना ठीक नहीं। इसमें दृढ़ता के साथ अनिवार्य रूप से परिवर्तन लाना ही होगा। अन्यथा हजार वर्ष में भी समाजवाद नहीं आ सकता। यदि उद्योगों की हालत ठीक हो जाती है तो समाजवाद आना आसान है। तथा आज जो मजदूर-मालिक का झगड़ा है उसमें भी काफ़ी सुधार हो सकता है। बड़े रूप के उद्योगों में जो बड़े उद्योगपति हैं वे न तो टैक्स ही पूरे रूप में देते हैं और न मजदूरों का शोषण करने से रुकते हैं। फलस्वरूप जो स्टेट खत्म की गई थी वे एक दूसरे रूप से स्टेट बनती जा रही हैं। वे दिन-रात शोषण की तरफ बढ़ रहे हैं। नतीजा यह होता है कि देश हिंसक क्रान्ति की तरफ बढ़ता चला जाता है। यदि यह शोषण और राष्ट्रीय आय के स्तर में इसी प्रकार से जमीन आसमान का अन्तर रहा तो कोई भी देश में हिंसक क्रान्ति को आने से रोक नहीं सकता। वह आयेगी और अवश्य आयेगी। इस दबी हुई अग्नि का किसी भी समय भयंकर विस्फोट हो सकता है। इसलिये इसमें निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं :—

(१) कोई भी बड़ा उद्योग किसी व्यक्ति या कम्पनी के अधीन नहीं होना चाहिये। उसका राष्ट्रीकरण हो जाना चाहिए।

(२) इस प्रकार के उद्योगों को पहले प्राथमिकता दी जाये जिससे हमें विदेशों से कोई भी चीज का आयात न करना पड़े। जोकि हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

(३) जहाँ तक भी हो भरसक यह चेष्टा की जाये कि दूसरे

देशों की हमारे किसी भी उद्योग में हिस्सेदारी न हो। हमें उनसे जो वित्तीय या तकनीकी सहायता की आवश्यकता हो तो हम ऋण रूप में लें। इसी प्रकार यदि विदेशी इंजीनियरों की आवश्यकता पड़े तो हम वेतन रूप में सहायता के लिये रख सकते हैं।

(४) जहाँ तक संभव हो ज्यादा बड़े उद्योगों की अपेक्षा छोटे तथा कुटीर-उद्योग स्थापित करें जिससे हमारा वित्तीय भार कम हो तथा हमारे यहाँ के इंजीनियर ही उसको चला सकें। और वह एक जगह न होकर एक ही प्रकार के कई जगह स्थापित हों। इसके साथ ही प्रत्येक गाँव में कुटीर उद्योगों को विशेष रूप से स्थापित किया जाये इससे बेकारी दूर करने में काफी सहायता मिलेगी तथा लोग खुश-हाल होंगे। क्योंकि भारत कृषि-प्रधान देश है यहाँ की अधिकांश जनता खेती पर निर्भर करती है और खेती में अक्सर उसको साल में ६-७ महीने ही काम मिलता है। इस प्रकार उनका जो बेकार समय रहता है उसमें वे कहीं जाकर नौकरी वगैरह नहीं कर सकते, उनका सारा समय वेकार ही चला जाता है। कुटीर-उद्योग में लगने से लोगों को आर्थिक सहायता मिलेगी तथा समय का सदुपयोग हो सकेगा।

(५) हम शीघ्रातिशीघ्र यह चेष्टा करें कि कोई भी चीज सूई से लेकर अणुबम के निर्माण तक बाहर से न मँगायें। उसका निर्माण हमारे यहाँ ही हो।

(६) प्रत्येक बड़े शहर में जिसकी आबादी के लिहाज से मान्यता हो एक औद्योगिक बस्ती स्थापित हो जिसमें सरकार वहाँ के लोगों को जमीन, बिजली, पानी तथा रेल मोटर, ऋण-रूप में रुपये की मदद दे ताकि जनता इसकी तरफ इन सुविधाओं के कारण आकर्षित हो।

(७) यह कार्य प्रत्येक प्रान्त के लिये हो। यह नहीं कि एक प्रान्त में काफी उद्योग है और दूसरे में नहीं। इस प्रकार होने से एक तो वहाँ के नागरिकों को वहीं अपने यहाँ काम मिलेगा क्योंकि आज एक ऐसी प्रान्तीय भावना बनी हुई है कि पंजाब और राजस्थान का व्यापारी यदि किसी दूसरे प्रान्त में आसाम, बंगाल वगैरह में जाकर काम करता है और वहाँ कुछ स्वावलम्बी हो जाता है तो वहाँ की जनता उसके प्रति द्वेष की भावना रखती है जोकि समाज के लिये घातक है। आज लोग यह भावना होने से यह अनुभव करते हैं कि हम अपने ही प्रान्तों में कार्य करें।

सरकारी अफसर इस प्रकार से नियुक्त हों जो जनता के साथ रिश्वत वगैरह लेकर गलत कार्य न करें क्योंकि ऐसा होने से आम आदमी को बहुत कठिनाई हो जाती है। वे अपना कार्य बगैर रिश्वत के नहीं करा सकते। तब तो जो रिश्वत देगा उसी का कार्य होगा चाहे वह उचित है अथवा नहीं। रिश्वत से ऐसा भी हो जाता है कि एक कारखाने वाला ठीक चीज तैयार करने पर भी उसकी वह चीज बगैर रिश्वत दिये पास नहीं होती और जब वह उसके लिये रिश्वत दे देता है तो फिर कैसा ही माल तैयार करे, वह पास हो जाता है। इस प्रकार यह गलत कार्य है जिससे राष्ट्र को हानि होती है।

(८) आज उद्योगों का प्रबन्ध और आर्थिक शक्ति कुछ ही प्रबन्ध कर्त्ताओं के हाथों केन्द्रित होती है। इससे ये लोग मनमानी करते हैं। कम्पनियों के संचालक इनके हाथों में कठपुतली मात्र होते हैं। इससे देश में स्वतन्त्र, योग्य और कुशल संचालकों तथा प्रबन्धकों का निवास नहीं हो पाया है।

(९) एक-एक उद्योगपति के पास कई-कई उद्योग हैं और

वे दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। क्योंकि उनके पास आर्थिक शक्ति इतनी मजबूत हो गई है कि उसको एक के बाद दूसरा उद्योग स्थापित करना बहुत आसान है। वे अपने ही परिवार के या रिश्तेदारों वगैरह के भिन्न-भिन्न नाम से कम्पनियाँ बनाते जाते हैं और आगे बढ़ रहे हैं। यह बहुत ही घातक और दूसरे आदमियों की उन्नति में बाधक है। स्वतन्त्र भारत में इस प्रलाली को पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाना चाहिये। समाजवादी ढंग के समाज में इसके लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये।

(१०) बहुत से अनैतिक प्रबन्ध अभिकर्ता कई प्रकार की बेइमानियाँ करते हैं। जैसे कि गुप्त और नाजायज कमीशन लेना, रुपया हड़प कर जाना, शेयरों की कीमत जान-बूझकर बढ़ाना और फिर उन्हें चढ़ी हुई कीमतों पर अनजान विनियोगकों के बीच बेच देना। कम्पनी के रूप से सट्टा खोलना और कम्पनी तथा शेयरहोल्डरों के हितों की कोई परवाह न करना इत्यादि।

(११) आज कहना न होगा कि हमारे देश के उद्योगधन्धे चन्द उद्योगपतियों के हाथ में हैं जबकि भारत इतना विशाल जनसंख्या वाला देश है। इसलिये एक उद्योगपति के पास एक ही उद्योग होना चाहिए।

(१२) जो भी वस्तु का कोटा किसी भी कारखानेदार को मिले वह उसका माल अवश्य बनाये। यह नहीं कि वह उस माल को बगैर बनाये वैसे का वैसा बिक्री कर देवे। इस प्रकार करने से उस चीज के दाम भी ज्यादा बढ़ जाते हैं और आम लोगों को वह चीज न मिलने के कारण वे उसका अभाव अनुभव करने लगते हैं। इस प्रकार की मुनाफावसूली से अव्यवस्था तथा बेकारी बढ़ती है।

इस प्रकार से यदि औद्योगिक प्रवन्ध होता है तो यह नव औद्योगिक क्रान्ति होगी। उद्योग-धन्धे बढ़ेंगे। अधिक व्यक्तियों को कार्य मिलेगा तथा आय में असमानता अधिक नहीं होगी। देश समाजवाद की तरफ बढ़ेगा और हिंसक क्रान्ति से बचेगा। इसलिये इन सब बातों को क्रियान्वित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

———

व्यापार

व्यापार से अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी भिन्न-भिन्न आवश्यकतायें स्वयं पूरी नहीं कर सकता उनकी पूर्ति के लिये उसे दूसरे आदमियों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार वह अपनी आवश्यकतायें दूसरों को लाभ देकर वस्तुयें तथा सेवायें खरीदकर पूर्ति करता है और अपने उत्पादन की वस्तुएँ तथा सेवायें दूसरों को लाभ पर प्रदान करता है ! द्रव्य का माध्यम इस आदान-प्रदान को बड़ा सरल तथा सम्भव बनाता है। इस प्रकार आर्थिक क्रियाओं में व्यापार की क्रियाओं का बड़ा महत्त्व है। दुनिया के हर देश में व्यापार अपने ढंग से प्रचलित है। क्योंकि इसके बिना उस देश का जीवन ही नहीं चल सकता। शुद्ध और सुविकसित व्यापार से उत्पादन में वृद्धि होती है। उत्पादन करने वाले को उसकी वस्तु का पूरा दाम मिल जाता है। तथा दूसरे लोगों की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं। आज के युग में जबकि अधिकांश उत्पादन बाजार में बेचने के लिये होता है। इससे व्यापार का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। बड़े उत्पादन के पैमाने के लिये व्यापार अनिवार्य है। व्यापार मुख्यतः दो प्रकार का होता है—देशी–विदेशी।

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी भिन्न आवश्यकताएँ स्वयं पूरी नहीं कर सकता उसे दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसी प्रकार प्रत्येक देश भी अपनी सारी आवश्यकताओं

की पूर्ति स्वयं नहीं कर सकता और उसे अपनी पूर्ति के लिये दूसरे देशों से लेन-देन करना पड़ता है। इसलिये देश की सीमाओं के भीतर होनेवाले व्यापार को देशी व्यापार और देश की सीमाओं से बाहर होने वाले व्यापार को विदेशी व्यापार कहा जाता है। कुछ देशों, जैसे कि इंगलैण्ड, जापान, हालैण्ड आदि के लिये उनके विदेशी व्यापार की तुलना में देशी व्यापार का महत्त्व कम है। और कुछ देशों में जैसे—हमारे यहाँ तथा अमेरिका के लिये देशी व्यापार का महत्व अधिक है।

व्यापार की प्रथा प्राचीन है। इसके द्वारा वे अधिकांश लोग जो खेती वगैरः नहीं करते थे तथा नौकरी पेशा करनेवाले नहीं थे या किसी प्रकार का उद्योग नहीं करते थे वे वस्तुओं को एक दूसरे से ले बेचकर अपनी जीवन-सम्बन्धी पूर्ति के लिये पैसा कमाते थे। यह एक अच्छी सामाजिक प्रथा थी तथा समाज का आवश्यक अंग था। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आज का व्यापार, व्यापार नहीं रहा, उसके अनेक रूप बन गये हैं। वैसे तो एक छोटे दुकानदार से लेकर बड़े दुकानदार तक सब ही व्यापारी हैं। चाहे वह हलवाई, पनवाडी खाद्यान्न की वस्तुएँ बेचनेवाले, कपड़ा, सर्राफ वगैरह चाहे जिस चीज की दुकान करता हो। परन्तु हम देखते हैं कि इन वस्तुओं के आदान-प्रदान से अलग ऐसे भी व्यापार जारी हैं जो समाज में घृणित व्यापार हैं। लड़कियों को बहकाकर, डराकर उनको एक दूसरी जगह बेच देना, जुआ खेलना-खेलाना, चोरी से शराब, गाँजा आदि नशीली वस्तुएँ बेचने के घृणित कार्यों का व्यापार नहीं होना चाहिए। इसके अलावा हमारे यहाँ एक और सट्टा सौदा की भी प्रणाली है। इसमें अधिकांश रूप में वस्तु का लेन-देन नहीं होता एक व्यापारी दूसरे को चीज के बगैर लेन-देन के ही

खरीद-बेच करते हैं। अतः यह भी काफी नुकसानदेह है, जिससे प्रायः सब जानकार हैं। जिन व्यक्तियों को इसकी आदत हो गई वह बात दूसरी है परन्तु अक्सर इससे आम लोग बहुत बर्बाद होते हैं और पैसा चन्द मजबूत व्यापारियों के हाथ में चला जाता है। क्योंकि वह अन्धाधुन्ध ले नोच करने की सामर्थ्य रखता है और बाजार को जिधर मन चाहे घुमा सकता है। इस प्रकार यदि वे नुकसान में भी कभी आ जाते हैं तब फिर भुगतान वगैरः न होना इत्यादि के झगड़े में पड़ जाते हैं। इस प्रकार हर पहलू पर विचार करने से हम देखते हैं कि यह प्रणाली अत्यन्त खराब है और सरकार की ओर से शीघ्रातिशीघ्र रोक लगानी चाहिये इसके साथ ही आज व्यापार के अन्दर एक और दोष भी प्रचलित हो गया है वह है मिलावट का। आप कोई भी चीज लें आपको पूरे पैसे देने पर भी शुद्ध नहीं मिलेगी। कारण कि हम लोग बेबशीभूत तथा अनावश्यक आवश्यकताओं के बढ़ने के कारण समाज में फजूलखर्ची वगैरः से तथा अशिक्षा के कारण हर चीज को दूषित कर बैठे हैं—दूध-घी जैसी दैनिक खाने की चीजें, मिर्च-मसाले, खाद्यान्न की चीजें तथा तेल, तिलहन वगैरः सबकी सब मिलावट की। क्या व्यापार का यह तरीका ठीक है कि हम अपने तुच्छ लोभ के कारण एक व्यक्ति के शरीर की परवाह न करके उसको मिली हुई चीजें दे दें? अतः ऐसी कार्यवाही बन्द होनी चाहिए। हमें यह नियम बनाना चाहिए कि हमें यह मुनाफा लेना है परन्तु चीज शुद्ध रूप में देनी है। इस प्रकार वह उत्तम व्यापार तथा पैसा कमाने का एक पवित्र साधन होगा। इसके साथ ही आज हर छोटा-बड़ा व्यापारी सरकार के कुछ दोषपूर्ण नियमों के कारण हर समय भयभीत बना रहता है—यह भी व्यापार के प्रसार में एक बाधा है। व्यापारी

अपने को कलंकित समझता है। क्योंकि सरकार के कायदे-कानून ही इस प्रकार के बन गये हैं कि वह भय-मुक्त तथा अपने को स्वतन्त्र अनुभव नहीं कर सकता है। सरकार और व्यापारी का एक विशेष सम्बन्ध है। परन्तु कहना नहीं होगा कि आज वे सम्बन्ध समाप्त होते जा रहे हैं। सरकार को चाहिए कि इस प्रकार के व्यापार सम्बन्धी कानून-कायदे बनाये कि व्यापारी और सरकार के बीच जो खाईं है, वह न हो। हर व्यापारी पूरी ईमानदारी तथा स्वेच्छा से उन नियम–कानून-कायदों को मान सके वे व्यापारी के लिए भार रूप न हों सब उनका पालन करें। यह नहीं कि कुछ पालन करें और कुछ नहीं। इस प्रकार यह एक अच्छा नियम होगा।

इसके साथ ही यदि हम यह सोचें कि जिस व्यापार को हम कर रहे हैं उसका जीवन से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे दैनिक समय में प्रातः से लेकर सायं तक का समय व्यापार में लगता है। इस तमाम समय में यदि हमारी मनोवृत्ति छल-कपट तथा बेईमानी वगैरः से भयभीत हो रही है तो यह हमारे जीवन को कितना दूषित बना देगी। इसके अतिरिक्त यदि हम इस समय में निडर होकर तथा ईमानदारी से, छल-कपट से दूर एक आदर्श जीवन के हिसाब से अपना समय व्यतीत करते हैं तो वह हमारे जीवन को कितना ऊँचा उठायेगी। अतः यह हमारे जीवन पर एक गहरी छाप कायम करता है। गलत ढंग के व्यापार से लोग एक दूसरे का विश्वास खो देते हैं। जो व्यक्ति ऐसा करता है दूसरे लोग उससे घृणा करने लग जाते हैं। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हम व्यापार इस ढंग से करें कि वह हमारे जीवन को एक आदर्श जीवन बनावे। मनुष्य व्यापार से सुखी और व्यापार से ही नरकगामी हो सकता है। इसका जीवन

पर इतना गहरा असर पड़ता है कि इसके साथ ही आप किसी भी प्रान्त के छोटे या बड़े व्यापारी से कहिये क्या हाल है ? क्या कर रहे हो तो वह यही कहेगा कि बड़े झंझट हो गये, बहुत काम बढ़ गया, व्यापार करना बहुत मुश्किल हो गया है। वह सब तरह से परेशान मालूम देगा। न उसका स्वास्थ्य ठीक, न मन; इस प्रकार से इसमें पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है।

किसी देश के लिये दोनों प्रकार के व्यापार का महत्व वास्तव में उस देश की परिस्थितियों पर निर्भर होता है। भारत अधिकांश प्राकृतिक साधनों से संपन्न बड़ा धनी है। यहाँ की जलवायु विभिन्न प्रकार की है। मिट्टी बड़ी उपजाऊ है। कई प्रकार की फ़सलें होती हैं तथा यहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक है। उद्योग-धन्धों में पिछड़ा होने के बावजूद भी हम दैनिक उपयोग की बहुत सी वस्तु यहीं पैदा कर लेते हैं। जैसे—कपड़ा, जूते, चीनी, साबुन, कागज, सिगरेट, सीमेण्ट आदि। इसलिये भारत एक स्वयं बहुत बड़ा बाजार है और यहाँ बड़ी मात्रा में व्यापार होता है। बाहर के देशों से हमें कम वस्तुएँ मँगानी पड़ती हैं और कम ही बाहर भेजनी पड़ती हैं।

इसलिये मूल्य की दृष्टि से हमारा देशी व्यापार विदेशी व्यापार की तुलना में कई गुना अधिक है। देश में आकर (खान) जनसंख्या, प्राकृतिक साधन इतने होते हुए भी हमारा देशी व्यापार अभी पूरी तरह से विकसित नहीं है। इसके निम्न-लिखित कारण हैं :—

(१) स्वतन्त्रता से पूर्व यहाँ अंग्रेज लोग राज्य करते थे। वे मुख्यतः विदेशी व्यापार को ही बढ़ावा देते थे क्योंकि वे चाहते थे कि इंगलैण्ड में बना तैयार माल यहाँ अधिक से अधिक बेचा

जायं। बदले में कच्चा माल तथा खाद्यान्न यहाँ से इंगलैण्ड को निर्यात किया जावे।

(२) अभी हमारे यहाँ यातायात तथा संचार के साधनों की भी कमी है। पहले जो रेलों का विकास हुआ था वह भी विदेशी व्यापारों की आवश्यकता के लिये किया गया था।

(३) भारत में बैंकों का भी पूरा विकास नहीं हुआ है। व्यापार के लिये इनका विकास बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

(४) भारत के अधिकांश किसानों के पास खेती थोड़ी मात्रा में है वे अपनी उपज का बहुत सा भाग अपने पास ही रख लेते हैं इस प्रकार बाजार में माल कम ही आता है।

(५) कृषि-प्रधान देश होने के कारण अधिकांश देशी व्यापार खेती की विभिन्न वस्तुओं जैसे, अनाज, दालें, कपास, तिलहन, जूट, गन्ना, चाय, गुड़, तम्बाकू आदि में होता है। इसके बाद उद्योगों से बनी चीजें कपड़ा, चीनी, तेल, वनस्पति आदि तथा इनके अलावा खनिज तथा वन-पदार्थों का भी देशी व्यापार होता है।

विदेशी व्यापार

जैसा हम पहले लिख चुके हैं कि किसी देश का अन्य देशों से व्यापार उस देश का विदेशी व्यापार कहलाता है। जैसे भारत दूसरे देशों से मशीनें, दवाइयाँ, मोटरकारें, कल-पुर्जे, बैंकिंग, जहाजी सेवायें तथा पूंजी प्राप्त करता है। वह बदले में इन्हें कई प्रकार की वस्तुएँ जैसे चाय, जूट का सामान, मसाले, खनिज पदार्थ आदि भेजता है। इसलिये जो चीज हम विदेशों से लाते हैं वह आयात (Import) कहलाती है। जो भेजते हैं वह (Export) निर्यात कहलाती है। इस प्रकार से इस

आदान-प्रदान से कई लाभ तथा हानियाँ भी हैं। जो इस प्रकार हैं—

विदेशी व्यापार से लाभ

(१) बाहर माल भेजने से हमारा उत्पादन बढ़ जाता है क्योंकि इसकी बिक्री के लिये हमें बाहर का बाजार मिल जाता है। इस प्रकार हम लाभ भी करते हैं और दूसरों की पूर्ति भी हो जाती है।

(२) अधिक उत्पादन से वस्तुएँ सस्ती भी पड़ती हैं और अधिक लोगों को श्रम-कार्य भी मिलता है। इससे सस्ती वस्तु होने की वजह से दूसरे देशवालों की वस्तु सस्ती भी मिलती है और वे अधिक मात्रा में इसका उपयोग करके तुष्टि प्राप्त करते हैं।

(३) विदेशी व्यापार द्वारा हम उन वस्तुओं को भी प्राप्त कर लेते हैं जो हमारे यहाँ उपलब्ध नहीं हैं या नहीं बनतीं। जैसे कई प्रकार की दवाइयाँ, मशीनें आदि। इस प्रकार से हम अपनी अधिक आवश्यकताओं को पूरा कर पाते हैं।

(४) जब कभी किसी देश में अकाल पड़ कर फसलें खराब हो जाती हैं उस समय दूसरे देशों से खाद्यान्न का आयात किया जा सकता है। जैसे कि हम पिछले काफी दिनों से खाद्यान्न का आयात कर रहे हैं।

(५) जो खनिज पदार्थ एक देश में उपलब्ध तो हैं परन्तु वे उस कच्चे माल का पक्का माल बनाने में प्रयोग न करें तो वह खानों में ही पड़ा रहे। इसलिये दूसरे देश को निर्यात किया जा सकता है जैसे हम यहाँ से अभ्रक और मैंगनीज वगैरह बाहर भेज देते हैं।

(६) इससे उन्नत उत्पादन-विधि अपनाई जाती है। क्योंकि एक ही माल दो देश दूसरी जगह देते हैं तो उनकी आपस में कोशिश यही रहेगी कि दूसरे के माल से हमारा माल दोनों दृष्टियां से उत्तम हो। इस प्रकार की होड़ से उन्नत-उत्पादन विधि अपनाई जाती है।

(७) इसके द्वारा विभिन्न देशों के सम्बन्ध सांस्कृतिक दृष्टि से भी घनिष्ट हो जाते हैं तथा हम एक दूसरे की सभ्यता और संस्कृति से बहुत कुछ सीखते हैं।

विदेशी व्यापार से हानियाँ

(१) कभी-कभी विदेशी व्यापार के कारण ऐसी वस्तुएँ आयात होने लगती हैं जिनका प्रयोग शरीर, मन, चरित्र के लिये हानिकारक होता है। जैसे मनोरंजन के सामान, अफीम, शराब आदि नशीली वस्तुएँ तथा शृंगार के साधन। इन वस्तुओं के साथ एक खराबी यह भी हो जाती है कि इनका कुछ बार प्रयोग करने से मनुष्य अभ्यस्त हो जाता है और उसकी प्रयोग की आदतें खराब हो जाती हैं। पिछले समय चीन को अफीम के आयात से इस प्रकार की बहुत हानि उठानी पड़ी थी और आज हमारा मुल्क भी कई चीजें इस प्रकार की आयात कर रहा है जो हमारे आर्थिक लिहाज से भी हमें नुकसान देती हैं। हमारे शरीर, मन, चरित्र को दूषित कर रही हैं। सरकार केवल ड्यूटी कर बढ़ा कर सन्तोष कर लेती है कि हम यदि शृंगार वगैरह की वस्तुएँ आयात करेंगे तो इतनी ड्यूटी लेंगे परन्तु आज जरूरत इस बात की है कि इनका आयात ही न किया जाय। क्योंकि धनी व्यक्ति इतने देशभक्त नहीं हैं कि वे ड्यूटी वगैरह बढ़ाने से इनका उपयोग छोड़ दें।

(२) ऐसा करने से उद्योग-धन्धों का काम ठप्प पड़ जाता है। क्योंकि वे ही उद्योग-धन्धे व व्यवसाय विकसित होते हैं जिनसे अधिक लाभ होता है। इस प्रकार आर्थिक विकास एक तरफ पड़ा रह जाता है।

(३) कच्ची सामग्री की शीघ्र समाप्ति :—विदेशी व्यापार के कारण बहुधा देश की कच्ची सामग्री नियत कर दी जाती है। वे पदार्थ बहुधा ऐसे होते हैं जिनके कि प्रत्येक देश में सीमित भण्डार होते हैं। जिससे वे फिर प्राप्त नहीं किये जा सकते।

(४) इसके जरिये एक देश दूसरे देश पर बहुत अधिक निर्भर हो जाते हैं। कई बार उससे बहुत हानि होती है। युद्ध के समय वस्तुओं का आयात-निर्यात बहुत कठिन हो जाता है तब कुछ देशों की दशा बहुत खराब हो जाती है। इससे मन्दी तेजी पर भी काफी असर होता है।

(५) विदेशी व्यापार के कारण दूसरे शक्तिशाली देश संसार के पिछड़े भागों में उपनिवेश बना कर वहाँ के लोगों का शोषण करने का प्रयत्न करते हैं। १७ वीं, १८ वीं और १९ वीं शताब्दी में योरप के इंगलैण्ड, फ्रांस, स्पेन, हालैण्ड आदि देशों ने ऐसा ही किया था। इन देशों ने एशिया और अफ्रीका के देशों से पहले व्यापार सम्बन्ध स्थापित किये फिर वहाँ पर अपनी राज्य-सत्ता को जमाया। भारत भी इसी का शिकार हुआ था। हमारे ऊपर भी पहले अंग्रेज व्यापारी बनकर आया और फिर उसने यहाँ राज्य कायम किया।

इस प्रकार विदेशी व्यापार से हानियाँ भी हैं। परन्तु सब देश संयम से काम लें और उचित व्यापार-नीति अपनाएँ तथा अपने अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व न भूलें तो इन हानियों से बचा जा सकता है। वैसे भी विदेशी व्यापार के लाभ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

भूमि—(कृषि)

भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के अधिकांश लोगों की जीविकोपार्जन का साधन कृषि ही है। १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का ७० प्रतिशत भाग अपनी जीविका के लिये प्रत्यक्ष रूप से खेती पर आश्रित है। पश्चिम के उन्नत देशों में खेती पर आश्रित लोगों की प्रतिशत संख्या बहुत कम है। उदाहरणार्थ—इंगलैंड में केवल ३ प्रतिशत जनसंख्या और संयुक्त राज्य अमेरिका में १२ प्रतिशत जनसंख्या खेती-बारी का काम करती है। पिछले १०० वर्षों में जहाँ अन्य देशों में कृषि पर आश्रित लोगों का प्रतिशत काफी कम हुआ है वहाँ भारत में यह बढ़ गया है। सन् १८७२ में यह ६५ था जबकि यह सन् १९५१ में बढ़कर ७० हो गया। क्योंकि दूसरे देशों ने उद्योग-धन्धों में पर्याप्त विकास किया है। इसलिये ज्यादातर लोग उनमें लग गये हैं हमारे यहाँ उद्योग-धन्धों की अत्यन्त कमी रही है। हमारी राष्ट्रीय आय का मुख्य स्रोत कृषि ही है। कृषि से ही देश की जनसंख्या को खाद्य-सामग्री प्राप्त होती है। खाद्यान्न की कमी के कारण हमारे देश में खाद्यान्न का आयात हो रहा है। इसके विपरीत पिछली शताब्दी में भारत खाद्यान्न का निर्यातकर्ता देश था। इसके बाद भारत अब खाद्यान्न का आयातकर्ता देश हो गया है और तब से यहाँ का आयात निरन्तर बढ़ रहा है। १९२१–२५ की अवधि में प्रतिवर्ष औसत आयात १.६ लाख टन

था। १९३६-४० में यह बढ़कर १३'८ लाख टन हो गया था और १९४७-५२ में यह ३२.७ लाख टन था। इस प्रकार यह आज तक उत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है। इससे इन वर्षों में विदेशी विनिमय के साधनों का एक बड़ा भाग खाद्यान्न के आयात में ही खर्च होता रहा है। देश के औद्योगिक विकास के लिये मशीनरी आदि पर्याप्त मात्रा में नहीं आ सकी हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना की आंशिक असफलता का सबसे बड़ा कारण देश में खाद्यान्न के उत्पादन में आवश्यकता के अनुसार वृद्धि का न होना है। भारत के बहुत से महत्वपूर्ण उद्योग-धन्धे जैसे कि कपड़ा, पटसन, चीनी, वनस्पति घी, तेल आदि के उद्योग-धन्धे अपने कच्चे माल (रूई, पटसन, गन्ना और तिलहन आदि) के लिये कृषि पर आश्रित हैं। कृषि एक आधारभूत एवं अत्यन्त पूर्ण उद्योग है। हमें अपने सभी प्रकार के खाद्य जैसे—(अनाज, दालें, फल, सब्जियाँ, दूध, घी) आदि कृषि से ही मिलते हैं। कृषि ही देश के अन्दर व्यापार को बढ़ावा देनेवाली चीज है। यदि किसी साल अकाल पड़ जाता है तो हम देखते हैं कि हमारे यहाँ कई वर्षों तक चाहे वह किसी भी चीज का व्यापारी है, मजदूर है, गाँव में रहने वाला या शहर में रहने वाला है हर वर्ग में इतनी उदासीनता और बेकारी फैलती है कि गरीब लोगों को अपनी शादी वगैरह भी रोक देनी पड़ती है। क्योंकि भूख की समस्या हल करना ही मुश्किल हो जाता है और वह भी महाजन से ऋण वगैरह लेकर हल करनी पड़ती है। कृषि की उपज से ही हम बहुत-सी चीजों का निर्यात कर रहे हैं। हमारे निर्यातों में चाय, पटसन, रूई, तम्बाकू, मसाले, तिलहन वगैरह काफी महत्त्वपूर्ण हैं। जिससे हमें काफी विदेशी मुद्रा मिलती है। इसके साथ ही सरकार को कृषि से बहुत अधिक आय मिलती है। राज्य

सरकारों को मालगुजारी आय, सिंचाई कर, कृषि आय कर, कृषि सम्पत्ति पर कर व सुधार कर आदि भूमि पर आश्रित लोगों से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार को भी निर्यात करों से पर्याप्त आय का बड़ा भाग और चाय व तम्बाकू आदि पर लगाये गये उत्पादन करों (Excise duty) से प्राप्त सारी आय कृषि से ही मिलती है। कृषि के द्वारा ही हमारा पशु-धन कायम है। पशुओं का संरक्षण तथा पालन-पोषण भी कृषि पर ही निर्भर करता है। अकाल पड़ने पर पशुओं का पालन तथा चारा वगैरह की हमारे यहाँ प्रमुख समस्या बन जाती है क्योंकि हमारे यहाँ के छोटे किसान काफी निर्धन हैं। उनकी आमदनी का प्रमुख साधन कृषि ही है। कृषि के समय के अलावा जो समय उनके पास होता है उसमें भी वे किसी विशेष दूसरे काम में नहीं लगते हैं। इसलिए उनके पास केवल खेती ही आमदनी का साधन होता है। अकाल के दिनों में पशु रखना उनके लिये बहुत मुश्किल हो जाता है, अतः वे पशुओं को बेच देते हैं। कृषि के समय जब वर्षा हो जाती है तब ऋण रूप में उनको फिर खरीदने पड़ते हैं क्योंकि हमारे यहाँ खेती की बुवाई तथा ढुलाई आदि सब बैलों एवं दूसरे पशुओं द्वारा ही होती है। इस प्रकार पशुधन का खेती के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। रेलों को बहुत सी आय कृषि द्वारा प्राप्त होती है। क्योंकि कृषि की उपज से कितना खाद्यान्न इधर-उधर ढुलाई करना पड़ता है। कृषि की अधिक उपज के लिये पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के लिये नदी-घाटी योजनायें बनाई गईं परन्तु आज की खाद्यान्न की समस्या को देखते हुए उनसे पर्याप्त लाभ नहीं हुआ है। नदी-घाटी-योजनाओं में भाखड़ा-नांगल योजना जो कि हमारे यहाँ की सबसे बड़ी योजना है, व्यास-योजना, राजस्थान नहर-योजना, हीराकुण्ड,

योजना, दामोदरघाटी-योजना, कोसी-योजना, तुंगभद्रा-योजना, चम्बल-योजना, नागार्जुनसागर-योजना आदि योजनायें चालू की गईं जिनसे कृषि की अधिक उपज में काफी योगदान मिला है। अतः इन सब बातों के अध्ययन से हमें यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि कृषि को भारत की अर्थव्यवस्था में कितना अधिक महत्त्व है। कृषि के लिये निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं :—

(१) भारत में जमींदारी प्रथा अंग्रेजों की देन है। अंग्रेजों के आने से पहले यहाँ वास्तविक किसान भूमि को राजा से प्राप्त करता था और मालगुजारी दे देता था। वह भूमि किसी जमीनदार से लगान पर नहीं लेता था। मालगुजारी को एकत्र करने के लिये मालगुजार अवश्य होते थे। अंग्रेजों ने भारत के बहुत से क्षेत्रों में इन मालगुजारी एकत्र करने वालों को ही भूमि का स्वामी मान लिया और जो भूमि के वास्तविक स्वामी और जोतनेवाले थे उन सब लाखों व्यक्तियों के भूमि का अधिकार समाप्त कर उन्हें काश्तकारों का दर्जा दे दिया। इस प्रकार के नये जमीन के स्वामी भारत में जमींदार कहलाने लगे। इधर देशी राज्यों में भी इसी प्रकार जागीरदारी और बिसवेदारी की प्रथा प्रचलित हो गई। जिसके अन्तर्गत कुछ लोगों को भूमि का स्वामी मान लिया गया और भूमि के वास्तविक स्वामी किसानों को काश्तकार बना दिया गया।

इस प्रकार भारत के सभी राज्यों में सरकार और किसान के बीच भूमि में विभिन्न प्रकार के अधिकार रखनेवाले बहुत से मध्यवर्ती उत्पन्न हो गये थे जो किसानों का कई प्रकार से शोषण करते थे। जैसे अकाल पड़ गया, यहाँ के किसान थोड़ी-थोड़ी भूमि के मालिक हैं ही, वे अत्यन्त निर्धन होते हैं। उस समय वे उस भयंकर समय को पार करने के लिये तथा भूख मिटाने के

लिये भूमि को गिरवी रख देते हैं। उसके बाद प्रायः ऐसा होता है कि वह भूमि गिरवी धरनेवाले आदमी के कर्ज न चुकाने से कुछ समय बाद उसी महाजन के यहाँ रह जाती थी। इस प्रकार यहाँ एक तरफ तो जो जमींदार भूमि वाले थे वे भूमि-हीन होते चले गये। अतः जो भूमि चन्द व्यक्तियों के हाथ में चली गई थी उसका उन्मूलन करना अत्यन्त आवश्यक था और हमारी सरकार ने देश आजाद होने के बाद इसका उन्मूलन करके इस बाधा को हटाया भी है। परन्तु इससे भी कृषि के सब रोग दूर नहीं हो गये हैं क्योंकि एक तो यह सब क्षेत्रों में नहीं हुआ है। अब भी एक-एक आदमी के पास हजारों एकड़ जमीन है। उनके परिवार का कोई भी आदमी खेती का काम नहीं करता। वे ऐशो-इशरत से रहते हैं। काश्तकार लोग काश्त करके उनको कमा कर देते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि वह सब भूमि उनसे ले ली जाये। मुआवजे वा किश्त रूप में भूमि को जोतनेवाले काश्तकारों से दिला दिये जाय। हमारा यह नारा होना चाहिये कि भूमि उसकी होगी जो भूमि को जोतने-वाला होगा।

(२) भूमि-पट्टा की दोषपूर्ण प्रणाली—

भूमि-पट्टा की प्रणाली खेती की कार्यक्षमता को प्रभावित करनेवाला एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है। इस देश की भूमि बड़े-बड़े जमींदारों के हाथों में है और उसकी खेती छोटे-छोटे काश्तकारों द्वारा होती है तो इस तरह ग्रामीण समाज सामन्तिक अधिकार में होगा। इसमें धन व आय का वितरण अत्यधिक असमान होगा। इस प्रकार की प्रणाली अन्यायपूर्ण होगी। इसमें गरीब काश्तकारों का जमींदारों द्वारा शोषण होगा और जनता में

असन्तोष और अशान्ति होगी। इसके विपरीत यदि भूमि की पट्टा की प्रणाली ऐसी है कि देश की भूमि भूमिधरों के हाथों में है और उन्हीं के द्वारा जोती जाती है तो ग्रामीण समाज स्थिर तथा सन्तुष्ट होगा। आज की कृषि वह उन्नत कृषि नहीं है। क्योंकि जो ज्यादा भूमिवाले हैं वे तो शहरों में बैठ कर ऐशो-आराम करते हैं और भूमि की उनको कोई परवाह नहीं कि वह कैसी हो रही है, क्योंकि उनको बगैर सम्भाले ही इतनी आय हो जाती है कि इसको सम्भालने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अब उनके जो छोटे-छोटे काश्तकार हैं वे भूमि की वैसी निगरानी नहीं रखेंगे जैसी अपनी भूमि की रखी जाती है। काफी जमीन बेकार हो जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि जमीन की पैदावार घट जाती है। इस सम्बन्ध में यंग के ये शब्द उल्लेखनीय हैं— "निजी सम्पत्ति का जादू रेत को भी सोना बना देता है। किसी व्यक्ति को रूच चट्टान का अधिकार दे दीजिये वह उसे उपवन में बदल देगा। उसे नौ वर्ष के ठीके में उपवन दे दीजिये वह उसे मरुस्थल में बदल देगा।" यदि देश में भूमि पट्टी की प्रणाली ऐसी है कि जिसके अनुसार स्वयं भूमि जोतनेवाला ही भूमि का स्वामी है और उसको तथा राजा के बीच अन्य कोई मध्यजन किसान का शोषण करने के लिये नहीं है और खेती करनेवालों के ऊपर उचित लगान वगैरः है तो देश में खेती की दशा उन्नत होगी। इसके विपरीत यह पिछड़ी रहेगी।

(३) कृषि-जोत—कृषि-जोत का अर्थ है कि एक किसान-परिवार के पास कितनी भूमि जोतने को हो जिससे कि वह अपने सामान्य आकार के परिवार तथा खेत जोतने वाले बैलों गायों आदि जो एक सामान्य परिवार के पास होने चाहिये—का पालन-पोषण कर सके तथा रहने को मकान भी

बना सके। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम यह देखें कि एक सामान्य किसान-परिवार में आज के समय के अनुसार कितना खर्च होना चाहिये। उस खर्च के मुताबिक उसको कितने अन्न चारा वगैरह की जरूरत होगी और उस प्रान्त में प्रति एकड़ कितनी पैदावार होती है। उस हिसाब से हमें उसके लिये अलग-अलग प्रान्तों की उपजाऊ भूमि के हिसाब से जोत की सीमा निर्धारित करनी पड़ेगी। इसके लिये भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई २० एकड़ कहता है कोई ३० एकड़। परन्तु हमारे विचार से इसकी जाँच करके इसको अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग निश्चित कर बड़े-बड़े भूस्वामियों के पास इस सीमा से अधिक जितनी भी भूमि हो उसे जिनके पास भूमि नहीं है अथवा कम है उनको किस्त रूप में या पूरा भुगतान होने पर दे दिया जाये।

(४) भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करना — भारतीय कृषि की उन्नति के लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण व आवश्यक है कि देश में उद्योग-धन्धों, विशेषतः कुटीर व लघु उद्योगों का शीघ्रताशीघ्र विकास किया जाय और बड़ी संख्या में नये-नये रोजगार के साधन उत्पन्न किये जायें और कृषि पर निर्भर फालतू जनसंख्या को इन नये रोजगारों में लगाया जाये। इसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बढ़ती जनसंख्या को रोका जाये।

(५) हमारे यहाँ इस समय पारिवारिक खेती ही अधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त सहकारी खेती, सामूहिक खेती वगैरह भी चालू हो सकती है। परन्तु वे बहुत कम होंगी। क्योंकि यहाँ पहले से ही पारिवारिक खेती का अधिक प्रचलन है। वैसे सहकारी खेती भी एक अच्छा तरीका है। इससे खेतों का आकार बड़े पैमाने पर होगा और उनको सहकारी रूप में कृषि सम्बन्धित कोई भी कार्य करने में अधिक सुविधा मिलेगी।

(६) खेती के पुराने तथा अदक्ष औज़ार—खेती के पुराने यन्त्रों के साथ-साथ भारत में खेती करने के तरीके भी बहुत पुराने और अदक्ष हैं। बीज को बोते समय हाथ से बिखेर दिया जाता है जिससे कहीं कम और कहीं अधिक गिर जाता है। फसल को दरांती से काटा जाता है तथा वहीं बैलों से गाह कर और छाज से बरसा कर लाया जाता है। ये सब तरीके बहुत प्राचीन हो चुके हैं जबकि कोई साधन नहीं थे। इनसे समय भी अधिक लगता है और फसल भी कम होती है। खेती के यन्त्र नये होने चाहिये और नये तरीकों का किसानों में प्रचार होना चाहिए। सरकारी फार्मों पर उन्हें वास्तविक प्रयोगों से दिखलाना चाहिए कि खेती करने की अच्छी विधियाँ क्या हैं और उनसे प्रति एकड़ उपज में कितनी वृद्धि होती है।

(७) उत्तम बीज का कम प्रयोग—भारत में अधिकतर किसान उत्तम बीजों का प्रयोग नहीं करते क्योंकि एक तो वे इसका महत्व नहीं समझते और दूसरे इस प्रकार का कोई प्रबन्ध भी नहीं कि उनको सरकार की तरफ से या और किसी जगह से उत्तम बीज मिल जाये। प्रायः वर्षा होने पर वे बनिये की दुकान से किसी भी प्रकार का बीज उधार ले लेते हैं और बो देते हैं। इससे भी प्रति एकड़ उपज कम होती है।

इसलिये आवश्यक है कि स्थान-स्थान पर बीज स्टोर अथवा बीज डिपो खोले जायँ और वहाँ से किसानों को ठीक समय पर उचित मात्रा में उचित भाव पर बीज मिल सकें।

(८) खाद की कमी—भारतीय खेतों में खाद की अत्यन्त कमी है। इससे भी उपज कम होती है। हमारे अधिकांश किसान खाद के महत्व को नहीं समझते। अतः वे उचित मात्रा में खाद नहीं डालते। खाद गोबर से तैयार हो सकती है परन्तु अधिकतर

गोबर उपले बना कर जला दिया जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ जलाने की लकड़ी की कमी है। अतः आवश्यक है कि गाँवों में बेकार भूमि पर पेड़ लगाये जायँ। साथ ही पशुओं के मल को भी इकट्ठा किया जाय। यह भी खाद के काम आ सकता है। इसके अतिरिक्त किसानों की धर्मान्धता दूर कर उन्हें विष्ठा, हड्डी को खाद के रूप में काम लेने के लिये कहा जाये। रासायनिक खाद की उत्पत्ति बढ़ाकर सस्ते दामों पर किसानों को बेचा जाये।

(९) विनाशकारी कीड़े-मकोड़े तथा टिड्डी वगैरह का होना—भारत में खेती का बहुत-सा भाग विभिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़े होने से नष्ट हो जाता है। इसके लिये आवश्यक है कि किसानों में हानिकारक कीड़े-मकोड़े के विषय में ज्ञान फैलाया जाय। उनको बताया जाय कि ये क्यों होते हैं? इनको किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है? जंगली जानवरों से बचाव के लिये खेतों के चारो ओर बाड़ होनी चाहिए। टिड्डे व टिड्डियाँ भी फसल को बहुत नुकसान पहुँचाती हैं। इनसे बचाव के लिये भी किसानों को तरीके बताये जायं।

(१०) अनपढ़, रूढ़िवादी और भाग्यवादी किसान—भारतीय किसान कठिन परिश्रमी हैं और सर्दी-गर्मी सब कुछ सहन कर खेतों में काम करते हैं। परन्तु वे अनपढ़, रूढ़िवादी और भाग्यवादी हैं। उन्होंने खेतों में कोई नई उन्नति नहीं की और न उनमें नये तरीकों के प्रति उत्साह है। वे तो अपने वे ही पुराने तरीके बर्तते हैं। सब कुछ भगवान के भरोसे छोड़कर हर जगह ठगाई में रहते हैं। इसलिये आवश्यक है कि उनमें शिक्षा तथा विशेषतः कृषि-शिक्षा का प्रचार अवश्य किया जाये। यदि एक गाँव में ५-७ विद्यार्थी भी कृषि-शिक्षा का ज्ञान रखते हैं तो वह गाँव कुछ लाभ उठा सकता है।

(११) मुकदमेबाजी—किसान लोग संकुचित व अनपढ़ होने के कारण छोटी-छोटी बातों पर झगड़ते रहते हैं तथा अपनी गाढ़े पसीने की कमाई मुकदमेबाजी में खोते हैं। इसके लिये किसानों में शिक्षा, सहयोग व सहकारिता की भावना पैदा की जाये और छोटे-छोटे झगड़े ग्राम-पंचायतों द्वारा ही निपटाये जायें।

(१२) फसलों की खेती पर अधिक निर्भर रहना—हमारे यहाँ अधिकतर किसान फसलों की खेती पर ज्यादा निर्भर रहते हैं। हमें चाहिए कि फसल की खेती के साथ-साथ हम सब्जियाँ व फल उगाना भी शुरू करें तथा डेरी-कृषि चालू करें। इससे हमें खाने के लिये हरी सब्जी तथा पीने के लिये दूध-मक्खन वगैरः मिलेगा और साथ में एक उद्योग भी चालू हो जायेगा। विदेशों में सर्वत्र कृषि-डेरी का अच्छा प्रचलन है।

अतः भूमि-सुधार अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि खाद्यान्न की समस्या जीवन के लिये एक प्रमुख समस्या है। जब हम खाने-पीने का ही पूरा प्रबन्ध नहीं कर सकते तो और विकास क्या करेंगे। आज हमें आजाद हुए २० वर्ष हो गये परन्तु अभी भी हम P. L. ४८० के अन्तर्गत गेहूँ लेकर अन्न की कमी पूरी कर रहे हैं यह हमारे लिये बहुत ही शोचनीय है। इसलिये खेती का तेजी से विकास किया जाये। हमारे यहाँ भूमि की कमी नहीं है। कमी है तो कठिन परिश्रम, भूमि का सही वितरण, सिंचाई के पर्याप्त साधन आदि की है। इस प्रकार से सरकार इन सब पर शीघ्रातिशीघ्र ध्यान देकर इनको हल करे ताकि हम खाद्यान्न में पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर हो सकें।

———

टैक्स-प्रणाली

टैक्स-प्रणाली बहुत प्राचीन समय से चली आ रही प्रणाली है। चाहे उस समय में राजतन्त्र, प्रजातन्त्र या एकतन्त्र रहा है, यह प्रणाली बराबर चालू रही है। कर उस समय की परिस्थितियों के अनुसार ज्यादा लगे हों या कम लगे हों परन्तु कर-प्रणाली राजा और प्रजा के बीच अनिवार्य थी। पहले के समय से आज के समय की कर-प्रणाली से बहुत भिन्नता है। उस समय से आज कराधान की पृथक् रीति है। क्योंकि जैसे-जैसे हालात और परिस्थितियाँ बदलती हैं उसी प्रकार इनमें भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। आज का युग प्रजातन्त्र का युग है। कोई सरकार तब तक स्थिर नहीं रह सकती जब तक वह जन-कल्याण के कार्य न करे। अब सरकार को केवल सीमाओं की ही सुरक्षा नहीं करनी चाहिये, उसे उसके अतिरिक्त भी बहुत से कार्य करने पड़ते हैं। आज हमारे यहाँ १७ प्रान्त हैं तथा १० केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र हैं। आजादी से पहले देश हर दशा में पिछड़ा हुआ था। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग-धन्धे आदि सब अविकसित रूप में थे। लोगों का रहन-सहन बहुत निम्न-दर्जे का था। इसलिये आवश्यकता थी कि इन सबकी प्रगति की जाये। यह दृष्टि में रखते हुए सरकार को इन सब कामों पर बहुत धन व्यय करना पड़ता है। लोगों की जान-माल की रक्षा करनी होती है। सारे देश का प्रबन्ध चलाने के लिये बड़े-बड़े दफ्तर स्थापित करने

पड़ते हैं, विदेशों में दूतावास स्थापित करने पड़ते हैं। बहुत से उद्योग-धन्धे भी सरकार चलाती है। जैसे—रेलें, डाकघर, बिजली आदि। खेती-बाड़ी और उद्योगों की उन्नति भी सरकार का ही कर्तव्य है। लोगों के स्वास्थ्य के लिये अस्पताल खोलना तथा शिक्षा के लिये स्कूल, कालेज, वगैरः खोलना भी सरकार का कर्तव्य है। सरकार के अधीन लाखों आदमी काम करते हैं, उनको वेतन देना पड़ता है। इतना ज्यादा व्यय करने के लिये सरकार को आय की आवश्यकता होती है। सरकार की आय-प्राप्ति के बहुत से साधन होते हैं। उनमें से मुख्य साधन कर (Taxes) हैं।

परन्तु आज सरकार ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में इतने अधिक कर लगा दिये हैं कि जनता उससे परेशान, असमर्थ और अशान्त है। आज जो बच्चा हमारे यहाँ जन्म लेता है मरने तक उस पर टैक्स लगे हुए हैं। आज बहुत से कर चालू हैं, जैसे, माल की बिक्री पर कर (Sale tax), आय पर कर (Income tax), सम्पत्ति पर कर (Property tax), हाउस टैक्स, वाटर-टैक्स, जन्म-टैक्स, मृत्यु-टैक्स, साइकिल, मोटर, स्कूटर, यात्रा, कृषि भूमि टैक्स, खुशहाली टैक्स इत्यादि। कहने का तात्पर्य यह है कि हर दिशा में टैक्स पर टैक्स और इन्सपेक्टर (Inspector) पर इन्सपेक्टर हमारे ऊपर थोपे हुए हैं। तो यह सब कैसे हल हो सकता है और इसके बावजूद हमारे विकास कार्यों की तथा रहन-सहन की खेती के लिये सिंचाई वगैरः की, आने-जाने के लिये सड़क, मोटर, रेलें वगैरः की कोई खास और पर्याप्त सुविधा नहीं। आज भी बहुत से गाँवों में चिकित्सा के लिये अस्पताल, पीने के पानी के लिये कुएँ वगैरः के साधन, डाक वगैरः के लिये डाकखाने, सड़कें आदि कम मात्रा में

और अपर्याप्त हैं। कभी-कभी अकाल के समय में भी मालगुजारी देनी पड़ती है। लोगों को शिक्षा के लिये एक स्थान से दूसरी जगह जाना पड़ता है। जिसका व्यय करना बहुत मुश्किल होता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हमारी कर-प्रणाली इस प्रकार की सरल तथा इस रूप में हो जिसे सब दे सकें, इसके लिये निम्नलिखित सुधारों की आवश्यकता है—

(१) जिस चीज पर टैक्स लगाया जाय और जो व्यक्ति वह टैक्स देनेवाला हो वे सब टैक्स के कानून के मुताबिक, समान रूप से दे सकें। यह नहीं कि एक व्यक्ति नकली एकाउण्ट बनाकर उस विभाग के अफसर वगैरह से मिलकर कम टैक्स दे और दूसरे व्यक्ति को उसकी जगह पूरा कर देना पड़े। इस प्रकार के गोलमाल से वह टैक्स गलत रूप में हो जाता है। उसका कोई महत्व नहीं रहता। वह इस प्रकार से लागू हो कि कोई भी उस कर से किसी हालत में बचने न पावे तथा सब व्यापारियों को समान रूप में भरना पड़े। इसके लिये चाहे हम वह कर ऐसी जगह लगाएँ जहाँ से वह चीज उत्पन्न होकर मण्डी में आने से पहले ही कर दे चुकी हो। जैसे उत्पादन पर कर कपड़े की भाँति हो। परन्तु कपड़ा चूँकि मिलों में बनता है। वहाँ तो यह विधि हो सकती है परन्तु कई चीजें ऐसी भी हैं कि जिन पर उत्पादन कर नहीं लग सकता तो उनके लिये चुंगी की तरह इस प्रकार की व्यवस्था हो कि वह वहीं पर दिया जाये ताकि सब पर समान रूप से लगे।

(२) इस प्रकार कर लगाने से इंसपेक्टरों (Inspector) की बहुत कम जरूरत होगी और सरकार को पूरा टैक्स प्राप्त हो सकेगा। लोगों के गड़बड़ खाते वगैरह की जरूरत नहीं रहगी।

आज तो डबल खाते-पत्र बने हुए हैं, उनका एक मात्र कारण है कि हमारी कर-प्रणाली दोषपूर्ण ढंग से बनी हुई है।

(३) कर ऐसे होने चाहिए कि उससे सरकार को पर्याप्त आय हो नहीं तो वह विदेशों से रुपया लेकर ऋणी होती रहेगी और कम आय होने से हमारे विकास-कार्य भी रुके रहेंगे।

(४) कर इतना सरल होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति उस कर के लगाने का उद्देश्य समझ सके और कर की राशि का अनुमान भी लगा सके।

(५) कर देने वाले को यह ज्ञान हो कि कब और कितना कर देना है और कर उस समय माँगा जाये जब वह आसानी से दे सके और उसके संग्रह में ज्यादा व्यय न हो। जैसे आज जो कर लगे हुए हैं उनकी वसूली और देख-भाल के लिए इतने देखने वाले (Inspector) नियुक्त हैं कि काफी व्यय उनके वेतन इत्यादि पर व्यय हो जाता है।

(६) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय के अनुसार कम या ज्यादा कर अवश्य सरकार को देने का साहस होना चाहिए।

(७) आज जो टैक्स पर टैक्स लगे हुए हैं उनसे इतनी उलझनें पैदा हो गई हैं कि व्यापारी यह नहीं समझ पाते हैं कि क्या कानून बना है, कैसे हमें करना है, प्रति वर्ष नये-नये कानून बनाते जाते हैं। पिछले झगड़े सुलझ नहीं पाते कि नया कानून बन जाता है। व्यापारियों को इसकी जानकारी के लिए वकील करना पड़ता है। बही-खाते (Account) के अलग आदमी रखने पड़ते हैं। दिन-रात व्यस्त रहकर भी कोई चैन नहीं। ऐसी परिस्थिति आज व्यापारी वर्ग की है। चाहे वह छोटा व्यापारी है अथवा बड़ा व्यापारी। पहले प्रान्त का टैक्स फिर उस पर केन्द्रीय कर फिर आय कर इस प्रकार से यह

बहुत उलझी हुई समस्या है। इससे व्यय बहुत बढ़ जाता है। हमारे यहाँ के अधिकांश व्यापारी शिक्षित भी नहीं कि वे यह सब उलझनें समझ सकें और उनका बाकायदा हिसाब रख सकें। पूरे कायदे-कानून को न समझने से उनसे वकील लोग तथा अफसर लोग डरा कर नाजायज फायदा उठाते हैं। क्योंकि विदेशों की तरह वे शिक्षित नहीं हैं। इसके साथ ही टैक्स भी बहुत भिन्नता से लगे हुए हैं एक-एक व्यापारी को जो खाद्यान्न का काम करता है, अब उसको सेल टैक्स (Sale tax) की सूची भराते समय अलग-अलग वस्तुओं पर अलग-अलग हिसाब लिखना पड़ता है। जैसे—गेहूँ पर फर्ज किया आधा प्रतिशत या कम या ज्यादा, बाजरा पर इतना, चने पर इतना, दाल पर यह, चीनी, खाण्ड, तेल वगैरह पर इस-इस हिसाब से इस प्रकार काफी हिसाब बन जाता है। यह भी उलझनपूर्ण तरीका है। एक चीज का हिसाब ४%, ५% या ६% यह भिन्नता व्यापारी और चेकर (निरीक्षक) के लिये उलझनपूर्ण है। इसलिए आवश्यक है कि इन असुविधाओं को हटाया जाय। इसकी व्यवस्था बिल्कुल सरल प्रत्येक व्यापारी के समझने योग्य ठीक ढंग की हो।

(८) हलवाई, पनवाड़ी, फल - विक्रेता, परचून - विक्रेता, सब्जी-विक्रेता, दर्जी, नाई, कपड़े का काम करनेवाले, लाण्ड्री, मोची, पुस्तक-विक्रेता आदि छोटे-छोटे उद्योग वाले या काम करने वालों पर इस प्रकार के लाइसेंस जारी किये जायँ जो कि उनके कार्य के अनुसार हों। उदाहरणार्थ १०० रु० वार्षिक लाइसेंस फीस रख दी जाय। इसके बाद उस पर और कोई झंझट न हो। इससे वह कर आसानी से दे सकेगा। सरकार को भी कर समय पर मिल जायगा और इस कार्य की

देखभाल के लिये एक जिले में एक आदमी की नियुक्ति की जाय जो पर्याप्त होगी। इस प्रकार यह कर सुरक्षित रूप में रखकर राज्य या केन्द्र सरकार के पास पहुँचाया जाय। यह काम करने वाले चाहे शहर में हों या गाँव में यह सब पर लागू हो। इसके अन्दर वे लोग लिये जायँ जो दुकान के रूप में बैठकर कार्य कर रहे हैं अन्य नहीं। क्योंकि जो अन्य लोग हैं वे प्रायः कर देने में समर्थ नहीं होंगे। हाँ, जो दुकान के रूप में बैठे हैं उनके लिये यह ज्यादा भी नहीं होगा। सरकार को आय में इससे काफी मदद मिलेगी। आज जैसे नियम हैं एक परिवार को चार हजार तक कर देने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यह नियम इनके लिये न हो। इनके लिये ऐसा हो कि जो दुकान रूप में कार्य करेगा उसको सालाना फीस (कर रूप) में इतनी देनी होगी। वे जिस प्रकार दुकान किराया देते हैं उसी प्रकार यह लाइसेंस फीस हो।

(९) व्यापार के कानून जितने सरल और व्यवहार में सुगम होंगे, उनसे भ्रष्टाचार खत्म होने, मुनाफाखोरी मिटने, जमाखोरी खत्म करने में उतनी ही सहायता मिलेगी। क्योंकि भ्रष्टाचार का और इनका काफी सम्बन्ध है। इसके साथ ही प्रत्येक व्यापारी पर यह नियम हो कि वह कभी भी चाहे भाव मंदा है या तेज; गाँव का व्यापारी है अथवा शहर का, इस सीमा से अधिक उस चीज का संचय नहीं कर सकता। और काश्तकार भी जमीन का मालिक इस मात्रा से ज्यादा अन्न नहीं रख सकता। ऐसा नियम होना चाहिए। इससे जमाखोरी बन्द होगी। भावों में ज्यादा मन्दा तेज नहीं आएगा। हर चीज का संतुलन ठीक रहेगा।

(१०) इनकम टैक्स (Income tax) की बजाय सेलटैक्स

(Sale tax) ज्यादा उलझनपूर्ण है। इसके लिये यह आवश्यक है कि सेल टैक्स (Sale tax) किसी भी चीज पर न हो। आज की तरह इसकी जगह जिन चीजों पर उत्पादन कर का हिसाब हो वह वहीं पर पूरी मात्रा में लगा दिया जावे। जिन पर ऐसी व्यवस्था न हो वहाँ चुङ्गी वगैरः की तरह से लिया जावे। जो चीजें बाहर से आयात करनी पड़ें उन पर ड्यूटी बढ़ा दी जाये फिर बिक्री कर वगैरः की आवश्यकता न हो। इसके अन्तर्गत कपड़े की व्यवस्था ठीक है। उस पर बिक्री कर खत्म हो गया। यह अच्छा कदम है। खाद्यान्न पर की खेती के हिसाब से कुछ टैक्स तो लगता ही है इसके अलावा खाद्यान्न की बिक्री कर का यह प्रकार हो सकता है कि जैसे एक परिवार में जितने पशु और आदमी हैं उन पर साल में इतना अन्न अनुमानतः व्यय होता है। उस पर इतना कर होना चाहिए। उसका हिसाब लगाकर उस परिवार से साल में उतना ही कर ले लिया जाये। और जिस प्रकार से किसी परिवार का व्यक्ति काम करने के लिये परिवार से अलग दूसरे प्रान्त में गया हुआ है। तो उसके परिवार से वही कर साथ में लगा कर ले लिया जाये। इस प्रकार कोई भी कर से बच नहीं सकेगा और सरकार को पूर्ण आय प्राप्त होगी। इसमें देश के सब व्यक्ति आ जायेंगे चाहे वे कृषक हैं अथवा नौकरीवाले या व्यापारी वगैरः। इसके अलावा खाद्यान्न की पूर्ति के लिए जो अन्न बाहर से आये वह व्यापारी वर्ग को देने से पहले उसे इस प्रकार का भाव करके देना चाहिये ताकि बाद में और कोई कर लागू न हो। इसके साथ ही कभी किसी गाँव या प्रान्त में अकाल या बाढ़ वगैरः हो, उस समय लोगों की हालत दयनीय हो तो यह कर उन पर उस साल के लिये छोड़ दिया जाये। खाद्यान्न के लिये जैसी भूमि हो वैसा

कर पहले ही लगा दिया जावे। कपड़े और खाद्यान्न के बाद जो चीज सोना, चाँदी, गोटा वग़ैरः हैं उनके लिये ऐसा हो कि प्रत्येक व्यक्ति विवाह शादी में या वैसे घर के प्रयोग के लिये एक सीमा से ज्यादा न ले सके। जो लेने की सीमा निर्धारित की जाये उस पर वह टैक्स लागू हो, उसका फार्म भरा दिया जाये और उसके अनुसार टैक्स दिया जाये। जो न ले उस पर लागू न हो। इससे इन चीजों में जो अव्यवस्था है वह हटेगी और कर भी ठीक दिया जायेगा।

(११) यात्रा के लिये बस, रेल या हवाई जहाज, जहाज वग़ैरः जो हो उसका कर टिकट के साथ लिया जाये। इसी प्रकार मनोरंजन वग़ैरः स्थलों में जाने के टैक्स उनके टिकटों पर लिया जाये।

(१२) अचल सम्पत्ति जो बनाई जाये उस पर उसकी लम्बाई, चौड़ाई लागत के हिसाब से कर लिया जाये। यह Income tax आय कर से अलग हो। इसी प्रकार वनस्पति घी पर कर तो मिलों में उत्पादन पर लग सकता है। देशी घी और दूध पर पशुओं के लिहाज से कर लिया जाये।

इन सबसे यह होगा कि हमें आज की निस्बत कम अफसर रखने पड़ेंगे। उनको रिश्वत लेने का रास्ता नहीं मिलेगा इस प्रकार सरकार को पूरा कर मिलेगा। आज जो गड़बड़ होती है वह नहीं होगी। व्यापारी-वर्ग या अन्य जनता चैन से रहेगी।

———

अचल सम्पत्ति

सृष्टि के आरम्भ में जब मानव जाति का जन्म हुआ उस समय मनुष्य को अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिये भोजन की आवश्यकता हुई और उसने विविध प्रकार से भोजन करके मांस इत्यादि अथवा कन्दमूल खाकर अपनी क्षुधा को शान्त किया। इसी प्रकार जब सभ्यता का विकास हुआ तब शरीर को ठंढ और धूप से बचाने के लिये कपड़े का आविष्कार हुआ इसी तरह उसने गर्मी-सर्दी वर्षा वगैरः से बचने के लिये मकानों का निर्माण करना आरम्भ किया। रोटी, कपड़ा की तरह रहने के लिये मकान भी उतना ही आवश्यक है जितनी कि खाने के लिये अन्न और पहनने के लिये कपड़ा। प्राचीन समय से ही यह कार्यक्रम चालू है। उस समय आज की भाँति उन्नत और भव्य इमारतें तो नहीं थीं परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ ये उन्नत होती गईं। राजगृह और महल वगैरः तो पहले भी उन्नत दशा में तथा कलापूर्ण ढंग से बने हुये थे परन्तु आम जनता अपनी-अपनी आर्थिक व्यवस्था के लिहाज से ही झोपड़ी वगैरः तथा कच्चे मकान टीन वगैरः के बनाती थी। सभ्यता तथा जनसंख्या के लिहाज से आज की परिस्थितियाँ पहले से भिन्न हैं। आज हमें पहले की अपेक्षा अधिक मकानों की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को रहने के लिये मकान, कारोबार के लिये दुकान या उद्योग धन्धेवालों के लिये उद्योग की जगह तथा

पशुओं के लिये जगह चाहिए। इस प्रकार से आज मकानों का निर्माण हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। राष्ट्र के कार्यों के लिये, शिक्षा के लिये, आरोग्यता के लिये अस्पताल वगैरः हर दिशा में मकानों की जरूरत है। इसलिये आवश्यक है कि मकानों की एक सुन्दर व्यवस्था हो ! आजादी के बाद तीन पंचवर्षीय योजनाएँ बनी हैं। उनके अन्दर मकानों की व्यवस्था के लिये कुछ प्रोग्राम बनाया गया था। परन्तु आज की बढ़ती हुई जनसंख्या की दृष्टि से वह कार्यक्रम (प्रोग्राम) सफल नहीं हुआ। आज देश के अधिकांश लोग किराये के मकानों में निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त पूरा किराया देने के बावजूद भी वे गुजारे लायक आराम की जगह प्राप्त नहीं कर पाते। मकान बड़ी मुश्किल से कहीं एक खाली होता है कि किरायेदारों की भीड़ लग जाती है। कारोबार करने के लिये दुकानदारों को सलामी देनी पड़ती है जबकि किराया भी दे रहे होते हैं। कलकत्ता, बम्बई या कोई बड़ी जगह हमारे रहने के लिये इतनी शोचनीय दशा में हैं कि वहाँ स्वास्थ्य बिलकुल खराब हो जाता है। ऐसे-ऐसे कटरे कारोबार के लिये बने हुए हैं कि जिनमें कभी भी सूर्य की रोशनी प्राप्त नहीं होती। दिन में भी बत्ती जलाकर और पंखे चला कर गुजर करनी पड़ती है। बड़े शहरों में पशुओं के लिये तो क्या मनुष्यों को रहने तक के लिये जगह नहीं। इनके बावजूद जो मकान हैं उनमें भी काफी समय पहले से चन्द आदमियों ने कब्जा कर रखा है। आज भी उनके लिये कोई ऐसा नियम नहीं कि एक व्यक्ति इससे अधिक मकान नहीं बना सकता। इसी कारण आज हर व्यक्ति को जगह उपलब्ध नहीं होता और चन्द व्यक्तियों के हाथों में मकान होने से आज कितने मुकदमे मकान मालिक और किराएदार के बीच

अदालतों में चल रहे हैं। कानून बनने के बावजूद भी यह समस्या दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही है। क्योंकि जो व्यक्ति आज इस पृथ्वी पर जन्म लेता है, उसको उसी दिन से रहने की जगह की जरूरत होती है तो यह कितनी आवश्यक है हमारे जीवन के लिये। समाजवादी समाज के लिये इस व्यवस्था का हल ठीक ढंग से एक अनिवार्य कार्य है। इसलिये आवश्यक है कि इसमें निम्नलिखित सुधार किये जायँ—

(१) प्रत्येक व्यक्ति के लिये मकान-निर्माण की सीमा निर्धारित हो। यह नहीं कि एक व्यक्ति कितने ही मकान बनवाये और उनको किराये पर दे। इस प्रकार दूसरे व्यक्ति उनसे वंचित रह जाते हैं। क्योंकि उनके पास आर्थिक साधन विशेष होने से वे आम आदमी को जगह क्रय करने नहीं देते तथा सभी सामान सीमेण्ट, लोहा, ईंट वगैरः भी वह उनकी अपेक्षा अधिक दामों में लाकर लगा सकता है। इससे भी आम-लोगों को मकान उपलब्ध होने में बाधा होती है। आज हालत क्या है कि एक जगह तो दसमंजिले मकान बन रहे हैं और एक जगह किसी साधारण आदमी को कहीं अपने पुराने मकान की मरम्मत के लिये कुछ सीमेंट की जरूरत है तो वह प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार इन चीजों में मुनाफाखोरी अत्यधिक बढ़ रही है। इन चीजों की उत्पादनक्षमता भी सीमित है इसलिये यह आवश्यक है कि एक व्यक्ति के लिये यह निर्धारित हो कि वह इतनी अचल सम्पत्ति रख सकता है।

(२) अधिक मकान एक व्यक्ति के पास होने से अत्यंत अनर्थकारी है, वह व्यक्ति उसको अपना एक कारोबार बना लेता है वह उसकी आय का साधन हो जाता है। परंतु यह एक निष्क्रिय आय है। इस प्रकार की आय जीवन को सक्रिय रूप नहीं दे सकती

और वे व्यक्ति प्रायः निकम्मे और आलसी हो जाते हैं। अथवा अधिक होने से दूसरे कार्यों के जरिये काफी पैसा एकत्र करके समाज का शोषण करते हैं।

(३) भारत चूँकि एक निर्धन देश है। यहाँ दूसरे समृद्ध देशों की भाँति मानचित्र लाकर मकान नहीं वनने चाहिएँ। आज मकानों का निर्माण दूसरे उन्नत मुल्कों में चरम सीमा पर है। उनके निर्माण में जो समय, पैसा तथा सामान उपयोग होता है वह कीमती होता है। अतः इस प्रकार के मकानां का निर्माण यहाँ की आर्थिक दृष्टि से बहुत ही नुकसानदेह है। सरकार का इस तरफ कोई ध्यान नहीं। उसकी स्वयं की जो इमारतें वनती हैं उनके नक्शे भी इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर नहीं बनाये जाते। वे भी मास्को, न्यूयार्क, वाशिंगटन, टोकियो वगैरः के नक्शे लाकर वनाये जाते हैं। अतः इन पर पूर्ण प्रतिवन्ध लगाना चाहिए। इनके लिये यह नियमावली हो कि मकान के निर्माण के लिये चाहे वह सरकारी हो अथवा सार्वजनिक, कोई भी सामान बाहर से न मँगाया जाये। इससे हमारे यहाँ जो विदेशी मुद्रा की कमी है वह कुछ अंश में पूरी होगी तथा लाभ होगा। क्योंकि मकान के लिये ऐसी कोई चीज नहीं जो हम बाहर से आयात किये बिना न बना सकें। वे मकान सादे, मजबूत, साफ तथा हवादार हों। कहना नहीं होगा कि एक तरफ तो आज इन नक्शों ने हमें इतना आकर्षित कर लिया है कि हमारे यहाँ के गाँव वगैरः एक ऐसे कमरे से भी वंचित हैं जहाँ पर वच्चे बैठकर अपनी शिक्षा प्राप्त कर सकें और दूसरी ओर ऐसे-ऐसे मकानों का निर्माण हो रहा है कि जो अत्यन्त कीमती हैं। तो क्यों न हम इन भवनों को साधारण बनायें ताकि देश के दूसरे हिस्सों में स्कूल, कालिजों का प्रबन्ध कर सकें। एक-एक होटल की

बिल्डिंग करोड़-करोड़ रुपये की बनती है और हम कहते हैं कि हम गरीब हैं तथा देश में समाजवाद लाना चाहते हैं। नई दिल्ली की लायब्रेरी आप देखिये। कालिज तथा बैंक और सरकारी इमारतें वगैरः देखकर आपको आश्चर्य होगा कि यह गरीब कहनेवाले देश की इमारतें हैं। इसी प्रकार एक अमीर के घर को देख कर फिर एक गरीब की झोपड़ी को देखें जोकि ओले, वर्षा तथा भयंकर गर्मी को सह रहा है, दूसरा उस समय एयर-कंडीशन (Air Conditioned) कमरों में है तो क्या इस प्रकार समाजवाद आयेगा, नहीं आयेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे मकान हर क्षेत्र में सादे ढंग के तथा ज्यादा से ज्यादा व्यक्तियों को उपलब्ध हों तथा एक समय के बाद हमारे देश के हर नागरिक के पास रहने के लिये मकान हों।

(४) प्राचीन समय में भी यह प्रथा थी और आज भी है कि हमारे कहे जानेवाले मन्दिर आदि धर्म स्थानों पर दानी लोगों ने अनावश्यक समाज का शोषण करके इतना पैसा उनको बनाने में लगा दिया है जो कि अनावश्यक है। मन्दिर एक पवित्र स्थान है तथा हम पूजा इत्यादि के लिये वहाँ जाते हैं तो वह जगह इतनी ऊँची और आकर्षक बनाने के बजाय सादगी-पूर्ण होनी चाहिए जो जनता के मन को शृङ्गार की तरफ न ले जावे। वह जगह तो जितनी सादी होगी उतनी ही अच्छी होगी। उसके शृङ्गार की कोई आवश्यकता नहीं। वहाँ तो मन की पवित्रता की जरूरत है। इसलिए इन चीजों पर अनावश्यक पैसा न लगे यह सरकार की तरफ से नियम होना चाहिए। कई-कई गाँव व शहरों में आपको ऐसे मन्दिर वगैरः मिलेंगे परन्तु वहाँ पर शिक्षा के लिए स्थान नहीं। पूजा-पाठ तो हम बाहर जंगलों में एक वृक्ष के नीचे भी कर सकते हैं। उनके (मन्दिर आदि)

के लिए इस प्रकार पैसा खर्च करना आवश्यक नहीं प्रत्युत हानिकारक भी है।

(५) प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार का नियम हो कि हर वर्ग का आदमी अपना मकान बनाने के लिए सरकार से किश्त रूप में ऋण ले सके क्योंकि हमारे यहाँ हर आदमी ऐसा समर्थ नहीं कि वह एक साथ मकान बनवा सके। ऐसा नियम पिछली योजनाओं में बनाया भी गया है। परन्तु हर व्यक्ति को मिलने में कठिनाई रहती है तथा कुछ व्यक्ति ही उसका फायदा उठाते हैं।

(६) मकान निर्माण करनेवाले निर्माता को इस प्रकार के नियम सरकार की तरफ से बताये जायें कि वह कम कीमत में ज्यादा मकान बना सके तथा आधुनिक ढंग का साफ-सुथरा, हवादार बना सके। इस प्रकार की हिदायतें हों क्योंकि हर व्यक्ति इस ज्ञान से अनभिज्ञ रहता है तथा कारीगर लोग इस प्रकार की राय दे देते हैं कि जिससे रुपया भी अधिक खर्च हो जाता है और काम कम होता है। जैसे, मकानों में अधिक टीपटाप न होवे प्रायः साफ हों इससे समय तथा पैसे दोनों की बचत होगी और भविष्य में सफेदी, रंग, रोगन करना बहुत कम कीमत में होनेवाला होगा।

(७) मकान में लेटरीन (पाखाना) की प्रथा कई एक जगह बहुत खराब है। उसके लिए आवश्यक है कि मकान में पाखाना ऐसी जगह बनाये जायें जो साथवाले मकान तथा गली में आने जानेवालों के लिए दुर्गन्ध का कारण न हो। इससे लोगों का स्वास्थ्य खराब होता है और रोग फैलने का डर रहता है।

(८) जिन व्यक्तियों के पास आज अधिक मकान हैं वे उनके पास से लेकर बिना मकानवालों को किश्त रूप में दिए जायें।

जिस मकान की सीमा निर्धारित हो वही उसके पास रहे अधिक नहीं। इससे मकानों का वितरण ठीक होगा तथा मकान की सुविधा अधिक आदमियों को मिलेगी। मकानों की सुरक्षा अधिक रहेगी। क्योंकि आज जो किराया कमानेवाले हैं उनके मकानों की दशा अधिकांश ऐसी खराब है कि वह वर्षा ऋतु में गिर जाते हैं और जन धन का उससे काफी संख्या में नुकसान होता है। क्योंकि उनका मतलब होता है कि जो किराया निर्धारित है वही मिलना है इसलिये वह मकान को क्यों ठीक करायें। इस प्रकार मकान और किरायादार का परस्पर झगड़ा समाप्त हो जायेगा और मकानों का पूर्ण निर्माण हो सकेगा तथा वे सक्रिय काम में लग सकेंगे।

(९) मकान-सीमा निर्धारित करते समय यह ध्यान रखा जाए कि एक आदमी आज गाँव में है और वहाँ उसके पास रहने का मकान है उसके बाद वह गाँव से शहर में या और दूसरे प्रान्त में या विदेश में व्यापार कर लेता है तो उसके लिए इस प्रकार का नियम बनाया जाए कि उसका वह मकान उसी का रहे क्योंकि आज वह शहर में या और किसी स्थान पर है बाद में वह किसी कारण या उसके परिवार का कोई व्यक्ति वहाँ आए तो उसको असुविधा होगी। अतः उसके पास वह मकान होना जरूरी है। हाँ, वह चाहे तो इस प्रकार का मकान किराए पर दे सकता है।

(१०) आज वह समय नहीं जब कि शाहजहाँ ने अपनी बीवी के एक विशाल इमारत बनाने में कितना समय और पैसा, मजदूर लगाए जब कि प्रजा के बच्चों को बैठने तक के लिए तथा शिक्षा प्राप्त करने के लिए कोई जगह नहीं थी। वह राजतन्त्र का युग था। आम जनता उसके विरुद्ध कुछ नहीं कर

सकती थी। वह प्रजा का पैसा शोषण कर रहे थे और ऐशों-अशरत में बर्बाद करते थे। देश गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ था। उसी प्रकार से आज भी हम पैसे को बरबाद करें तो यह जनकल्याण के हित में नहीं। इसलिए आवश्यक है कि इस प्रकार के नियम बनाए जायें ताकि अधिक से अधिक व्यक्तियों को रहने के लिये मकान मिल सकें और वे सादे, स्वच्छ, हवादार हों।

समाजवाद

आज संसार में काफी वाद फैले हुए हैं। उदाहरणार्थ व्यक्ति-वाद, साम्यवाद, समाजवाद, गान्धीवाद, पूँजीवाद इत्यादि। विभिन्न देशों में इनको अपने-अपने दृष्टिकोण से विभिन्न-विभिन्न रूपों में मान्यता दी गई है। कोई देश साम्यवादी है तो कोई समाजवाद को अच्छा समझता है। इस प्रकार वे अपने-अपने ढंग से पृथक-पृथक् मान्यताएँ देते हैं तथा उसका प्रचलन कर रहे हैं। प्राचीन काल में लोग अपनी इच्छा से इधर-उधर घूमते थे और सब कार्य स्वतन्त्रता से करते थे। परन्तु बाद में लोगों में आपसी झगड़े छिड़ने लगे और जीवन असह्य होने लगा। इस-लिये कानून और शान्ति की स्थापना के लिये लोगों के कल्याण के लिये राज्य की नींव पड़ी। उस समय के महान पुरुष मनु थे। लोगों ने मनुमहाराज से अनुरोध किया कि आप हमारे सर्वेसर्वा होकर राज्यकार्य चलायें और हम आपके राज्य के खर्च के लिए भूमि-कर तथा व्यापारिक वस्तुओं पर कर देंगे। इस प्रकार राज्य-कार्य चालू हुआ। महाभारत तथा कौटिल्यशास्त्र से पता चलता है कि पहले आदि काल में यहाँ अराजकता फैली हुई थी। बाद में इसकी व्यवस्था के लिए तथा जनता के कल्याण और सुरक्षा के लिए राज्य की नींव पड़ी। इसलिए उपरोक्त लिखे हुए कारणों से हमें मालूम होता है कि राज्य के बिना न तो लोगों का जन-जीवन सुखी रह सकता है न वहाँ पर सुरक्षा के उपाय हो सकते

हैं। न कोई कानून विधान बन सकता है। अराजकता फैल जाती है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि मानव के सर्वांगीण विकास के लिए राज्य की परम आवश्यकता है। राज्य-प्रणाली चालू होने के पश्चात् ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास शुरू हुआ त्यों-त्यों समय के अनुसार लोगों के अन्दर जाति भेद, वर्गभेद, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर का पार्थक्य बढ़ने लगा। इस प्रकार काफी असमानता होने लगी। गरीब लोग अमीर वर्ग को देखकर मन में द्वेष करने लगे और नीची जाति के लोग ऊँची जातिवाले को देखकर ईर्ष्या करने लगे। इस प्रकार से जब ऐसा वातावरण समाज में फैलने लगा तो उस समय के विचारक तथा दार्शनिकों ने अपने सिद्धान्त के अनुसार अपने-अपने विचार व्यक्त किए। किसी ने व्यक्तिवाद को महत्ता दी। उन्होंने कहा कि व्यक्ति को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए, राज्य को उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यहाँ सबको समानाधिकार, बँटवारे से धन, श्रमभूमि वगैरः मिलनी चाहिए। उस पर चन्द व्यक्तियों का आधिपत्य न हो। इस प्रकार उनके अलग-अलग नाम साम्यवाद, समाजवाद वगैरः पड़े। आज इन प्रचलित वादों का स्पष्टीकरण मोटे तौर पर इस प्रकार है—

(१) व्यक्तिवाद—इस सिद्धान्त के सबसे बड़े समर्थक जानस्टुअर्टमिल, हरबर्ट स्पैन्सर तथा स्मिथ हुए हैं। वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अधिक महत्व देते थे। उनकी मान्यता थी कि राज्य का हस्तक्षेप उसमें ठीक नहीं। वे कहते थे कि व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उनकी मान्यता थी कि राज्य को केवल तीन कार्य करने चाहिए—

(१) बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा।

(२) समाज में शान्ति और व्यवस्था।

(३) लोगों के जान एवं माल की रक्षा।

परन्तु इसके अलावा भी आज के युग में हम देखते हैं कि लोगों की शिक्षा के लिए स्कूल, कालिज, मनोरंजनों के साधन तथा लोगों में जुआ, शराब आदि बुरी आदतों को रोकना वगैरः बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनके ऊपर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक है।

(२) साम्यवाद—आधुनिक साम्यवाद कार्लमार्क्स के प्रोग्राम को मानता है। कार्लमार्क्स ने कहा कि "दुनियाँ के मजदूरों एक हो जाओ और पूँजीवाद की जंजीरों को तोड़ डालो।" कार्लमार्क्स मजहब को अफीम मानता था और राष्ट्रीय सीमाओं को कोई महत्त्व नहीं देता था क्योंकि इससे संसार के मजदूरों के संगठन में बाधा पड़ती थी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अधिकतर क्रान्तिकारी तरीके अपनाये गये। परन्तु ये जर्मनी और फ्रांस में असफल रहे। मार्क्स के अनुसार इस प्रकार मजदूरों का संगठन होने से उनका शोषण बन्द होगा और पूँजीवाद का नाश होगा और धीरे-धीरे यह पूँजीवाद प्रणाली हटने से इसके स्थान पर राज्य-विहीन तथा वर्गविहीन समाज का विकास होगा। साम्यवाद का सबसे अधिक प्रभाव रूस पर पड़ा। वहाँ पर जारशाही के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। रूस के निर्माता लेनिन के नेतृत्व में यह क्रान्ति १९१७ में हुई। १९२४ में लेनिन की मृत्यु हुई। तत्पश्चात् स्टालिन रूस के सर्वेसर्वा हुए। उसके बाद ख्रुश्चेव और कोसीजिन ने वहाँ पर साम्यवाद को मजबूत किया। १९४९ में रूस की सहायता से चीनी कम्यूनिष्टों ने भी चीन में मार्शल चाँग काई शेक की सरकार को उखाड़ कर फेंक दिया और वहाँ पर क्रान्ति के द्वारा साम्यवाद की स्थापना हुई। इसके

बाद कई देशों में क्रान्तियाँ हुईं और वहाँ साम्यवाद की स्थापना हो गई। जैसे, युगोस्लाविया, चैकोस्लाविया, हंगरी, रूमानिया, पोलैण्ड, पूर्वीजर्मनी, फिनलैण्ड, रूमानिया वगैरः। इस प्रकार आज कम्युनिस्ट दूसरे मुल्कों में भी अपना प्रचार कर रहे हैं तथा वहाँ भी क्रान्ति लाकर साम्यवाद की स्थापना की चेष्टा में है। उत्तरी वियतनाम में जहाँ आज संघर्ष चल रहा है डा० होची-मिन्ह के नेतृत्व में क्रान्ति आ चुकी है। अफ्रीका में साम्यवादी क्रान्ति के प्रयत्न किये जा रहे हैं। हमारे देश में भी मिस्टर डाँगे, श्री नम्बूद्रीपाद, श्री ए. के. गोपालन, श्री भूपेश गुप्त वगैरह प्रभावशाली नेता साम्यवाद के लिये प्रयत्नशील हैं। कुछ वर्ष पूर्व केरल में साम्यवादी सरकार स्थापित हुई थी इस समय पुनः वहाँ साम्यवादी सरकार बनी है। तीसरे आम चुनाव में भी लोक सभा के काफी स्थान साम्यवादी दल ने प्राप्त किये थे। साम्यवादी दल का केन्द्र में कांग्रेस के बाद दूसरा स्थान था। इसीलिये संसार के सभी देशों पर इसका काफी प्रभाव पड़ा है। परन्तु इसके साथ ही साम्यवाद धर्म में आस्था नहीं रखता और कार्ल-मार्क्स के शब्दों में यह धर्म को अफीम समझता है। साम्यवादी देशों में यद्यपि संविधान के अनुसार पूजापाठ की स्वतन्त्रता है परन्तु धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता नहीं है। साम्यवादी परमात्मा को नहीं मानते। मार्क्स के अनुसार साम्यवादी मजदूर वर्ग की तानाशाही में विश्वास रखते हैं। साम्यवादी देशों में केवल साम्यवादी दल ही पनप सकता है। अन्य सभी दल नष्ट कर दिये जाते हैं। समाचारपत्र, भाषण और लेखों में साम्यवाद की आलोचना करने का जनता को अधिकार नहीं है। साम्यवादी तोड़-फोड़ तथा हिंसात्मक कार्रवाइयों से क्रान्ति लाना चाहते हैं तथा उसमें विश्वास करते हैं। रूस में जब क्रान्ति आई तब काफी

आदमियों का खून बहा था। कार्लमार्क्स के अनुसार मानव इतिहास में सब परिवर्तनों तथा क्रान्ति का मुख्य कारण आर्थिक है। इस प्रकार साम्यवाद पूँजीवाद के विरुद्ध है।

(३) समाजवाद—समाजवाद का उदय व्यक्तिवाद से उत्पन्न हुई बुराइयों के कारण हुआ। क्योंकि व्यक्तिवाद चाहता है कि सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप कम से कम हो। परन्तु समाजवाद इसके विपरीत राज्य का हस्तक्षेप सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में अधिक से अधिक चाहता है। समाजवाद चाहता है कि उत्पादन के साधनों पर समाज का नियन्त्रण स्थापित किया जाय। समाजवाद को लोगों ने अपने-अपने ढंग से माना है। कहने को तो हमारी सरकार ने भी समाजवाद का नारा बुलन्द किया है और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी समाजवादी है ही। परन्तु उनकी अपनी मान्यता में फर्क है, दोनों समाजवाद को चाहती हैं। समाजवाद का प्रभाव भी संसार के सब देशों पर पड़ा है। पश्चिमी योरुप के कई देशों, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली इत्यादि में भी समाजवादी दल हैं। भारत में भी डा. राममनोहर लोहिया और एस. एम. जोशी, एन. जी. गोरे, श्री कामत, श्री मधुलिमये के समाजवादी दल हैं। मिस्टर अशोक मेहता, आचार्य कृपलानी, श्री जयप्रकाश नारायण भी इसके महत्त्वपूर्ण नेता रह चुके हैं। यह दल भारत में अहिंसात्मक तरीकों से जनतन्त्रात्मक समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना चाहता है। यह साम्यवाद की तरह रक्तपात में विश्वास नहीं रखता। इनका उद्देश्य है कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण (Nationlisation) कर दिया जाय। भूमि को जमींदारों से लेकर भूमि जोतने वाले किसानों को दी जाय तथा इसके बदले जमींदारों को उस भूमि का कोई धन न दिया जाय। प्रजा-समाजवादी दल का

विश्वास है कि किसी भी व्यक्ति को दो हजार रुपए मासिक से अधिक वेतन न दिया जाय। इसके साथ ही वे कारखाने और सुरक्षा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में हैं। वे यह चाहते हैं कि निजी मुनाफा, व्याज, तथा किराये इत्यादि की कमाई को नष्ट किया जाय। इस प्रकार वे पूँजीवाद को नष्ट करके समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि एक आदमी बहुत अमीर न हो और दूसरा बहुत गरीब न रहे। इस प्रकार समाजवाद आ सकता है। हमारा आर्थिक अनुपात (१) और (२०) का हो इससे अधिक नहीं।

(४) गान्धीवाद—राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने वास्तव में कोई वाद नहीं चलाया। उन्होंने समय-समय पर अपने विचार राजनीति, धर्म, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के विषय में प्रकट किये। उन्हीं विचारों को इकट्ठा करके लोगों ने उनको गान्धीवाद का रूप दिया है। गान्धीजी की धर्म में विशेष आस्था थी। उन पर श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का बहुत प्रभाव पड़ा था। वे सब धर्मों की इज्जत करते थे। इसीलिए वे धर्म और राजनीति को अलग-अलग नहीं समझते थे। उनकी मान्यता थी कि धर्म नैतिकता प्रदान करता है। धर्म ही हमें सत्य, अहिंसा, त्याग और हमदर्दी का पाठ पढ़ाता है। उनका धार्मिक झगड़ों में विश्वास नहीं था। इसलिए वे हिन्दू-मुस्लिम एकता में लगे रहे। समाज में वे छुआछूत से घृणा करते थे। वे कहते थे कि मानव मात्र एक है। हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सब भाई-भाई हैं। ईश्वर-प्रार्थना उनके जीवन का आवश्यक अंग था। लोग आश्चर्य करते थे कि इतना बड़ा राजनीतिज्ञ, परन्तु धर्म में इतनी बड़ी आस्था रखता है। इस प्रकार उन्होंने राजनीति और धर्म का एक ताल मेल किया। आर्थिक क्षेत्र में गान्धीजी किसी का शोषण

करना नहीं चाहते थे। वे बड़े कारखानों के स्थान पर कुटीर-उद्योग चाहते थे। ऐसा नहीं था कि वे बड़े कारखाने चाहते ही नहीं थे क्योंकि देश को रेल, जहाज वगैरह की भी जरूरत है। परन्तु वे कहते थे कि हमें इनकी विशेष चिन्ता नहीं और यदि वे हों तो जो बड़े पैमाने के कारखाने हों, वे नागरिक बुराइयों से बचे रहें। गान्धीजी जमींदारों और पूँजीपतियों को खत्म करना नहीं चाहते थे बल्कि उनके विचार बदलना चाहते थे। वे रक्तपात में विश्वास नहीं करते थे। वे चाहते थे कि लोगों की आवश्यकताएँ सीमित हों और सादा जीवन व्यतीत करें। पूँजीपति बहुत थोड़ी और उचित सम्पत्ति रखें। गान्धीजी चाहते थे कि यदि जमींदार और पूँजीपति अपने कर्त्तव्य का पालन न करें तो मजदूरों को अपना सहयोग उन्हें नहीं देना चाहिये ताकि वे उनका शोषण न कर सकें। यदि मजदूर और पूँजीपति मिलकर ट्रस्टी के रूप में कार्य नहीं करें तो गान्धीजी भारी उद्योग-धन्धों पर राज्य का स्वामित्व चाहते थे, गान्धीजी कहते थे गाँव वालों को अपने उद्योग-धन्धे चलाने और बन्दोबस्त करने के लिये अधिक से अधिक स्वतन्त्रता हो। उनकी इच्छा थी कि हम इस रूप से चलें तथा ऐसे उद्देश्य बनायें जिसमें किसी का शोषण नहीं हो और वह अहिंसात्मक रूप से हो। वे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अच्छे उपायों का ही प्रयोग चाहते थे।

समाजवाद की अन्य साम्यवाद, गान्धीवाद आदि से तुलना

पीछे हमने व्यक्तिवाद, साम्यवाद, समाजवाद तथा गान्धीवाद का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है कि किसका क्या उद्देश्य है ? यहाँ हमें यह देखना है कि किसका किसके साथ क्या अन्तर होगा। पहले हम साम्यवाद को लें। साम्यवाद चाहता है कि

आर्थिक क्षेत्र में जो असमानता है वह पूँजीपति तथा मजदूर वर्ग के बीच नहीं होनी चाहिए और इसका उपाय यह है कि हिंसा तथा क्रान्ति के जरिये पूँजीवाद को खत्म किया जाय और उसकी जगह मजदूर-राज्य स्थापित किया जाय। इस संबंध में समाजवादी कहते हैं कि पूँजीपति तथा जमींदार से बिना कोई मुआवजा दिये सम्पत्ति, उद्योग-धन्धे वगैरः का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय तथा भूमि वगैरः किसानों को दी जाय। इसी प्रकार गान्धीजी चाहते थे कि पूँजीवाद को अहिंसात्मक ढंग से नष्ट कर दिया जाय।

इसके साथ ही गान्धीजी तथा मार्क्स के सिद्धान्त में यह भी अन्तर था कि गान्धीजी चाहते थे कि मानव इतिहास में परिवर्तनों के अनेक कारण हैं। केवल आर्थिक ही नहीं, जैसा कि मार्क्स का विचार है। गान्धीजी आर्थिक कारणों के अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक कारणों को भी कम महत्त्व नहीं देते थे। गान्धीजी धर्म में विश्वास करते थे जब कि साम्यवादी धर्म को अफीम मानते हैं। समाजवादी धर्म को व्यक्ति की वस्तु मानते हैं। समाजवादी मजदूरों को ही धन को उत्पत्ति का एकमात्र साधन मानते हैं जब कि गान्धीजी कहते थे कि यह ठीक है कि धन की उत्पत्ति में मजदूरों का बड़ा हाथ है परन्तु वे यह भी मानते थे कि धन की उत्पत्ति में कुछ अन्य तत्व भी कार्य कर रहे हैं। गान्धीजी कार्लमार्क्स की तरह समाज को दो भागों में नहीं बाँटना चाहते थे। वे कहते थे कि समाज में सभी वर्गों को एक दूसरे का शोषण छोड़कर सहयोग से रहना चाहिए। गान्धीजी का धर्म तथा ईश्वर में बहुत विश्वास था परन्तु मार्क्स का ऐसा विश्वास नहीं था। क्योंकि उस समय पादरी योरुप में पूँजीपतियों का साथ देते थे और लोगों में भाग्यवाद का प्रचार

करते थे। वे कहते थे कि किसी के पास धन का होना या न होना यह भाग्य का कार्य है मनुष्य का नहीं। इससे मार्क्स ने सोचा कि इस धर्म के जरिये जो भाग्य का प्रचार होता है यह मनुष्यों के लिये बड़ी घातक है क्योंकि मनुष्य भाग्य को ही सब कुछ समझने लगता है। इससे यह शोषण बन्द नहीं होगा। समाजवादी संसदीय ढंग के लोकतन्त्र पर अधिक बल देते हैं और साम्यवादी मजदूर वर्ग की तानाशाही पर, जब कि गान्धीजी पंचायती राज्य पर बल देते थे।

गान्धीजी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में विश्वास रखते थे और उसमें किसी प्रकार का छल-कपट कूटनीति और बलप्रयोग को निन्दा करते थे जब कि साम्यवादी छल-कपट, बल-प्रयोग वगैरः से पूँजीवाद को हटाकर विश्व में साम्यवाद फैलाना चाहते हैं। गान्धीजी का अध्यात्मवाद में बहुत विश्वास था। समाजवादी तथा साम्यवादी भौतिकवाद में विश्वास करते हैं। वे उत्पादन बढ़ा कर मनुष्य के लिए अधिक से अधिक सुख के साधन जुटाने के पक्ष में हैं जैसे साम्यवाद का नारा है कि रोटी-कपड़ा और मकान।

अब हम मोटे तौर पर यह देखते हैं कि समाजवाद लाने के लिए या आज जो पूँजीवाद बढ़ा हुआ है उसको समाप्त करने के लिए हमारे सामने तीन मुख्य विचारधाराएँ हैं—एक विचारधारा है हिंसात्मक क्रान्ति की, दूसरी है वगैर कोई धन दिए पूँजीपतियों के पास से जमीन छीन लेना तथा उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण करना और तीसरी विचारधारा है अहिंसात्मक तरीके से पूँजीवाद को समाप्त करना। यह ठीक है कि आज समाजवाद की अत्यन्त आवश्यकता है और यह निर्विवाद है कि आज भारत को समाजवाद के बिना आगे बढ़ने का तथा शोषण समाप्त करके

हर वर्ग में सुख शान्ति स्थापित करने का, बेकारी खत्म करने का और सामाजिक, आर्थिक, समन्वय का दूसरा कोई रास्ता नहीं।

हमारी वर्तमान कांग्रेस सरकार ने भी १० जनवरी १९६४ को भुवनेश्वर (उड़ीसा) में इस हेतु एक प्रस्ताव पास किया है कि हम संसदीय ढंग से अपने देश में समाजवाद की स्थापना चाहते हैं। परन्तु अभी उन कार्यों में देरी है जिनके द्वारा समाजवाद स्थापित किया जा सके, क्योंकि समाजवाद लाने के लिए दृढ़ता तथा सक्रियता से कार्य करने की आवश्यकता है। अन्यथा वह हमारा नारामात्र रह जायगा। आज चाहे कोई समाजवादी है या साम्यवादी अथवा गान्धीवादी, परन्तु हम देखते हैं कि सबका लक्ष्य एक ही है कि देश के अन्दर जो असमानता है वह दूर हो और पूँजीवादी समाप्त होकर शोषण खत्म हो। देश के हर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार लाभ मिले। आज की तरह यह न हो एक व्यक्ति तो हजारों, लाखों कमाए और एक की दैनिक आवश्यकता भी पूरी न हो।

गान्धीजी का रास्ता शान्ति और समन्वय का था। उन्होंने यह कहा कि यदि जमींदार और पूँजीपति अपने कर्तव्य का पालन न करें तो मजदूरों को अपना सहयोग उन्हें नहीं देना चाहिए ताकि वे उनका शोषण न कर सकें। तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे पूँजीवाद को समाप्त करना चाहते थे और पूँजीपतियों को कहते थे कि आप इस पूँजी को राष्ट्र की सम्पत्ति समझ कर इसका उपयोग करें। आपकी आवश्यकताएँ सीमित हों। आप ट्रस्टी के रूप में कार्य करें। और यदि ऐसा न हो तो उस पर राज्य का स्वामित्व हो। यह ठीक है कि उनका रास्ता शान्तिमय था।

अब इन सब बातों पर विचार करने से निष्कर्ष यह निकलता है कि हमारे सामने आज एक ही रास्ता है और वह है समाजवाद। अब यह समाजवाद चाहे सरकार के शान्तिमय तरीकों से आये चाहे समाजवादी दल की विचारधारा से आये अथवा हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा साम्यवाद लायें। कहने का तात्पर्य यह है कि समाजवाद आएगा। यह रुक नहीं सकता। इसको मजबूरन लाना पड़ेगा, नहीं तो हम आपस में झगड़कर बर्बाद हो जाएँगे और हमारे सब विकास रुक जायँगे। हम अवनति की तरफ चले जायँगे। अब यह हो नहीं सकता कि एक तरफ ऐशो-इशरत और ठाटबाट हो और दूसरी तरफ भर पेट रोटी भी न मिले। हो सकता है कि यह प्रणाली कुछ दिन और चल जाय परन्तु जनता जागृत हो चुकी है। अब इसमें यही अच्छा है कि और देशों की तरह हिंसात्मक क्रान्ति न होकर, समय को देखते हुए इसमें परिवर्तन हो जाय। आज के पूँजीपतियों और जमींदारों का कर्त्तव्य है कि देश, काल और परिस्थिति को देखते हुए वे सरकार से तथा अन्य पार्टियों से भी पहले आगे बढ़कर उदार दिल से समाज को उन्नत करने का स्वयं प्रयत्न करें यह उनके लिए तथा देश के लिये अति श्रेयस्कर होगा।

गरीब, अनपढ़ कृषक और मजदूर हमारे धनी-मानी व्यक्तियों द्वारा पैरों तले इतने रौंदे जा चुके हैं कि वे निःसहाय हो गये हैं। वे यह भी भूल से गये हैं कि वे भी मानव हैं। इसके साथ ही हमारी दशा इतनी खराब है कि यदि हम उन बेचारे गरीबों के लिये कोई दयापूर्ण बात भी कहें तो हमारे दूसरे बन्धु उससे झिझकते हैं और पीछे हटते हैं। उनके प्रति हमारी यह दुर्भावना बहुत खराब है। यह उस गरीब की भावना को और ज्यादा भड़कानेवाली है। हमारा संकुचित

विचार तथा शोषण की प्रवृत्ति मजदूरों की आत्मा में निरन्तर संघर्ष पैदा कर रही है कभी न कभी इस दबी अग्नि के कारण भयंकर विस्फोट होगा। तब आप पूरे के पूरे उड़ जाओगे। जिनकी मेहनत से आप बने थे वे ही आपके ढहानेवाले हो जाएँगे। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या और ज्ञान उपार्जन करने के लिए एक समान अवसर मिलना चाहिये। हर एक विषय में स्वतन्त्रता अर्थात् मुक्ति की ओर प्रगति ही मनुष्य के लिए उच्चतम लाभ है जो सामाजिक नियम इस स्वतन्त्रता के विकास के मार्ग में बाधक हैं वे सभी हानिकारक हैं। उनको नष्ट करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिए। जिन संस्थाओं के द्वारा मनुष्य स्वतन्त्रता के मार्ग में अग्रसर होते हैं उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिये।

स्मरण रहे राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है। भारतवर्ष के कृषक मजदूर, चर्मकार, मेहतर तथा ऐसे ही निम्न जाति वालों में कार्य करने की शक्ति एवं आत्मविश्वास अपेक्षाकृत अधिक है। यदि मजदूर लोग काम करना बन्द कर दें तो आपको अन्न वस्त्र मिलना भी बन्द हो जाय। इसके विपरीत आज उनको नीची जाति के मनुष्य मानते हैं और अपनी संस्कृति की शेखी मारते हैं आजीविका के संग्राम में लगे रहने के कारण उन्हें आत्मज्ञान की जागृति का अवसर नहीं मिला। वे इतने दिनों से मूकभाव से काम करते आये हैं, और चतुर शिक्षित समुदाय ने उनके परिश्रम के फल का सारांश खींच लिया है। प्रत्येक देश में ऐसा ही हुआ है। परन्तु अब समय बदल गया है। वे निम्नश्रेणी के लोग जागृत हो गये हैं। अब वे और ज्यादा दबाए नहीं जा सकते। चाहे उच्च श्रेणी के लोग कितनी ही कोशिश करें। इसलिए उचित यही है कि पूँजीपति लोग आज इसको

समझ कर उन लोगों को यथोचित अधिकार प्राप्त करने में सहायता दें। वर्तमान समय में आपका कर्त्तव्य है कि आप सब लोगों को साथ लेकर चलें। उनको अपने समान रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, व्यापार, कृषि आदि की शिक्षा दें। आज जो आपका सारा समय धन के संचित करने में लगा हुआ है यह उचित नहीं है। अब आपका समय जनसाधारण को ऊपर उठाने में लगना चाहिये। माया की तृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। आप इस माया-जाल में जकड़ते हुए जा रहे हैं यह जीवन का सार नहीं ? अपितु जीवन निस्सार है। आपका यह छोटा सा जीवन सबका सब इसके संचय में व्यतीत हो, यह उचित नहीं। इससे आपमें और अपनी सन्तान में सक्रियता नहीं रहेगी जिन्दगी काफी आरामदेह हो जायगी। इससे वही हालत होती है जैसे किसी व्यक्ति का ज्यादा आहार-विहार करने से पेट खराब हो जाता है और पेट खराब होने पर यह स्वाभाविक है कि हमारे शरीर के जो दूसरे आवश्यक अंग—दिमाग, भुजाएँ, पैर वगैरः हैं उनको यथोचित खुराक मिलनी बन्द हो जाती है। इससे शरीर रूपी सारा ढाँचा खराब हो जाता है, ठीक इसी प्रकार जब समाज में सब वर्गों को समान रूप से और यथायोग्य हर दिशा में आगे बढ़ने का समान अवसर नहीं मिलता तो समाज का ढाँचा भी खराब हो जाता है और उसका सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता। इसलिए आएँ हम सब मिलकर ऊँच-नीच को भेद-भाव समाप्त कर एक ऐसे विकासशील समाज का निर्माण करें जिसमें विद्वानों (ब्राह्मण) तथा शिक्षित सच्चरित्र व्यक्तियों का ज्ञान, योद्धाओं (क्षत्रिय) की शक्ति, व्यापारियों (वैश्य) की वितरण-शीलता और मजदूरी (शूद्र) का परिश्रम

तथा समता आदर्श ज्यों का त्यों बना रहे और शोषण न हो तभी एक आदर्श राष्ट्र होगा।

इसके साथ ही आज जो साम्यवादी धर्म को अफीम मानते हैं और कार्लमार्क्स के अनुसार तोड़-फोड़ में विश्वास, रखते हैं। धीरे-धीरे राज्य नष्ट होकर मजदूर राज्य को स्थापित होने तथा केवल भौतिकवाद के विकास होने से ही उन्नति होने का विश्वास रखते हैं उनका लक्ष्य भी यही है कि समाज का निर्माण हो परन्तु मेरी मान्यता के अनुसार यह ठीक नहीं है, इससे एक आदर्श समाज का निर्माण नहीं हो सकता। इस प्रकार का समाज बनना भारत के लिए असम्भव भी है और हो सकता है कि दूसरे मुल्कों में ऐसा कुछ हुआ हो। परन्तु यहाँ के लिए ऐसा होना असम्भव है। क्योंकि हमारे यहाँ संस्कृति, मान्यताएं तथा अध्यात्मवाद का जो स्वरूप है तदनुसार यह सब होना मुश्किल है। इसके विपरीत हमारी मान्यता है कि एक इस प्रकार की प्रणाली अपनाई जाय जिसमें बिना किसी हिंसा के एक शोषण-विहीन राज्य हो, जिसमें धर्म की मान्यता हो, जिसमें अध्यात्म-वाद का समावेश हो, न कि केवल भौतिकता का। धर्म मनुष्य को भाग्यवादी बनाता है, पूँजीपतियों का पक्ष लेता है ऐसा मानना धर्म का वास्तविक रूप जानना नहीं कहलाता। वरन् धर्म तो सदाचार की शिक्षा देता है, तथा शोषण का विरोध करता है। धर्मविहीन राज्य राज्य नहीं कहा जा सकता। अन्त में वे राष्ट्र युद्ध और झगड़ों की तरफ ही बढ़ते हैं। इसीलिए हमें इस प्रकार की समाजवादी प्रणाली की आवश्यकता है, जो हमारी संस्कृति के अनुकूल हो। हमारी सरकार ने समाजवाद का नारा लगाया है परंतु उसको क्रियान्वित करने की नीति बहुत शिथिल है। इस प्रकार से समाजवाद केवल नारामात्र ही रह जायगा और वह

आज की तरह चलने से वर्षों तक भी नहीं आ सकता। इसलिए समाजवाद शीघ्र लाने के लिए निम्नलिखित कार्य किये जाने चाहिएँ।

(१) एक उद्योगपति के पास एक ही उद्योग हो और वह लघु उद्योग (Small scale Industries) हो; बड़े पमाने का नहीं। उसकी सीमा हो कि इससे अधिक मजदूर न हों।

(२) इसी प्रकार खेती एक परिवार के पास नियत किल्ले से निश्चित हो। यह अलग-अलग प्रान्तों के हिसाब से हो सकती है। जैसे—कई जगह काढी जमीन है, पानी की है। रेतीली है। वैसे-वैसे अलग-अलग राज्यों के हिसाब से होनी चाहिए।

(३) एक उद्योगपति के पास एक उद्योग है और उसके चार लड़के हैं अब वे अलग-अलग कार्य चाहते हैं एक परिवार में रहकर वे उस उद्योग को नहीं चला सकते तो बालिग होने के बाद उनको पृथक्-पृथक् कार्य मिल सकता है। इसी प्रकार जमीन का हिसाब होना चाहिए। जमीन वाला जमीन का ही कार्य करेगा। दुकानवाला दुकान का ही कार्य करेगा। मिल वाला मिल का ही कार्य करेगा। इससे संयुक्त प्रणाली भी समाप्त होगी।

(४) सब सेनिमाओं का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय।

(५) जो जमीन की सीमा हो उससे ज्यादा किसी के पास हो तो उसे किश्त रूप में ले लिया जाय। इसी प्रकार यदि किसी के पास एक उद्योग से अधिक हो तो किश्त रूप में ले ली जाय। इस प्रकार से जो अलग रुपया उन लोगों के पास आये उसे उनको व्याज पर देने की छूट हो और व्याज की सीमा निर्धारित हो।

(६) दुकानों की सीमा हो जैसे कपड़े के व्यापारी को आदेश हो कि वह इतने मूल्य से अधिक का कपड़ा न

रख सकेगा। अनाज के व्यापारी को आदेश हो कि वह इतनां स्टाक रख सकता है अधिक नहीं। इसी प्रकार अन्य कार्य सीमां के अन्दर हों। इससे जमाखोरी और मुनाफाखोरी नहीं बढ़ सकेगी।

(७) आढ़त का कार्य करनेवाला निजी कार्य न कर सके और निजी कार्य करनेवाला आढ़त का कार्य न कर सके। जिन व्यक्तियों के पास एजेंसी हो वह एक ही एजेंसी ले सकें अधिक नहीं।

(८) एक परिवार के लिये निश्चित हो कि वह इतना सोना, चाँदी रख सकता है। उससे अधिक सरकार अन्तर्राष्ट्रीय भाव पर ले लेवे।

(९) बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जावे।

(१०) विदेशों से आयात-निर्यात का सब कार्य सरकार के ही अधीन हो। कोई भी नया कार्य जो यहाँ स्थापित किया जाय वह सब सरकार के अधीन हो।

(११) कोई भी वस्तु जो जीवनोपयोगी है जिसके बिना हमारा जीवन दूभर हो वही आयात की जाय इसके अलावा दूसरी नहीं। जैसे—शृंगार-विलास की चीजें।

(१२) दहेज-प्रथा कानूनी तौर से बन्द हो। इससे भी समाजवादी प्रणाली स्थापित होने में वाधा उत्पन्न होती है। क्योंकि लोगों का आर्थिक स्तर अस्त-व्यस्त करने में तथा लोगों को जैसे-तैसे कमाने के लिये यह वाध्य करती है। यदि यह समस्या न हो तो लोगों को मजबूरन आज जो आय के साधन करने पड़ते हैं वे न किये जावें।

(१३) ज्यादा कीमती चीजें जो हमारे दैनिक उपयोग की हैं—जैसे खाने-पीने, पहरने, शृंगार, मनोरंजन वगैरह की। ये सब

चाहे यहाँ की हों अथवा विदेशों से आती हों वे सब बन्द कर दी जावें। इससे लोगों की आवश्यकताएँ सीमित होंगी। फैशन-परस्ती मिटेगी, नैतिकता और चरित्र की सादगी होने से विकास होगा। फिजूलखर्ची खत्म होगी, ऊँच-नीच की असमानता कम होगी। जब एक व्यक्ति की आवश्यकताएँ सीमा में और साधारण होंगी तब समाजवाद क्यों नहीं आयेगा ? आज की हालत यह है कि हम अपना कार्य बगैर सीमा के चला रहे हैं। जैसे-जैसे हमारी आर्थिक हालत ठीक होती है वैसे-वैसे हम फिजूलखर्ची, फैशनपरस्ती वगैरः तथा भोगवाद की तरफ बढ़ते चले जाते हैं। भोगवाद से हमारा नैतिक पतन हो जाता है। जिससे समाज का शोषण शुरू होता है और जिससे समाजवाद अस्तव्यस्त हो जाता है। आज भी चीजों की उतनी कमी नहीं है जितनी कमी उनके सही प्रयोग करने की है।

इस प्रकार से यह एक अहिंसात्मक क्रान्ति होगी जिसमें हर व्यक्ति को कार्य मिलेगा। शोषण दूर होगा। लोगों का नैतिक स्तर ऊँचा होगा। इसके साथ आज जो अक्सर मानव-जीवन का एक मात्र ध्येय सारा जीवन कमाते रहना है यह प्रवृत्ति दूर होगी। सब अपनी योग्यता और कार्य के अनुसार सुखी और सम्पन्न होंगे तथा अध्यात्मवाद की तरफ बढ़ सकेंगे।

पशु-पक्षी-संरक्षण

पशु-धन समाज का एक आवश्यक अंग है। भारत एक कृषि-प्रधान देश है। इससे पशुओं की महत्ता और भी बढ़ जाती है। वैसे तो पशु दुनियाँ के हर देश में है। वे अपने-अपने ढंग से समाज के कार्यों में योग देते हैं। परन्तु आर्थिक रूप से पिछड़े भारत, पाकिस्तान, ब्रह्मा आदि देशों में खेती में पशु-शक्ति व मानव-शक्ति का अधिक प्रयोग होता है। यहाँ यन्त्र-शक्ति का बहुत कम प्रयोग होता है। इसके विपरीत पश्चिम के उन्नत देशों में—सोवियत-संघ में (खासकर) खेती के पशु-शक्ति के स्थान पर यन्त्र शक्ति का बहुत प्रयोग होता है। वहाँ पर अधिकतर खेती के कार्य मशीनों से किये जाते हैं। भारत में कृषि के अधिकांश कार्यों को पशु लगभग सभी प्रकार की चालक शक्ति प्रदान करते हैं। वे खेतों में हल जोतते हैं, सिंचाई के लिये कुओं से पानी निकालते हैं, फसल कट जाने पर उसे अपने पाँवों से रौंदकर छिलका और दाना अलग कर देते हैं। फिर फसल को ढोकर मण्डी में ले जाते हैं। पशु ही गोबर के रूप में हमें खाद प्रदान करते हैं। तथा गोबर के उपले बनाकर हम जलाने की लकड़ियों के साथ इन्हें काम में लेते हैं। भारतीय किसानों के लिये गोबर की खाद सबसे सस्ती एवं सुलभ है। गाय- भैंसे हमें दूध व दूध की बनी चीजें—मक्खन, घी, मट्ठा, मिठाइयाँ आदि प्रदान करते हैं। भारत जैसे शाकाहारी प्रधान देश के निवा-

सियों के लिये ये सब अत्यन्त आवश्यक खाद्य पदार्थ हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय किसानों—जो कि वर्ष में प्रायः ५-६ महीने बेकार होते हैं उनके लिये डेरी उद्योग महत्वपूर्ण व्यवसाय है। दूध और घी बेचकर वे अपनी आय बढ़ा सकते हैं। पशुओं से हमें मांस, खालें व हड्डियाँ, ऊन, बाल आदि अन्य उत्पादन भी मिलते हैं।

इसके साथ ही हमारे यहाँ की पशु-संख्या संसार के अन्य किसी भी देश की पशु-संख्या से अधिक है। १९५६ की पशु-जनगणना के अनुसार भारत में १५.८७ करोड़ गाय व बैल और ४.५ करोड़ भैंस हैं। यह संसार की कुल पशु-संख्या का लगभग चौथाई भाग है। इसी तरह हमारे यहाँ घोड़े, ऊँट इत्यादि भी कम उपयोगी नहीं हैं। घोड़े तांगों में तथा सवारी इत्यादि के लिये बहुत काम के हैं। ऊँट रेगिस्तानी इलाके में बहुत काम देता है। रेतीले इलाकों में बैलगाड़ी इत्यादि कोई काम नहीं दे सकती, उसकी जगह ऊँट सवारी आदि तथा सामान ढोने के काम आता है। जिस प्रकार भारत की जलवायु विभिन्न प्रकार की है उसी तरह यहाँ के मैदान भी रेतीले, समतल आदि कई प्रकार के हैं, जहाँ आने-जाने तथा सामान आदि के लिये अलग-अलग पशुओं से काम लिया जाता है। परन्तु भारत को इतनी बड़ी पशु-संख्या से इतना लाभ नहीं होता। क्योंकि यहाँ के पशुओं की दशा बहुत हीन और दयनीय है। यहाँ की गायें संसार में सबसे कम दूध देने वाली गायें हैं। आसाम इत्यादि कई प्रान्तों में तो दूध की मात्रा अत्यन्त कम है। भारतीय गाय एक वर्ष में औसतन ४१३ पौण्ड दूध देती है। जबकि नीदरलैण्डस् आदि में ८००० पौण्ड और आस्ट्रेलिया में ७००० पौण्ड दूध देती हैं। भारत के बैल कृषि के लिये मुख्य साधन हैं। परन्तु बहुत दुबले-पतले

निर्बल और कहीं-कहीं तो बहुत छोटे कद के होते हैं। आजादी से पूर्व इनकी देखभाल का कोई प्रबन्ध नहीं था। भोले किसान लोग इनकी देखरेख करते थे। परन्तु आज आजादी के बाद भी पशुधन में कोई पर्याप्त सुधार नहीं हुआ है। इसलिए आवश्यक है कि इसके लिये निम्नलिखित सुधार किए जाएँ :—

(१) किसी भी पशु की अपने आप हत्या न की जाए। अपने-अपने हिसाब से प्रकृति का हर पशु उपयोगी है। उनको हम अनुपयोगी समझते हैं तो वह हमारी अपनी समझ और जानकारी की कमी है। भारत जैसे गरीब और कृषक देश के लिए पशुधन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परन्तु खेद है कि हमारे यहाँ अभी तक कसाईखाने खुले हुए हैं और उनमें दुधारू गउओं तक की हत्या की जाती है। वे हमारे जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। सरकार की तरफ से तमाम कसाईखाने तुरन्त बन्द किए जाने चाहिए। चाहे उनसे हमें कुछ विदेशी मुद्रा की प्राप्ति हो या नहीं। परन्तु यदि हम इसकी गहराई में जायें तो देखेंगे कि ये लाभ नगण्य हैं।

(२) प्राचीन समय में हमारे यहाँ दूध-घी की बहुत अधिकता थी। लोगों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, क्योंकि भारत अधिकतर शाकाहारी देश है। अतः यहाँ के लिए दूध-घी होना आरोग्यता के लिए बहुत आवश्यक है, जबकि विदेश में इसकी जगह मांस आदि से काम चल जाता है। आज लोग दिल-दिमाग व शरीर से कितने कमजोर हो गए हैं। हमारा खान-पान पौष्टिक नहीं रहा। दूध-घी दवाइयों की तरह शीशियों में भरकर बिकनी वाली चीज बनते जा रहे हैं। अतः आवश्यक है कि पशुओं की हर हालत में पूरी देखभाल की जाए।

(३) कोई भी पशु गाँव या शहर में आवारा न फिरे।

आवारा पशु हर प्रकार से हानि करता है। सरकार की तरफ से यह नियम हो कि कोई भी पशु आवारा न छोड़े क्योंकि यदि वे खेतों में जायें तो वहाँ नुकसान करें और जगह-जगह फिरने से तथा चारा ठीक न मिलने से वे पशु बेकार हो जाते हैं। बाजारों में जो गऊ फिरती हैं प्रायः वे बेकार हो जाती हैं, तथा जनता का इसमें अहित एवं हानि है।

(४) भारत में पशुओं की बहुत बड़ी संख्या है। लगभग १०० एकड़ बोई जानेवाली भूमि के पीछे १०० पशु हैं। जबकि इंगलैण्ड, मिश्र इत्यादि में यह कम है। भारत में चारे की कमी का यह प्रमुख कारण है। साथ ही लोगों की गरीबी के कारण तथा अकाल आदि पड़ने के कारण यहाँ के पशु बेकार तथा आवारा हो जाते हैं। वे प्रायः भूखे रहते हैं। इससे उनकी दशा दयनीय हो गई है। दूध देनेवाली अच्छी गायों और काम करने वाले बैलों की वास्तव में कमी है। अनुमानतः भारत में इस समय प्राप्त चारे व पशु खाद्य की पूर्ति पर वर्तमान पशुसंख्या का केवल $\frac{1}{3}$ भाग अच्छी तरह रखा जाता है। उनके खाद्य में पौष्टिक तत्वों जैसे खली, बिनौला, चना, चोकर आदि की मात्रा भी बहुत कम है। इसलिये चारे की कमी की पूर्ति की पूर्ण चेष्टा होनी चाहिये। ताकि पशु आवारा न हों और पशु-धन ठीक रहे।

(५) भारत में पशुओं के अभिजन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। वे तरीके वैज्ञानिक और विवेकपूर्ण नहीं हैं। यह दैवयोग पर छोड़ दिया जाता है। इससे गाय व बैलों की नस्ल खराब हो जाती है। पशुओं के रहन-सहन की जगह प्रायः गन्दी व दुर्गन्धयुक्त होती है जो उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। उन्हें पीने के लिए सदा साफ जल नहीं दिया जाता। वे गन्दे पानी में ही नहाते हैं। वर्षा ऋतु के दिनों में कुएँ

तथा जोहड़ आदि वर्षा से एक हो जाते हैं। उनमें अनेक प्रकार के कीटाणु हो जाते हैं। उस पानी को जैसे का तैसा पिला दिया जाता है। इस प्रकार से हर वर्ष घातक बीमारियाँ फैलती हैं। जिसको किसान लोग प्रायः रेसवाड़ी कहते हैं। गाँव के गाँव पशुओं से खाली हो जाते हैं और शेष बहुत ही अशक्त दशा में बच पाते हैं। इन सब रोगों का इलाज करने के लिए भारत में बहुत कम पशु-चिकित्सालय हैं। जो हैं भी उनका भारत के किसान अशिक्षित, रूढ़िवादी होने के कारण बहुत कम प्रयोग करते हैं। पशुओं के बीमारियों से मर जाने के कारण किसान लोग जो अक्सर महाजन से ऋणरूप में रुपया लेकर पशु खरीदते हैं, और भी निर्धन हो जाते हैं। इससे वे फिर बहुत अच्छे व मँहगे बैल व गाय नहीं खरीद पाते। इससे पशुओं की नस्ल गिरती चली जाती हैं। इसलिये पशुओं की नस्ल (दशा) वा कार्यक्षमता को सुधारने की आवश्यकता है जिससे पशुओं को स्वास्थ्यपूर्ण दशा में रखा जाये। उन्हें बाँधने का स्थान साफ-सुथरा, हवादार व प्रकाशमय हो। उन्हें साफ पानी से नहलाया जाय तथा साफ पानी पिलाया जाय। पशुओं में फैलने वाली महामारियों व बीमारियां की रोक-थाम के लिए अच्छा पौष्टिक भोजन, विवेकी अभिजन और स्वास्थ्यपूर्ण दशायें अत्यन्त आवश्यक हैं। विशेष रोगों से बचाव के लिए पशुओं को टीके लगवाये जायें। रोगों का इलाज करने के लिए देश भर में पशु-अस्पताल व दवाघर खोले जायें। गाँवों में प्रायः पशु अधिक होते हैं पर वहाँ चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं होता। इसलिये गाँवों में इसका प्रबन्ध किया जाय, साथ ही ग्रामीण लोगों में पुराने रूढ़िवादी विचार हटाने का प्रचार किया जाय। इसके अतिरिक्त पशु रोगों के कारण और इलाज की खोजबीन की जाय। सरकार ने

आजादी के बाद इस दिशा में कुछ कार्य किया भी है। अतः उसको और बढ़ाकर इस दिशा में शिथिलता छोड़कर और भी प्रयत्न किये जायँ।

(६) चारे की कमी को पूरा करने के लिए अधिक भूमि पर चारा उगाया जाए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक अधिक उपजवाले दालयुक्त चारे आदि की उपज बढ़ाई जाए। चारे को ठीक प्रकार से रखा जाए, उसका उपयोग मितव्ययिता-पूर्वक करना उचित है। इसके लिए हरी घास को गढ़े खोदकर सुरक्षित रखने तथा उसको काटकर, सुखाकर रखने के लिए किसानों को प्रेरित करना आवश्यक है। पशुओं की नस्ल सुधारने के लिए उत्तम नस्ल के सांड़ों का प्रबन्ध किया जाय। दुर्बल व अयोग्य साँड़ों को बधिया कर देना चाहिए। ताकि वे दुर्बल नस्ल पैदा न कर सकें।

(७) लोगों में पशु संबंधी आवश्यक बातों का प्रचार करने, उन बातों को करके दिखाने और पशुपालकों में अच्छी नस्ल व अच्छी किस्म के पशु पालने के लिए, स्वस्थ प्रतियोगी भावना भरने के लिए पशुओं की प्रदर्शनी व मेले लगाए जाएँ। ऐसे मेले हर वर्ष तहसील, ज़िले और राज्य स्तर पर होने चाहिए। अखिल भारतीय पशु मेला हर वर्ष देश में होता है। यह एक अच्छा तरीका है। अतः आवश्यक है कि देश के हर पशु की पूरी-पूरी निगरानी व देखभाल रखी जाय ताकि वह उन्नत दशा में होकर मानव-जाति के कल्याण कार्य में योग दे।

———

राज्य-प्रणाली

सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये राज्य का होना अत्यन्त अनिवार्य है। जनसुरक्षा तथा देश में सुख-शान्ति राज्य के विना नहीं रह सकती। व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य वगैरः के लिये राज्य का विशेष महत्व होता है। प्राचीन समय में जब मानव का विकास हुआ और वह धीरे-धीरे सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ तो जहाँ उसने खाने-पीने तथा रहने-पहनने-ओढ़ने के साधनों की खोज की, वहाँ उसने यह भी महसूस किया कि हममें एक दूसरे की सुरक्षा के लिये हमारे ऊपर एक ऐसा मुखिया या सर्वेसर्वा हो जो स्वयं शक्तिशाली और विद्वान् हो तथा इस प्रकार की सेना रखे जिसके अधीन हम सब उसकी आज्ञा का पालन करें और जो न माने वह दण्डनीय हो। जिससे हम सब दिशाओं में सुरक्षित रह सकें। पूर्व समय में राज्य-प्रणाली आज की राज्य-प्रणाली से पृथक् थी। एक समय था जब कि सारे विश्व का एक ही राजा था और वह चक्रवर्ती राजा कहलाता था। महाभारत के समय तक ऐसी प्रणाली थी परन्तु महाभारत युद्ध ऐसा भयंकर हुआ कि जिसमें बल, विद्या, वैभव सब कुछ नष्ट हो गया। चक्रवर्ती राज्य नष्ट होकर यत्रतत्र मांडलिक राज्य स्थापित हो गये। अब इसके बाद जब संयुक्त राज्य-प्रणाली नहीं रही और छोटे-छोटे राज्य-स्थापित हो गये तथा राज-सभा, धर्म-सभा, मतमतान्तर, अन्धविश्वास अनेक भाषाएँ,

निर्बल सन्तान, होने लगी और आपस में एक दूसरे को दबाने की और फूट डालने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी।

इसके बाद उत्तरवैदिक काल में ब्राह्मणों का बोलबाला था। पुरोहितों ने धार्मिक कृत्यों को बड़ा जटिल बना दिया था। यज्ञों में पशुबलि दी जाने लगी थी। इसी समय महावीर स्वामी और बुद्धदेव पैदा हुए जिन्होंने हिन्दू-धर्म की कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने दो नये सम्प्रदाय बौद्धमत और जैनमत चलाये। इसी समय महाराजा अशोक हुआ जो कलिंग-युद्ध के बाद बौद्ध हो गया था। अशोक का राज्य बहुत विस्तृत था। इस समय देश ने एक नई राजनीति में मोड़ लिया। मौर्य वंश के पतन के बाद देश की राजनैतिक स्थिति बहुत बिगड़ गयी थी। इस राजनीतिक उथल-पुथल के बाद एक बहुत बड़े साम्राज्य का उदय हुआ जिसे गुप्त साम्राज्य कहते हैं। इस वंश में चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्य जैसे महान शासक हुए। इस प्रकार यह भारतीय इतिहास का 'स्वर्णयुग' कहलाता है। इसी समय चीनी यात्री फाह्यान यहाँ आया था। उसने भारत के कई स्थानों की यात्रा की और देश की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक अवस्था का वर्णन किया है। आखिरी हिन्दू राजा हर्ष हुआ। इसके बाद भारत में राजनैतिक एकता नष्ट होकर अव्यवस्था फैल गई। इसी समय में इस्लाम के प्रसार से मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई।

मुसलमान शासकों ने यहाँ काफी वर्षों तक राज्य किया और इसका हिन्दू-धर्म और भारतीय समाज पर काफी प्रभाव पड़ा। १६०० में कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने महारानी एलिजाबेथ से आज्ञा लेकर भारत के साथ व्यापार करने का प्रयत्न शुरू कर दिया। इस समय मुगल राज्य का पतन हो रहा था। इसलिये

कम्पनी को अपनी प्रगति का समय मिल गया। भारत की अव्यवस्था को देखकर कम्पनी धीरे-धीरे व्यापारिक कम्पनी न रहकर शासक कम्पनी बन गई। १८५७ के विद्रोह के बाद कम्पनी का शासन ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ आ गया और अंग्रेजों ने भारत के बहुत से भाग पर कब्जा कर लिया। परन्तु १८५७ के विद्रोह ने भारतीयों के अन्दर एक नवजागरण किया। भारतीयों ने विदेशियों को भारत से निकालने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य को लेकर उस समय के राष्ट्र-नेताओं तथा समाज-सुधारकों ने अंग्रेजों की नीति का पूरे जोर से विरोध किया और अपने देश को दासता की जंजीरों से मुक्त करने का भरसक प्रयत्न किया। इसमें राजा राममोहनराय, लोकमान्य तिलक, तथा दयानन्द सरस्वती आदि अग्रगण्य थे। लार्ड डफरिन के समय कांग्रेस का पहला अधिवेशन W. C. बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ और दूसरा १८८६ में कलकत्ते में दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में। प्रारंभ में कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में मित्रता बनी रही परन्तु आगे चल कर कांग्रेस में दो दल हो गये। एक नरमदल और दूसरा गर्मदल। गर्मदल में लाल, पाल, बाल अर्थात् बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय और विपिन-चन्द्रपाल प्रसिद्ध थे और नरम दल में मदनमोहन मालवीय, गोपालकृष्ण गोखले आदि। १९१४ ई० में प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ और इन्हीं दिनों १९१५ में कांग्रेस का एक अधिवेशन हुआ जिसमें नरमदल, गर्मदल दोनों एक हो गये और दोनों ने स्वराज्य की माँग की। इसके बाद यह आन्दोलन दिन प्रतिदिन तेज होता गया जिसके नेता मुख्य रूप से महात्मा गान्धी, पं० जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, सरदार पटेल, जयप्रकाश नारायण तथा क्रान्तिकारी सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद

और दूसरे गणमान्य नेता लोग थे। इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश हुकूमत को यह निश्चय हो गया कि भारत में अब जनजागरण हो चुका है और उसका यहाँ बना रहना अब संभव नहीं है। इस तरह से एक लम्बे संघर्ष, काफी आन्दोलनों बलिदानों तथा सत्याग्रहों आदि के बाद अंग्रेजों ने एक योजना बनाई कि भारतवर्ष को आजाद किया जाय। उसी योजना के अनुसार १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को भारत आजाद हुआ। भारत का संविधान २६ नवम्बर १९४९ को अपना लिया गया और २६ जनवरी १९५० को लागू किया गया। भारत का संविधान संसार के सभी संविधानों में बड़ा है। संविधान ने भारत में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य स्थापित किया। अब भारत अपने बाह्य तथा आन्तरिक कार्यों में किसी दूसरी शक्ति के अधीन नहीं है।

भारत एक प्रजातन्त्र देश है। आज की दुनियाँ का सबसे बड़ा प्रजातन्त्र देश भारतवर्ष ही है। यहाँ तीन बार आम चुनाव हो चुके हैं और चौथा भी हो चुका है। प्रत्येक मनुष्य को अपने विचार स्वतन्त्र रूप से प्रकट करने की स्वतन्त्रता है। हमारे यहाँ कई राजनैतिक पार्टियाँ हैं। सत्ताधारी पार्टी कांग्रेस है। लोकसभा में पिछले तीसरे आम चुनाव के हिसाब से ५०९ सदस्य हैं और राज्यसभा में २३८ सदस्य। प्रत्येक प्रान्त की अपनी अलग विधान सभाएँ हैं। जहाँ आबादी के लिहाज से M. L. A. और M. L. C. हैं जो अपने-अपने प्रान्त की प्रत्येक समस्या पर विचार करते हैं तथा उन्हें हल करने का प्रयत्न भी करते हैं। कानून भी बनाते हैं। इसी प्रकार से M. P. भी देश-विदेश के प्रत्येक प्रश्न पर विचार करके तथा बहुमत से पास करके कानून बनाते हैं।

आज प्रत्येक व्यक्ति प्रजातन्त्र का स्वागत करता है। क्योंकि प्रजातन्त्र के अन्दर वे चीजें हैं जो राजतन्त्र डिक्टेटरशिप (अधिनायकतन्त्र) में नहीं होतीं। प्रजातन्त्र के अन्दर राजतन्त्र की तरह रानी की कोख से राजा पैदा नहीं होता। यह वह चीज नहीं कि रानी के होने से ही राजा हो जाय, चाहे वह योग्य हो अथवा अयोग्य हो। इसमें राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री रानी की कोख से न होकर आम जनता की राय से होता है जिसमें न जात-पाँत का बन्धन है और न अमीर-गरीब का। राजतंत्र के अन्दर पब्लिक को अन्धा होकर तथा विवश होकर जोर जुल्म के भय से राज्य-शासन के अन्दर रहना पड़ता है। जैसा कि हमारे यहाँ पहले स्टेटें थीं। उन लोगों के ऊपर किसी का अंकुश न होने से वे निकम्मे, आलसी, ऐशोइशरत में पड़ जाते थे। पब्लिक के विकास, शिक्षा-दीक्षा आदि की उनको परवाह नहीं रहती थी। इसके साथ ही अधिनायक तन्त्र (डिक्टेटरशिप) या तानाशाही में भी जनता का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। जैसे फासिस्ट पार्टी के नेता मुसोलिनी ने लोकतन्त्र को नष्ट करके इटली में तानाशाही स्थापित कर ली थी। परिणामस्वरूप दूसरे महायुद्ध में इटली की हार हुई और मुसोलिनी तथा फासिज्म (Facism) का अन्त हुआ। इसी प्रकार नेपोलियन बोनापार्ट और सिकन्दर महान ने विश्व-विजय के स्वप्न देखे और वह काफी युद्धों और संघर्षों के पश्चात् भी उनके स्वप्न पूरे नहीं हुए। नाजी पार्टी के नेता हिटलर ने जर्मनी में तानाशाही स्थापित की और जर्मनी को युद्ध में ढकेला। आज उस उन्नत जर्मनी के टुकड़े हो गए हैं। युद्ध समाप्त हुए काफी वर्ष हो गये पर अब भी उसका युद्ध के पापों का भोग पूरा नहीं हुआ। इसलिए तानाशाही शासन ठीक नहीं। क्योंकि इसमें एक दिमाग

के अनुसार चलाना पड़ता है। राज्य-कार्य ऐसी चीज नहीं जहाँ एक ही दिमाग हर प्रकार से तथा हर दिशा का भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, सीमा-सुरक्षा, देश-विदेश की समस्याओं को पूर्णरूप से अध्ययन तथा ज्ञान रख सके। प्राचीन समय में भी राजसभा, धर्मसभा, विधानसभा आदि होती थी। यह ठीक है कि सर्वेसर्वा राजा होता था परन्तु वह सलाह-सम्मति इन सभाओं से ही लेता था और उनके जरिए राज्य चलाता था। इसलिए बहुत वर्षों की दासता की जंजीरों से छुटकारा पाने के बाद हमारे देश ने प्रजातन्त्र प्रणाली अपनायी है। यह ठीक है कि आज का हमारा यह प्रजातन्त्र एक स्वस्थ प्रजातंत्र नहीं है। अब तक चार आम चुनाव हो चुके हैं। कांग्रेस सत्तारूढ़ दल है। वास्तव में कांग्रेस ने तीसरे आम चुनाव में अन्य दलों के मुकाबले में तमाम देश में जो वोट पड़े थे उनमें से बहुत कम स्थान प्राप्त किए थे परन्तु वही सत्तारूढ़ हुई क्योंकि यहाँ विरोधी दल बहुत हैं। इस कारण कांग्रेस का एक व्यक्ति खड़ा होता है और उसके मुकाबले दूसरे ज्यादा होते हैं। कांग्रेस के जो वोट हैं वे उसको मिल जाते हैं जबकि दूसरों के थोड़े-थोड़े होकर बँट जाते हैं। इस कारण सत्ता कांग्रेस की ही होती है। यह सर्वविदित है कि आज कांग्रेस के शिथिल होने से आम जनता का बहुमत कांग्रेस के विरुद्ध है।

क्योंकि चन्द आदमियों को छोड़कर आज देश का हर दिशा में सर्वांगीण विकास नहीं हो रहा है इसलिए लोगों में असन्तोष की भावना फैल रही है। हमारा प्रजातंत्र उस दिन स्वस्थ प्रजातंत्र होगा जब हर व्यक्ति इस वोट की कीमत पहचानेगा वह जात-पाँत, ऊँच-नीच तथा स्वार्थ वगैरह की भावना छोड़कर अपने वोट का उचित प्रयोग करेगा। प्रजातंत्र की जो मूल चीज 'वोट'

(Vote) है उसका लोग अभी सही प्रयोग करना नहीं समझते हैं। वे नहीं जानते कि यह अमूल्य चीज है जो कि पैसों के लोभ से या जात-पाँत, बिरादरी, दबाव, धमकी में आकर प्रयोग करने की चीज नहीं है। उनको नहीं मालूम कि यदि हम किसी स्वार्थ-वश भी किसी अन्य कारण से अपना वोट किसी गलत आदमी को देते हैं तो वे देश के साथ एक जुल्म का कार्य कर रहे हैं तथा देश को अवनति की ओर अग्रसर करते हैं। देश के नियम, विधान, कानून सब उन आदमियों के दिमाग और हाथों से बनते हैं जिन्हें हमने यहाँ से चुन कर भेजा है। इसलिए हमारा यह प्रथम कर्त्तव्य है कि हम अपने वोट का सही इस्तेमाल करें। इस प्रणाली में सरकार, राजनीतिक दल तथा जनता को निम्न-लिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) प्रत्येक पार्टी निष्पक्ष भाव से अपने-अपने उन व्यक्तियों को टिकट दे जिन व्यक्तियों का चरित्र ऊँचा हो, जो ईमानदार, नशाबन्दी से दूर, चरित्रशाली, शिक्षित हों, तथा अपने निजी कार्य में फँसे हुए न हों।

(२) कोई भी उम्मीदवार जो M L A या M. P. की सीट के लिए खड़ा हो वह अपनी आय का निजी खर्च चुनाव में न करे। किसी भी व्यक्ति को पैसे देकर वोट न लेवे और न किसी के घर जाकर उस पर दबाव डाले तथा जातिवाद का नारा न लगाये। वह व्यक्ति जो किसी भी पार्टी की तरफ से अथवा निर्दलीय खड़ा हुआ हो, अपने पीछे के कार्य की बाबत और अपनी तथा अपनी पार्टी की नीति प्रकाशित करके इश्तहार निकाल देवे कि जनता उससे तथा उसके चरित्र से अपने आप उसकी जानकारी करके उसको वोट दे। दूसरे प्रजातन्त्र देशों में वोट प्राप्ति के लिए ऐसा नहीं होता जैसा कि हमारे यहाँ होता है।

वहाँ वे लोग घर-घर वोट माँगने के लिए जोर दबाव देते नहीं फिरते। हमारे यहाँ जो तरीका अपनाया जाता है वह तो बहुत ही विचित्र होता है। अब आप सोचिए। कैसे एक M. L. A. या M P. एक-एक व्यक्ति के घर-घर जाकर उससे मिले और उससे वोट के लिए अनुनय-विनय करे। यदि ऐसा न किया जाय तो वोटर नाराज हो जाते हैं कि वह तो हमारे पास आया तक नहीं है। इस प्रकार से यह गलत तरीका है। उनको काफी दिनों पहले यह सब खुशामद के लिए दूसरे काम छोड़ने पड़ते हैं और बहुत खर्च उठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त चुनाव के समय जो मीटिंगें (Meeting) होती हैं वे भी प्रायः बहुत ही उत्तेजक और जनता को गुमराह करनेवाली जोशीली और चटपटे भाषणों की होती हैं जिससे जनता को वास्तविकता की जानकारी कम मिलती है। इससे शान्तिपूर्वक चुनाव होने में बाधा होती है और खर्चा भी विशेष करना पड़ता है तथा व्यक्तिगत एक दूसरे पर गाली गलौज तक का आक्षेप होता है। इसलिए इस प्रकार का नियम हो कि इश्तहारों के जरिए ही अपनी-अपनी पालिशी प्रकाशित की जाय ताकि जनता वोट का बिना किसी भेद भाव या दबाव, लालच के सही प्रयोग कर सके।

(३) चुनाव के समय महीनों पहले कई जगह सौदे चालू हो जाते हैं कि अमुक व्यक्ति बनने से मैं आपको यह दे दूँगा और दूसरा कहता है कि नहीं वह नहीं बनेगा। इस प्रकार किसी का कुछ भाव और किसी का कुछ होता है। इस तरह से लाखों रुपए के सौदे हो जाते हैं। ये सब कानूनी तौर से बन्द हो जाने चाहिएँ। इससे बहुत बार ऐसा होता है कि जो उम्मीदवार बनना चाहिए था वह न बन कर उस सौदेबाजी की वजह से दूसरा बन जाता है क्योंकि एक व्यक्ति जो कांग्रेस को चाहता है और

उसने फर्ज किया सौदा किया हुआ है किसी पार्टी के हक का, तो उसको मजबूरन उस स्वार्थ की वजह से अपने सिद्धान्त को छोड़ना पड़ेगा। बहुत ही आश्चर्य और दुःख की बात है कि लोग इस प्रकार के कार्यों में भी अपने स्वार्थ और लालच का कार्य करते हैं। यह देश का प्रश्न है किसी एक व्यक्ति का नहीं। इस प्रकार की चीजों में सौदेबाजी शोभनीय नहीं तथा यह देशहित के विरुद्ध है।

(४) वोट डालने के समय पोलिंग स्टेशनों (Poling Staions) पर स्थिति शान्तिमय हो। कोई भी इस प्रकार की पक्षपातपूर्ण भावना न बने जिससे तनाव पैदा हो। अधिकारी वर्ग या जिसकी भी वहाँ ड्यूटी हो वह अपने कर्त्तव्य को बिना किसी पक्षपात के पूरा करे चाहे उनका उम्मीदवार बने या न बने। इस प्रकार से जो चुनाव होगा वही सही अर्थ में वास्तविक चुनाव है।

(५) कोई भी M. L. A. या M. P. जिस हल्के से निर्वाचित हो वह उसी दिन से एक लिस्ट बनाए कि मेरा जो इलाका है उसके अन्दर क्या-क्या विकास कार्यों की कहाँ-कहाँ कमी है। जैसे शिक्षा के क्षेत्र में, कृषि के लिए सिंचाई आदि की, आवागमन के साधनों के लिये सड़क आदि की व्यापारिक क्षेत्र में उद्योग-धन्धे की। जो रुपया उस इलाके के लिए मंजूर हो उसका वहाँ सही-सही उपयोग कराया जाय। इस प्रकार से जिस क्षेत्र में जो भी कमी हो उसको अपने इस समय में जहाँ तक हो यथासम्भव सरकार को उससे अवगत कराकर भरसक यह चेष्टा करे कि वे हल हों। चुनाव के बाद जो उम्मीदवार निर्वाचित हो वह बगैर किसी के साथ कोई भेदभाव के चाहे किसी ने वोट दिया हो अथवा न दिया हो सबके साथ समान रूप से यथाशक्ति जो कार्य

उसके करने का हो, वह करे। इस प्रकार जब वह अपनी जिम्मेदारी से जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करेंगे तो देश का तथा स्वयं का स्वतः ही सर्वांगीण विकास हो सकेगा। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि प्रायः हालत यह है कि आजकल जो तरह-तरह के चुनाव होते हैं—कभी ब्लाक समिति के, कभी मार्केट कमेटी के, कभी नगरपालिका के, कभी M L. C. के, कभी राज्य-सभा के इस प्रकार उनका बहुत-सा समय इन्हीं तोड़-फोड़ में रहता है कि इनमें तुम्हारे हक के आदमी बनें और वे इसके लिये काफी दौड़-धूप करते हैं या अपने निजी घरेलू कार्यों में रहते हैं।

इस प्रकार वह इलाका ज्यों का त्यों रह जाता है। आगे बढ़ने नहीं पाता। M. P. लोगों का पहले तो हल्का ही काफी बड़ा होता है इसलिए उनके लिए स्वयं तो सब इलाके को जानना तथा सम्भालना कठिन हो जाता है। उनके लिये यह हो सकता है कि उनके उस इलाके के जो M. L. A. हैं वे चाहे किसी भी पार्टी के हों, M. P. चाहे किसी पार्टी का हो वे सब मिल कर उस इलाके के लिए कार्य करें तो बहुत आसानी हो सकता है। परन्तु इलाके के विकास के लिए सबकी एक ही राय होनी चाहिए। अगर ऐसा हो तो वह इलाका प्रगति कर सकता है। परन्तु आज हालत यह है कि M. P लोग इलाके को सम्भालते ही नहीं। आज लोकसभा में ५२१ के करीब M. P. हैं परन्तु आप देखेंगे कि कोई भी समस्या हो उस पर केवल कुछ गिने चुने M. P. ही अपनी आलोचना तथा समालोचना वगैरह करते हैं शेष प्रायः बैठे रहते हैं या सिर्फ हाथ उठा देते हैं। क्या ५ वर्ष के दौरान ऐसा कोई भी प्रश्न नहीं था कि जिस पर उनको अपनी राय जाहिर करने की आवश्यकता न पड़ी हो ऐसा कदापि नहीं हो

सकता। आप लोक-सभा के आँकड़े देखिए। कई तो ऐसे मिलेंगे कि पाँच साल के दौरान में एक शब्द भी न बोले होंगे। कई ऐसे भी होंगे जो कोई ठोस और सूझ-बूझ की राय न दे सके होंगे या वहाँ के नियम से बाहर बोले होंगे। इस प्रकार के नाम के M. P. लोगों से कोई फायदा नहीं। इसके साथ ही कई एक ऐसी समस्याएँ भी आ जाती हैं जिनके ऊपर पार्टी की मान्यता की वजह से वे न तो उसकी आलोचना ही कर सकते हैं और न उन्हें मानने से इन्कार कर सकते हैं। इस प्रकार के मसले हों तो चाहे पार्टी सहमत हो या न हो, हमारी उनके खिलाफ राय है तो हमें अवश्य उसकी आलोचना करनी चाहिए। इससे स्वस्थ प्रणाली का विकास होता है। पार्टी के दबाव से हमें कोई चीज नहीं मान लेनी चाहिए।

इसलिए आवश्यक है कि आप ऐसे M. P. भेजें जो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हर मसले को समझ सकें तथा अपनी उचित राय देकर देश की प्रगति कर सकें। इसके साथ ही हमारे यहाँ छोटी-छोटी बहुत पार्टियाँ हैं। यह बात ठीक नहीं। विरोधी पार्टी तो एक या दो ही होनी चाहिए। अधिक होने से सत्ताधारी पार्टी को बदलना तथा किसी मसले पर बहुमत बनाना सम्भव नहीं होता जब तक ज्यादा विरोधी पार्टियाँ रहेंगी आप सरकार से सही टक्कर नहीं ले सकते। इसलिए जनता स्वयं सोचे कि कौन पार्टी देश का सही मार्ग-दर्शन कर सकती है तथा उसके सिद्धान्त अच्छे और देश-भक्ति पूर्ण हैं। विरोधी पार्टी भी जिनके नियम और उद्देश्य प्रायः मिलते-जुलते हैं उनके नेता भी चेष्टा करें कि उनको एक कर दिया जाय। इस प्रकार देश दिन-प्रतिदिन प्रगति कर सकेगा और जनता खुशहाल होगी।

———

रक्षा-प्रणाली

भारतवर्ष १५ अगस्त १९४७ को आजाद हुआ। परन्तु जिस समय हमें आजादी मिली उसी समय से हमारे महान नेता स्व० जवाहरलाल नेहरू का यह अटूट प्रयास रहा कि हम दुनिया में शान्ति का रास्ता चाहते हैं। उन्होंने अपने कार्य-काल के अन्दर इसके लिये जितनी आवाज बुलन्द कर सकते थे उतनी की। इससे पूर्व अहिंसा के पुजारी महान नेता पूज्य बापू ने भी राष्ट्र को यही सिखाया था कि हम समस्त विश्व में शान्ति चाहते हैं। क्योंकि पिछले दो महायुद्धों (World war) से हमें पता लग चुका है कि आज के युद्ध क्या हैं। उनकी विभीषिका कितनी भयंकर और विनाशकारी होती है। इसकी तबाही सदियों तक मानव तथा प्रकृति के ऊपर इतना भयंकर असर करती है कि वह ठीक नहीं हो सकती। इसके प्रत्यक्ष दर्शन हम हिरोशिमा और नागासाकी में कर सकते हैं। आज भी वहाँ कितने लोग उस भयानक वीभत्स, बर्बर काण्ड का परिणाम भुगत रहे हैं। ९ अगस्त १९४५ को चन्द पलों में हजारों मनुष्यों को भयंकर आणविक ज्वाला में भस्मसात् कर दिया गया। निरपराध मासूम बच्चे, स्त्री, पुरुष, युद्ध-पिपासु कमांडरों की निर्दय हिंसा की अग्नि में झोंक दिए गए। परन्तु आज भी इन्सान ने युद्ध के निकम्मेपन को समझा नहीं है। आज तो यह आणविक अस्त्र-शस्त्र पहले से भी हजार गुणा शक्तिवाले बन चुके हैं जिन्हें लोगों

ने कमाण्डरों के हाथों में सौंप रखा है। आप अनुमान लगा सकते हैं कि इसके परिणाम क्या होंगे। परन्तु बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आज भारत को मजबूरन यह सब करना पड़ता है। जिसका हमेशा यह नारा रहा कि हम आणविक अस्त्रों का निर्माण नहीं चाहते। हमारे प्रिय प्रधानमंत्री ने बार-बार यह घोषणा की कि हम परमाणु बम का निर्माण नहीं करेंगे। हमारे यहाँ की विरोधी पार्टियों ने बहुत बार जोर देकर सतत यह कोशिश की कि हमें भी परमाणु बम का निर्माण करना चाहिए। अनेक बार पारलियामेण्ट में इस प्रश्न को उठाया गया परन्तु हमारी सरकार ने इसको स्वीकार नहीं किया। अन्त में मौजूदा समय में हालत इतनी खराब हो गई कि हम अनुभव करने लग गये कि बगैर आणविक शक्ति के हम कमजोर हैं यदि हमने आणविक शक्ति का निर्माण नहीं किया तो हम अपनी आत्मरक्षा भी नहीं कर सकेंगे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए हमें इस कार्य में शरीक होना पड़ेगा।

भारत एक प्रजातन्त्र देश है। हमारे यहाँ हर व्यक्ति धर्म तथा सम्प्रदाय को अपने विचारों को स्वेच्छा से व्यक्त करने की स्वतन्त्रता है। हमारे यहाँ चार बार आम चुनाव हो चुके हैं परन्तु हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान और चीन जिनके यहाँ तानाशाही का शासन है और जो दुनियाँ में अमन के इच्छुक नहीं हैं उनकी द्वेषपूर्ण भावना ने आज समस्या को इतना अधिक उलझा दिया है कि दुनियाँ फिर से तीसरे महायुद्ध के लपेट में आ जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आज चीन एशिया में भारत की प्रगति को देखना नहीं चाहता। वह सोचता है कि एशिया में यदि कोई तेरा सानी रखता है तो वह भारत ही है। इसलिए उसके हृदय में इसके प्रति हमेशा अन्तर-ज्वाला सुलगती

रहती है। इसी कटु भावना के परिणामस्वरूप भारत को भी विवश होकर यह सब करना पड़ेगा। क्योंकि आत्मरक्षा तथा देश की अखण्डता को हम तभी तक कायम रख सकते हैं जब हम कमजोर न हों। १९६२ में चीन ने हमारे ऊपर अकारण ही हमला करके इस युद्ध की ज्वाला में खींचा और हमारे वे स्वप्न बेकार हो गए। हमारे यहाँ, यहाँ तक भावना बन चुकी थी कि हम तो शान्ति के उपासक हैं हमारे साथ कौन झगड़ा करेगा। इसलिए एक गरीब देश के नाते जहाँ गुलामी की जंजीरों ने हमें बिल्कुल तहस-नहस कर दिया था हमने सोचा कि सेना जैसा फ़िजूल खर्च हटाकर हमें यह रुपया अपने आर्थिक विकास (Development) में लगाना चाहिए। परन्तु कुछ ही समय बाद चीन ने हमारे ऊपर आक्रमण कर दिया। इसके बाद हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान ने काश्मीर के अन्दर घुस पैठ करके हमारे ऊपर एक जबरदस्त आक्रमण किया। परन्तु हमारी बहादुर सेना ने और १९६२ की चेतावनी के बाद हमारे शस्त्रास्त्रों की तैयारी ने अमेरिका को दिए हुए उन अजेय समझे जानेवाले सरमन और पैटन टैंकों तथा सेवरजेट विमानों को तहस-नहस कर दिया। उस समय हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को घोषणा करनी पड़ी थी कि हथियार का जवाब आत्म-रक्षा के लिए हथियार से देंगे उसी के फलस्वरूप जीत हमारी ही हुई। परन्तु हालत अभी तक ठीक नहीं है। आज भी पाकिस्तान तथा चीन की वही द्वेषपूर्ण नीति चल रही है। अब भी सदरे-अयूब खां के दिमाग में यही चीज है कि हमें जब तक कश्मीर नहीं मिलेगा तब तक हम शान्ति से नहीं बैठेंगे। वहाँ की कुछ जनता भी यही सोच रही है। हालांकि ताशकन्द समझौता हो चुका है परन्तु उस पर भी उसका पालन नहीं किया जा रहा है।

यह तनाव भारत और पाकिस्तान दोनों के लिए खतरनाक है। भारत और पाकिस्तान दोनों पड़ोसी देश हैं। इनका आपस में झगड़ा एक दूसरे के लिए हितकर नहीं है। दोनों तरफ की जनता और उसके शासक यदि इस प्रकार द्वेषपूर्ण भावना से झगड़ते रहेंगे तो यह अच्छा रास्ता नहीं है। जो भी बातें हैं उनको बातचीत द्वारा सद्भावना से हल किया जाय। यह एक अच्छा और समझदारी का रास्ता होगा तथा दोनों देश आगे बढ़ सकेंगे आज दुनियाँ में बहुत कूटनीति चल रही है। हम उनकी बहक में न आवें। जो भी मसला हो उसको हल करके मैत्रीपूर्ण ढंग से रहें इसके साथ ही चीन भी द्वेषतापूर्ण नीति को हटाए। वह भी सीमा-विवाद को हल करके सौहार्दपूर्ण नीति से रहे। यदि ऐसा होता है तो यह बहुत ही अच्छा रास्ता होगा दुनियाँ की हालत में एक नया मोड़ आएगा जो जागरूकता के विचार पैदा हुए थे, वे पनपेंगे। उनका सही अर्थों में विकास हो सकेगा। तथा संसार में सच्ची सुख-शान्ति हो सकेगी।

इसके साथ ही आज के युद्ध सम्पूर्णतः युद्ध होते हैं इनसे विजेता और विजित दोनों ही युद्ध की भयंकरता से प्रभावित होते हैं और उनको हर दृष्टि से जन-धन की अपार हानि उठानी पड़ती है। आधुनिक युद्धों में नगर, कारखाने, हवाई अड्डे, संचार केन्द्र मुख्य लक्ष्य होते हैं। तथा इन संहारक आयुधों से कोई नहीं बच सकता। साथ ही युद्ध-भूमि में एक सामान्य सिपाही का खर्च भी बहुत बढ़ गया है। यह सब वहाँ की जनता को प्रभावित करता है। युद्ध-व्यय का यदि एक सामान्य चित्र बनाया जाय तो आप देखेंगे कि सेना में लाखों की संख्यायें होती हैं। जीप, ट्रक, बन्दूक, तोपें, बारूद-गोला इत्यादि लाखों रुपया का खर्च होता है। नौसेना, वाहनों का खर्च करोड़ों रुपये तक होता

हैं। आधुनिक हवाई जहाजों का खर्च कितना भयंकर होता है। उदाहरणस्वरूप एक वैम्पायर लड़ाकू विमान का ही दाम करीब ७ लाख रुपया है और एक अच्छे लड़ाकू विमान पर करीब २०-२५ लाख रुपये तक व्यय बैठता है। इस प्रकार से युद्धभूमि के लिए हर घड़ी केन्द्रों पर बारूद, परिवहन सामान, तोप, बन्दूक, विमान तथा नौयान सम्भालकर तैयार रखने पड़ते हैं। यह फौजी व्यय देश की आमदनी में छेद करता रहता है।

हिरोशिमा पर जो परमाणु बम गिराये गये थे उनसे जनधन की कितनी भारी क्षति हुई थी जिसका परिणाम वहाँ की जनता आज तक भुगत रही है। आज भी वहाँ विकलांक तथा टेढ़े-मेढ़े बच्चे जनमते हैं। भूमि भी उर्वर नहीं हुई है। परन्तु वे तो आज अणुबमों की तुलना में बहुत छोटे और पटाखों के समान थे। अब आप स्वयं अनुमान लगाइये कि ये कितने भयंकर तथा वज्रपात के समान होंगे। आधुनिक युग जिसमें सब परिमाणु साधन निर्देशित प्रक्षेपणास्त्र अथवा शब्दवेधी गति से चलने वाले विमान जिनमें परमाणु अस्त्र रखे जाते हैं इतनी द्रुत गति से अचानक हमला करते हैं कि आक्रान्त देश को मुश्किल से सामना करने का समय मिल पाता है। इन सब भयंकर परिस्थियों को देखते हुए हमें अपनी रक्षा की तैयारियाँ आधुनिक रूप से रखनी ही होंगी। क्योंकि शान्ति तभी रह सकती है जबकि हम पूर्णरूप से शक्तिशाली हों। कमजोर आदमी शान्ति स्थापित नहीं कर सकता। बलवान ही शान्ति स्थापित कर सकता है। इसलिए हमें रक्षा के लिए निम्नलिखित कार्य करने चाहिएँ—

(१) आधुनिक तथा आणविक शस्त्रास्त्रों का अपनी क्षमतानुकूल निर्माण करना।

(२) फौज को आधुनिक युद्ध-कौशल विद्या से पूर्णरूप से

ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) देना तथा पाक और चीन के आक्रमण के भय से हमारी लम्बी सीमा को देखते हुए फौज को और बढ़ाना।

(३) प्रत्येक भारतीय को जबकि उसकी अवस्था २०-२५ के लगभग हो उस समय में उसकी अनिवार्य ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) हो, चाहे वह स्कूल कालेज या किसी व्यापारिक कार्य में हो। कैम्प रूप से महीना अथवा दो महीना प्रशिक्षण देना। ताकि समय पर वह अपना बचाव करने में न घबराये।

(५) फौज में से हर साल एक लाख सैनिकों को प्रशिक्षण देने के बाद छोड़ देना और उनको पेंशन रूप में प्रति वर्ष कुछ देते रहना ताकि लड़ाई के समय उनको फौरन भर्ती किया जा सके। इस प्रकार से हमें सेना भी कम रखनी होगी और आवश्यकता पड़ने पर प्रशिक्षित दक्ष सैनिक मिल सकेंगे।

(५) प्रत्येक भारतीय को शारीरिक रूप से बलवान, मानसिक रूप से सावधान और नैतिक रूप से शुद्ध होना चाहिए। यह नहीं कि देश की सीमाओं के बाहर वह किसी बात के लिए अपनी निष्ठा को छोड़ने वाला हो।

(६) युद्ध के समय वीर गति प्राप्त सैनिकों के परिवार के लिए ऐसी व्यवस्था हो कि वह आर्थिक रूप से तथा बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए तकलीफ अनुभव न करें।

(७) शासकवर्ग जिनके हाथ में सत्ता है उन्हें भी युद्ध के आधुनिक तरीकों की जानकारी रखनी चाहिए। रक्षा विभाग से संबंधित राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, रक्षामन्त्री वगैरह उच्च पदाधिकारियों को युद्ध के समय की पूरी स्थिति समझने की योग्यता होनी चाहिए जिससे वे सही मार्ग दर्शन कर सकें।

इस प्रकार से यदि हम पूर्ण रूप से तैयारी रखेंगे और सावधान रहेंगे तो हम देश को सुरक्षित रख सकेंगे। यह नहीं कि एक दार्शनिक की तरह केवल विचार धाराओं पर ही भरोसा रखे रहें। हमें आज के इस विश्व में बहुत सजगता और युक्ति से चलने की आवश्यकता है। तभी हम सच्ची शान्ति स्थापित कर सकेंगे।

विदेशी-नीति (FOREIGN POLICY)

हमारा देश १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हुआ। आज हमें आजादी मिले २० वर्ष हो चुके हैं। इस समय में हमें विदेश नीति में सफलता और असफलता दोनों देखनी पड़ी है। सबसे पहले हमारे स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने सब मुल्कों से मैत्री के लिये हाथ बढ़ाया। दुनियाँ के सामने पंचशील के सिद्धान्त को रक्खा जो इस प्रकार था—

(१) एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता तथा प्रभुता को सम्मान।

(२) किसी दूसरे देश पर हमला न किया जाय।

(३) अन्य देशों के अन्दरूनी मामलों में आर्थिक, राजनैतिक सैद्धान्तिक कारणों से हस्तक्षेप न करना।

(४) समानता तथा पारस्परिक लाभ।

(५) सह-अस्तित्त्व ।

अब इन सिद्धान्तों को देखा जाय और चला जाय तो आज विश्व में जो अशान्ति फैली हुई है वह समाप्त हो जाय और हम एक दूसरे के साथ सौहार्द से रह सकते हैं। परन्तु इन सबका पालन नहीं किया जा रहा है। इसके साथ ही ये सिद्धान्त संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों और भावना के बिल्कुल अनुकूल हैं। सबसे पहले इन सिद्धान्तों को १९५१ में भारत सरकार ने चीन से तिब्बत के मामलों को सुलझाने के लिये अपनाया था। बाद

में १९५५ में बांडुङ्ग सम्मेलन में अनेक राष्ट्रों ने इन सिद्धान्तों में अपनी आस्था प्रकट की। इसके बाद रूस, पौलैण्ड, एबीसीनिया, इण्डोनेशिया, युगोस्लाविया, सऊदी अरब, तथा कई अन्य देशों ने इन सिद्धान्तों पर हस्ताक्षर कर दिये। परन्तु कुछ वर्षों की घटनाओं से यह पता चलता है कि इनका कुछ राष्ट्रों ने ठीक से पालन नहीं किया है। रूस ने हंगरी में तथा चीन ने तिब्बत और भारत की सीमाओं पर आक्रमण करके इनका उल्लंघन किया है। इसके बाद पाकिस्तान ने अकारण ही हमारे ऊपर हमला किया और हमें युद्ध में घसीटा। पाकिस्तान ने सोचा था कि हम काश्मीर जीतकर दिल्ली तक पहुँच जायँगे। सौभाग्य से कार्य इसके विपरीत हुआ और बजाय उनके दिल्ली पहुँचने के हम लाहौर पहुँच गये।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमने चेष्टा की थी कि जो मुल्क परतन्त्र हैं, किसी साम्राज्य के अधीन हैं वे मुक्त हों। उनके लिये यथासम्भव चेष्टा भी की गई और उसमें हम काफी हद तक सफल भी हुए। इसके साथ ही आज के इस आणविक युग में भारत ने दुनियाँ के बड़े राष्ट्रों से समय-समय पर अनुरोध किया कि निःशस्त्रीकरण होना चाहिए। आणविक शस्त्रास्त्रों पर व्यर्थ का खर्च न किया जाए जो कि सारी मानव जाति के समूल नाश का कारण है। परन्तु बावजूद इसके आणविक हथियार बनते जा रहे हैं ऊपर से वे लोग यह कह रहे हैं कि दुनियाँ में शान्ति होनी चाहिए। परन्तु कार्य इसके विपरीत हो रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय अवस्था आज यह बनी हुई है कि दुनियाँ के दो प्रमुख शक्ति गुटों ने अपना-अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने के लिए—जगत्-व्यापी द्वन्द्व के कारण जिनके प्रमुख नेता संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस हैं—सर्वत्र छाये हुए हैं, स्पष्ट शब्दों में उनकी

चाल यह है कि जो राष्ट्र अमेरिका की ओर झुकते हैं। उनका रूस विरोध करता है और जो रूस की तरफ झुकता है उनका अमेरिका विरोध करता है। हमारी संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ भी आजकल उन्हीं लोगों के हाथ की कठपुतली बनी हुई है। अब यह केवल कोरी नाम-मात्र की संस्था रह गई है। सब राष्ट्र दिन-रात शस्त्रास्त्रों की तैयारी में लगे हुए हैं। आज एक दूसरे में यही होड़ लगी हुई है कि कौन ऐसा विनाशकारी अस्त्र बना सकता है जो इस समस्त संसार को मिनटों में भस्म कर दे। हिरोशिमा और नागासाकी पर जो निर्मम हत्याकाण्ड हुआ था आज उससे भी कई गुना शक्तिशाली आणविक शस्त्रों का निर्माण हो चुका है। क्या यह शान्ति के रास्ते का प्रयत्न है, नहीं यह साफ धोखा है।

आज इन सब हालतों को देखते हुए जबकि विश्व की दो बड़ी ताकतें अपना-अपना प्रभाव फैला रही हैं वे भारत को अपनी-अपनी तरफ खींचना चाहती हैं दोनों इसे एशिया की कुञ्जी समझती हैं। एशिया संसार की कुञ्जी बनता जा रहा है। यदि कम्युनिस्ट भारत को अपनी तरफ खींच लेता है तो पूँजीवाद का पलड़ा हल्का हो जाता है। यदि पूँजीवाद इसको अपनी तरफ खींच ले तो कम्युनिस्टों का पलड़ा भारी हो जाता है। फलस्वरूप दोनों शक्ति गुट भारत को अपने साथ रखने के लिए तथा अपनी धारा में ओत-प्रोत करने के लिए प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रयत्न कर रहे हैं। दोनों इसकी आन्तरिक राजनीति पर भी प्रभाव डालने की चेष्टा कर रहे हैं। इसके विभिन्न दलों की राजनीतिक गतिविधियों को बड़े ध्यान से अध्ययन कर रहे हैं।

अब इसके साथ जबकि हमारी अवस्था यह है कि हमें इन-

दोनों से अपने विकास कार्यों के लिए आर्थिक, तकनीकी, खाद्य, आदि की हर प्रकार को सहायता ले रहे हैं। जैसे सिंचाई के लिए भाखड़ा बाँध, भिलाई, राउरकेला आदि बड़ी-बड़ी योजनाओं के लिए इंजीनियरिंग तथा दूसरे प्रकार की सहायता लेना। इस प्रकार हमें विशाल देश की बड़ी जनसंख्या को हर दिशा में आगे बढ़ने के लिए हर प्रकार की सहायता की आवश्यकता है। अतः हमें काफी सहायता लेनी पड़ी और ले रहे हैं। खाद्य-समस्या के लिए P L. ४८० के अन्तर्गत कितना गेहूँ हमारे पास आ चुका और बहुत आ रहा है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या इन सब आर्थिक सहायताओं के लिए हम किसी दूसरे गुट विशेष में शामिल हों और उसको दृढ़ बनावें तथा आज जो द्वन्द्वता बढ़ रही है उसको और बढ़ाते चलें या नहीं।

जबकि इस आपस की द्वन्द्वता में आज दोनों प्रमुख ताक़तों का अधिकांश पैसा युद्ध की तैयारी या भयंकर आणविक शस्त्रास्त्रों के लिए ख़र्च हो रहा है। केवल इस भय से कहीं एक दूसरे पर आक्रमण हो जाय और एक दूसरे को दबा ले तो क्या हम भी इस होड़ में शामिल हो जायँ जो कि विश्व के विनाश का कारण बनता जा रहा है या यों सोचें कि हमें उनकी तरफ न होने से आज जो सहायता मिल रही है वह नहीं मिलेगी। चाहे कुछ भी हो इस द्वन्द्वता के संघर्ष में पड़कर हमें किसी गुट विशेष में सम्मिलित नहीं होना है। चाहे हमें उनसे जो मदद मिल रही है वह मिले या न मिले। यदि उनमें से कोई गुट हम पर इस प्रकार का दबाव दे या इस मदद के लिए अपनी तरफ खींचने की कोशिश करे तो हमें इस प्रकार की सहायता नहीं लेनी चाहिए। अपने उद्देश्यों और सिद्धान्तों को देखते हुए आवश्यक है कि हम ऐसा न करें।

अभी पिछले दिनों हमारे यहाँ के रुपये का जो अवमूल्यन हुआ उसकी भी काफी आलोचना हुई कि सरकार ने विदेशी दबाव में आकर ऐसा किया है। परन्तु सरकार ने कहा कि नहीं हमने किसी भी विदेशी दबाव से ऐसा नहीं किया है। ठीक है ऐसा हो सकता है परन्तु कहने का तात्पर्य यह है कि हमें किसी भी कीमत पर विदेशी दबाव में आकर कोई आर्थिक या खाद्य वगैरः की सहायता नहीं लेनी चाहिए। आज जो हम अधिकांश प्रयत्न हर चीज के लिए हर विदेशी मदद की करते हैं और जो मन्त्री बाहर से जितनी अधिक मदद लाए वह उतना ही अच्छा समझा जाय ऐसा भी हमारे लिये ठीक नहीं है। इससे हमारे अन्दर स्वभावतः शिथिलता आ रही है। इससे हम स्वावलम्बन की तरफ बहुत कम अग्रसर होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम वही मदद कहीं से लेने की चेष्टा करें जो अत्यन्त अनिवार्य है। बजाय वहाँ की मदद के अच्छा यही है कि हम अपनी खाद्य की समस्या सुलझाने के लिए अपनी आबादी को नियन्त्रित करें, सिंचाई के साधन बढ़ायें। बड़े उद्योगों की जगह छोटे उद्योग-धन्धे अपनाएँ जिसमें विदेशी सहायता, मशीनरी तथा कारीगरों की जरूरत न पड़े और अधिक आदमियों को काम मिल सके।

इसके साथ आज जो विश्व-रंगमंच पर रूस तथा अमेरिका दोनों सबल राष्ट्र एक दूसरे की होड़ में लगे हुए हैं। अक्सर कोई भी घटना होती है उसमें दोनों का दृष्टिकोण एक दूसरे के विपरीत होता है। जिससे विश्व की परिस्थिति और भी भयानक विश्वयुद्ध होने जैसी बन जाती है। बजाय वह समस्या हल होने के और उलझ जाती है तब क्यों नहीं ऐसा किया जाता कि इन दोनों राष्ट्रों को एक न्यायोचित सम्मति मिले और वह समस्या

फौरन हल हो जाय। यह ठीक है कि आज उनकी रोटी, कपड़ा, और मकान की समस्या प्रायः हल हो गयी है परन्तु इससे मानव जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं होता। इससे आगे के कार्य की आज वहाँ अत्यन्त आवश्यकता है। चरित्रोत्थान, अध्यात्म-वाद की ओर अग्रसर होने, शाकाहारी बनना, आकाश-मण्डल की खोज तथा दूसरे मानव हितैषी कार्यों में अपनी धन-सम्पत्ति को बिना किसी स्वार्थ वृत्ति के लगाने का प्रयत्न होना चाहिए। बजाय इसके कि दोनों का पैसा एक दूसरे के भय से विनाशकारी साधनों में लगाया जाय। इसके अलावा यह ठीक है कि उनकी दौड़ एक दूसरे को अपने प्रभाव में लाने के लिए है। परन्तु यह कूटनीति सम्बन्धी वर्तमान चाल ठीक नहीं। आपके मौलिक विचारों में चाहे अन्तर हो परन्तु आपका दृष्टिकोण यही हो कि हम मानव-हित के कार्य करें।

इससे विश्व में सच्ची शान्ति स्थापित हो सकेगी और प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे के सहयोग से आगे बढ़ेगा। दुनियाँ के उपनिवेश-वाद, दासता, गरीबी, भुखमरी एक दूसरे का शोषण आदि खत्म होकर यहाँ भ्रातृत्व तथा मैत्री की भावना फैल सकेगी और सब सुख-शान्ति से रहेंगे। इसलिये भारत को अपने सिद्धान्तों का पालन करते हुए निम्नलिखित कार्यों की ओर अग्रसर होना चाहिएः—

(१) उपनिवेशवाद को दुनियाँ से खत्म करने की यथासंभव चेष्टा करना।

(२) जो राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाए या हथियाने की चेष्टा करे उसका विरोध करना।

(३) बड़ी ताकतों की कोई भी ऐसी सहायता जो हमें दी गई

है या दे रहे हैं उसके द्वारा हमारे ऊपर अनुचित दबाव डाला जाय वह मदद न लेना।

(४) किसी की भी एक इंच भूमि न लेना तथा अपनी एक इंच भूमि किसी को भी न देना। चाहे उसके लिए कितनी ही और किसी प्रकार की कुर्बानी करनी पड़े।

(५) भारत के दक्षिणी पूर्वी एशियाई संघ के सभी देशों का संगठन बनना चाहिए।

(६) अफ्रीका के राष्ट्रों से तथा अपने पड़ोसी देश बर्मा, लंका, नेपाल आदि से अधिकाधिक मेलजोल बढ़ाया जाय।

(७) तिब्बत की निर्वासित सरकार को मान्यता देना।

(८) फारमोसा और इजराइल को मान्यता देना।

यह नहीं कि हम अभी तक वही पुरानी १९५८ की नीतियों से चिपके रहें जबकि उसके बाद देश-विदेश की परिस्थितियों और आपसी सम्बन्धों में बहुत परिवर्तन हो चुके हैं। विदेश-नीति देश, काल, परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। इस प्रकार हम दृढ़ होंगे और अपने नियमों पर चलते हुए विश्व में शान्ति स्थापित करने में योग दे सकेंगे।

न्याय-पद्धति

सृष्टि के आरम्भ में जब मानव-जाति का विकास हुआ और वह शनैः शनैः खाने-पीने, पहिनने तथा रहने आदि के साधनों के आविष्कारों के साथ-साथ सभ्यता की तरफ अग्रसर हुई तब उन्होंने अनुभव किया कि हम सबकी हर प्रकार की सुरक्षा के लिये तथा अपराधी होने पर एक दूसरे को दण्डित करने के लिये एक न्यायकारी मुखिया का होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि सब लोग तो एक समान देवत्व लेकर पैदा नहीं होते। उनमें अपनी-अपनी प्रकृति, परिस्थिति आदि के अनुसार ऊँच-नीच विभिन्न विचारों के होते हैं। इसलिये इन सबके रक्षार्थ न्याय-व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी हेतु प्राचीन काल से न्याय-व्यवस्था कायम है। यह ठीक है कि इसका रूप अपने-अपने समयानुकूल पृथक्-पृथक् होता रहा है।

जैसे, राजतंत्र में राजा स्वयं दरबार लगाकर मंत्री आदिकों की मंत्रणा से स्वयं न्याय करता था।

प्रजातंत्र में न्यायपालिका के अंतर्गत सुप्रीम कोर्ट (उच्चतम न्यायालय) तथा हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय) इनके अतिरिक्त छोटी अदालतें—जो हमारे यहाँ के प्रत्येक जिले में पाई जाती हैं—तथा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका (विधानमण्डल) हैं। इनमें से न्यायपालिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह विधान-मण्डल द्वारा बनाये हुए कानूनों की तथा संविधान की संरक्षिका है। इस प्रकार से यहाँ न्याय-व्यवस्था होती है।

अतः किसी भी सभ्य राज्य के लिये न्याय-व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है। बगैर न्यायायिक व्यवस्था के वहाँ के नागरिकों की तथा संविधान के नियमों का सुचारु रूप से पालन नहीं हो सकता।

मिस्टर मैरियट लिखते हैं कि "यदि न्याय करने में कोई त्रुटि हो या देर लगती हो तो व्यक्ति के जान-माल की रक्षा सम्भव नहीं है।" इसी प्रकार मिस्टर ब्राइस ने लिखा है, "किसी शासन की श्रेष्ठता जाँचने के लिए उसकी न्याय-व्यवस्था की निपुणता से बढ़कर और कोई अच्छी कसौटी नहीं है क्योंकि किसी और बात से नागरिकों की सुरक्षा और हितों पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उनके इस ज्ञान से कि वह एक निश्चित, शीघ्र तथा अपक्षपाती न्याय शासन पर निर्भर रह सकता है।" न्याय-पालिका द्वारा ही देश में न्याय स्थापित हो सकता है। इसके न होने से राज्य में पाशविक शक्ति कायम हो जायगी। (१) नागरिकों की सुरक्षा के अंतर्गत आमतौर से निम्नलिखित बातें आती हैं। (१) किसी से कर्ज लेकर न देना (२) व्यापारिक झगड़े (३) करों की चोरी (४) किसी स्त्री-पुरुष का व्यभिचारी होना। (५) चोरी, डाका मारना (६) सीमा-विवाद (७) किसी को कठोर शब्द बोलना (८) किसी को दबाकर काम करना (९) किसी को कठोर दण्ड देना (१०) किसी का वेतन न देना अथवा कम देना (११) किसी की जायदाद वगैरः दबाना आदि कोई भी झगड़ा हो उसकी न्यायपूर्वक व्यवस्था करना।

(१२) इसी प्रकार विधान-मण्डल तथा संविधान की सुरक्षा के लिए जो कानून बनाये जायँ अथवा बनाये गए हों उनका पालन प्रत्येक गरीब-अमीर सब करें।

परन्तु हम देखते हैं कि भारत की न्याय-प्रणाली में अनेक दोष हैं। वे निम्नलिखित हैं।

(१) भाषा की भिन्नता—हमारे यहाँ भाषा की भिन्नता से बहुत गड़बड़ी होती है। क्योंकि जिस व्यक्ति का केस होता है वह अक्सर अपनी भाषा को ही जानता है और जब वह अदालत में जाता है तो वहाँ कार्रवाई अक्सर अंग्रेजी में मिलती है। इसी तरह वकील के सम्पर्क में आते ही उसकी सब कार्रवाई अंग्रेजी की होना और बहस वगैरः भी जो उसका वकील और न्यायधीश महोदय के मध्य होती है वह भी अक्सर अंग्रेजी में ही होती है तथा कानून-कायदे सब अंग्रेजी में हैं। इन कारणों से जिनका केस होता है वे अपने केस की सब बातें नहीं समझ पाते और वे अदालत में अनजान की तरह खड़े रहते हैं। उनको यह भी नहीं मालूम पड़ता कि क्या हुआ, क्या नहीं। अतएव यह बुराई दूर होनी चाहिए। जिस प्रान्त में जो केस वहाँ का हो वह सब कार्य उस भाषा में तथा राष्ट्र भाषा में हो। इसी भाँति जो केस सुप्रीम कोर्ट में जाय वहाँ की सब कार्रवाई राष्ट्र भाषा में हो।

(२) न्यायाधीशों तथा वहाँ के अन्य कर्मचारियों के वेतन ऊँचे तथा मँहगाई होने से अतिरिक्त भत्ता वगैरः की व्यवस्था हो ताकि वे अन्य रिश्वत वगैरः के प्रलोभन में न आयें। साथ ही उनके पास अन्य सार्टिफिकटों की तरह विश्वविद्यालय से सच्चरित्रता का भी सार्टिफिकट दिया जाय। विश्वविद्यालयों में सच्चरित्र और धार्मिक प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए भी पाठ्य-पुस्तकें पढ़ाई जायँ जिससे पढ़ने के पश्चात् वे भविष्य में जिस पद पर जायँ उसको ईमानदारी और सच्चरित्रता से निभायें।

(३) वकील लोग ऐसा कार्य न करें कि अपराधी बच जाय

और निरपराधी फँस जाय या अपराधी को जो दण्ड मिलना चाहता था वह न दिया जा सके। क्योंकि वकील लोगों को हकीकत का अक्सर पता लग जाता है। वे केवल इतना ही करें कि कानून यह है आपको इस प्रकार करना पड़ेगा। इससे अधिक नहीं। यह नहीं कि उसके प्रलोभन वगैरः में आकर पैसे ले लेवें और अफसरान महोदय से मिलकर कुछ का कुछ रूप बना देवें। वे केवल कानून बताने का कार्य करें उनसे किसी प्रकार के उल्टे-सीधे बयान न करायें। इससे जो न्याय का वास्तविक रूप होता है वह हो सकेगा और दिन-प्रतिदिन होनेवाले अनेक अपराधों से लोग बच सकेंगे।

(४) सरकार की तरफ से ऐसी व्यवस्था हो कि जो वकील इस प्रकार के निकलें उनको वकालत करते ५ या १० वर्ष हो गये हों और इस दौरान उनके सब केश ठीक निकले हों जो कि उन्होंने गलत आदमियों के न लिए हों तो उनको विशेष पद या तरक्की तथा सम्मान दिया जाय ताकि वह न्याय-व्यवस्था में और अधिक सहयोग दे सकें। और ऐसी भी व्यवस्था हो कि जिनके प्रायः सब केश खराब निकलें उनको वकालत से हटा दिया जाय।

(५) वकीलों को भी वकालत की अनुमति तब दी जाय जब उनके पास भी इस प्रकार का सार्टिफिकेट हो जो कि उनके नैतिक स्तर आदि के विषय में जानकारी दे। जिनका नैतिक-स्तर ठीक न हो उनको आज्ञा न दी जाय। इस व्यवस्था से वह न्याय-प्रणाली में सहयोगी होंगे न कि असहयोगी। ऐसा भी होता है कि सरकार कानून बनाती है और वे ऐसी विधि निकालने की सोचते हैं कि कानून की पकड़ में न आयें और कार्य कानून के विपरीत हो जाय। अतएव जो भी कानून बने वह अधिक से अधिक जनता को स्पष्ट करके बताया जावे और उसके पालन

करने का तरीका बताया जावे ताकि जनता गलती करने ही न पाये।

(६) सेलटैक्स, इन्कमटैक्स, दीवानी, फौजदारी, प्रापर्टी टैक्स आदि जिस विभाग का वकील हो वह अपने मोवक्किलों को समय समय पर जो भी कानून बनें उनकी जानकारी दे और उनके पालन कराने की पूरी चेष्टा करे। यदि वह कानून ऐसा है कि जनता उस कानून का सही पालन नहीं कर सकती तो निष्पक्ष दृष्टि से सरकार को लिखें कि इसमें परिवर्तन हो, इसमें ये कठिनाइयाँ हैं। इस प्रकार की व्यवस्था से आज जो कानून पर कानून अंधाधुंध बन रहे हैं और समस्या हल नहीं हो पा रही है, यह सब नहीं होगा। आज हालत यह है कि सरकार डाल-डाल और जनता पात-पात, यह ठीक नहीं है।

(७) दण्ड-व्यवस्था इस प्रकार की हो कि एक व्यक्ति जिसने अपराध किया है उसी को दण्ड मिले और नसीहत काफी लोगों को मिले। ऐसा अपराधी जिसने एक दो या अधिक बार गड़बड़ की हो और जिसको न्यायालय की तरफ से चेतावनी दी गई हो कि ऐसा न करे और वह फिर वैसा ही करे तो उसका वह अंग छेदन कर दिया जाय जिससे उसने कुचेष्टा की है या कोई अन्य ऐसा दण्ड दिया जाय कि वह फिर वैसा न कर सके।

(८) गौ आदि पालतू पशुओं को मारनेवाले, किसी की भी बहन-बेटी की इज्जत नष्ट करनेवाले, देश की गुप्त बातों को खुफिया रूप से दूसरों को बतानेवाले को कठोर से कठोर दण्ड की व्यवस्था हो।

(९) स्वयं सरकारी लोग तथा राज्य शासन चलानेवाली पार्टी या शासक इस बात की गुप्त रूप से खोज करें कि कहाँ क्या गलती हो रही है। जैसे कोई मंत्री या उच्च पुलिस

अधिकारी या अन्य कोई गलत कार्य करता है तो उसके अपराध कौन पकड़ेगा। इसलिए वहाँ शासक अधिकारी गुप्त रूप से बगैर कोई समय नियुक्ति के स्वयं जायँ और उनकी जाँच करें तथा अपराधी होने पर कठोर दण्ड दें।

(१०) सब प्रान्तों तथा मुख्य-मुख्य बड़े-बड़े शहरों में एक ऐसा केन्द्र हो जहाँ निष्पक्ष रूप से सरकारी अथवा गैरसरकारी शिकायतें नोट की जायँ और वह सरकार के पास भेज दी जाय। इससे अपराधों में काफी कमी होगी। जैसे कोई किसी शहर में बदमाश, ठग, जुआरी, या कोई सरकारी विभाग का आदमी कोई रिश्वत आदि लेकर गड़बड़ करता हो तो इस प्रकार की शिकायतें आम आदमी सीधा हस्तक्षेप करके नहीं कर सकता क्योंकि उसको भय रहता है कि उसको वह किसी रूप से हानि पहुँचाएगा। इसलिए यदि इस प्रकार का वहाँ कोई केन्द्र हो तो वह वहाँ शिकायत भेज सकता है। जब उस केन्द्र को एक ही आदमी के प्रति काफी शिकायतें मिलें तो वह उसकी गुप्त रूप से जाँच करे और उसको पकड़े। इस प्रकार से काफी सुधार हो सकता है।

(११) आज समाज में कुछ नैतिक पतन के ऐसे अपराध प्रचलित हैं जिन्हें लोग परिस्थितियों के वशीभूत होकर मजबूरन अपनाते हैं जैसे—चोरी, ठगी, वेश्यावृत्ति आदि ऐसे अपराधों के संबंध में ऐसी कड़ाई हो कि वे न हो सकें।

(१२) कानून भी ऐसे हों जो सीधे, सरल तथा आसानी से पालन किए जा सकें। साथ ही ऐसी व्यवस्था हो कि जो कानून बने और वह जिस वर्ग के लिए हो उसको उसकी जानकारी कराने का साधन हो। आज कुछ ऐसा ही मालूम पड़ता है कि कानून बन जाते हैं और जन-साधारण को या व्यापारी वर्ग आदि

को उनका पता भी नहीं लगता कि क्या परिवर्तन हुआ है और जब पता लगता है तब वह आगे और परिवर्तित हो जाता है।

(१३) कैदियों का भी मनोवैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जाय कि इसने अपराध किस कारण से किया है। उसको उसी रूप से कुछ शिक्षण दिया जाय कि वह आगे फिर वैसा न करे। साथ ही आवश्यकतानुसार उनसे कठोर या नरम काम लेने की भी व्यवस्था हो। जो खतरनाक कैदी हों उनसे कठोरता से कार्य लें इस प्रकार से अपराधों में काफी कमी होगी।

(१४) भारत की न्याय-प्रणाली बहुत खर्चीली है। क्योंकि कोई भी गरीब आदमी तब तक न्यायालय में मुकद्दमा नहीं जीत सकता जब तक वह किसी बहुत योग्य वकील की सहायता न प्राप्त करे। ऐसे वकील के लिए काफी फीस चाहिए। अतः ऐसी व्यवस्था हो कि न्याय के लिए बहुत कम व्यय करना पड़े।

(१५) दीवानी वगैरः के मुकद्दमों के फैसलों में काफी विलम्ब हो जाता है ऐसा न होना चाहिए।

इस प्रकार से यदि न्याय-प्रणाली बिल्कुल विशुद्ध और त्रुटियों से रहित होगी तो अपराध भी कम होंगे और यह बहुत ही सुंदर व्यवस्थित रूप से चलती रहेगी। इसके साथ ही हमारे देश में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में बहुत ही महत्व है। न्यायालयों ने अनेक सामाजिक तथा आर्थिक झगड़ों का बहुत निष्पक्ष रूप से निर्णय किया है। जबलपुर के दंगों की न्यायायिक जाँच, महात्मा गान्धी हत्याकांड, केशवदेव मालवीय के विरुद्ध कुछ आरोप जिनके कारण उनको अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा, प्रतापसिंह कैरो की बाबत दास कमीशन का निर्णय आदि अनेक मामले हुए जिनकी निष्पक्ष रूप से जाँच हुई और निर्णय किये गये।

इसी प्रकार से समय-समय पर सुप्रीम कोर्ट ने समाचारपत्रों और भाषण तथा लेखन की स्वतन्त्रता की भी सदा रक्षा की है। इस प्रकार से यह एक प्रशंसनीय कार्य है और न्यायपालिका का यह कर्तव्य है कि वह चाहे जो मामला हो, सरकार का या अन्य सबका, निर्भीकतापूर्वक न्यायोचित निर्णय दे। इस प्रकार से लोगों के मौलिक अधिकारों तथा संविधान की रक्षा हो सकेगी।

धर्म-पद्धति

धर्म क्या है ? इसका क्या रूप है ? इस शब्द में क्या विशेषता है ? यह कहाँ से आया है ? यदि हम इन सब बातों पर विचार करें कि जब से हमें कुछ ज्ञान हुआ बातों को जानने का, समझने का, धर्म-पुस्तकों के अन्दर पढ़ने से कि धर्म पर चलो धर्म ही जीवन का आधार है। धर्म को न मानने से हम पतन की तरफ चले जायेंगे तब हमें ज्ञात हुआ कि धर्म एक विशेष महत्व रखता है। परन्तु हम साथ में यह भी देखते हैं कि आज धर्म का रूप लोगों ने इतना छोटा बना दिया है कि हम धर्म को लेकर आपस में झगड़ते हैं। वाद-विवाद करते हैं। एक दूसरे पर आक्षेप करते हैं। एक कहता है मेरा धर्म ठीक है, दूसरा कहता है नहीं मेरा ठीक है। कोई अपने को सम्बोधित करता है कि मैं सनातनधर्म का अनुयायी हूँ। इसी प्रकार वैदिक धर्मी, जैनी, ईसाई, इस्लाम धर्मावलम्बी आदि हैं। आप भारत के अपने कुछ भाइयों से पूछिए—क्योंजी आप किस धर्म को मानते हैं। आप देखेंगे कि आपको विभिन्न प्रकार के जवाब मिलेंगे। कोई कहेगा मेरा बौद्ध धर्म है, कोई कहेगा जैनमत, कोई कहेगा दादूपन्थ, कोई कहेगा सनातनधर्म वगैरः वगैरः। तब हम महसूस करेंगे कि हम एक ही देश के निवासी भिन्न-भिन्न धर्मों को क्यों मानते हैं। हमारे अन्दर यह भेदभाव क्यों हुआ। परन्तु हमारे इस प्रश्न का समाधान इतिहास को

देखने से हल हो सकेगा कि विभिन्न समय में हमारे पूर्वजों ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार अपने धर्मों का रूप बनाया। इसके अतिरिक्त आप स्त्री-समाज को लीजिए। उनके धर्म के संबंध में अशिक्षा के कारण कैसी-कैसी विचित्र मान्यताएँ बनी हुई हैं। वे कहेंगी कि मैं तो सुबह उठकर शौच, स्नानादि से निवृत्त होकर शिव के मन्दिर में जाती हूँ, पूजा-पाठ करती हूँ, प्रसाद बाँटती हूँ। तमाम पर्व मानती हूँ। सब देवी-देवताओं का अनुष्ठान करती हूँ। कहानी सुनती हूँ। व्रत करती हूँ। परन्तु यदि हम उनकी समस्त दैनिक बातों को देखें तब हम कहेंगे कि यह धर्म की सब बातों को मानने वाली दिन में क्या-क्या रूप बदलती हैं। तमाम दिन झगड़ा—सास का बहू से, बहू का ननद से, ननद का भाभी से, घर का सारा कार्य अस्त-व्यस्त। कोई मिलने आये उसको दूसरे के प्रति भेदभाव की बातें सिखाना, मनमुटाव पैदा करना, बेटे-पोतों से लड़ना आदि। तो हमारे उन व्रतनियमों से, उन धर्मों से हमें क्या मिला? क्या हम इसको धर्म कहेंगे? जब हमारा व्यावहारिक कार्य ठीक नहीं तब धर्म-धर्म कहने से क्या लाभ हुआ? इसी प्रकार आप किसी भी धर्म के भाई को देखिए वह जरूर अपने को कोई न कोई धर्मा-वलम्बी बताएगा परन्तु उसका व्यवहार यदि व्यापार है तो व्यापार में झूठ बोलना, गलत और खराब चीजों की मिलावट करना, कम तौलना, सही चीज न देना, कहना कुछ और करना कुछ। तथा नौकरी वगैरः पर है तो मालिक का कार्य ठीक से न करना, उसके साथ झगड़ा करना, मालिक का नौकर से सही व्यवहार न रहना। यदि सरकारी पद है तो पूरी ड्यूटी न देना, रिश्वत लेना; अध्यापक है तो बच्चों को ठीक ढंग से न पढ़ाकर ड्यूटी पूरी न निभाना जिससे कि बच्चों का भविष्य खराब हो

जाता है। इस प्रकार हम देखेंगे कि हम चाहे किसी भी धर्म को मान्यता दें, परन्तु यदि हमारा एक दूसरे के प्रति सही व्यवहार न हो तो उस धर्म से क्या लाभ ? बहुत से हमारे ऐसे भाई भी मिलेंगे जो कि यह कहेंगे कि हमारे साथ न बैठो। हमारा धर्म बिगड़ जायगा। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि क्या तुम समझते हो हमारा धर्म 'धर्म' कहलाने लायक है। हमारा धर्म तो केवल 'छुओ मत' में है। मुझे 'मत छुओ', मुझे मत छुओ' हा भगवन्! जिस देश के बड़े-बड़े नेता गत दो हजार वर्ष से केवल यही विवाद करते आये हैं कि भोजन दाहिने हाथ से किया जाय या बाएँ हाथ से। पानी दाहिने हाथ से उठाकर पीएँ या बाएँ हाथ से। यदि ऐसे देश का विनाश न हो तो फिर और किसका हो। क्या हमारा धर्म चूल्हे, चौके, रसोई, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, व्रत, नियम, अनुष्ठान, देवी-देवता, पीर-पैगम्बर वगैरः मानने में ही है। मैं शिव-उपासक हूँ, मैं हनुमान, देवी, खुदा, निराकार ईश्वर वगैरः माननेवाला हूँ। इस प्रकार आपस में झगड़ा करते रहने तक ही धर्म सीमित रह गया है। क्या हमने इस धर्म के नाम पर बार-बार हर प्रकार के अत्याचार नहीं किए हैं ? इतिहास के पन्ने उलटने पर हम देखेंगे कि इस धर्म के नाम पर क्या-क्या नहीं हुआ ? हर प्रकार के क्रूर अत्याचार इस धर्म के नाम पर हुए जिनका नतीजा हमें आज तक भुगतना पड़ रहा है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि हम धर्म न मानें अपितु इसमें दोष हमारा ही है कि हमने धर्म के वास्तविक रूप को नहीं पहचाना और उसके अनुकूल आचरण नहीं किया। यदि हम उसके अनुकूल चलते तो यह सब न होता। धर्म जीवन का आधार-स्तम्भ है। हमने उसके व्यापक रूप को नहीं पहचाना। उसको छोटी-छोटी बातों में शरीक करने हमने उसके

रूप को विकृत कर दिया। 'अस्तु, आइये हम उसके व्यापक रूप को पहचानें। उसका अध्ययन करें। चाहे आप किसी भी धर्म को मानते हों आपका लक्ष्य एक ही होना चाहिए कि सामाजिक नियमों का पालन करते हुए मानवता की सच्ची सेवा तथा पूजा करना। धर्म हमें एकता सिखाता है न कि लड़-झगड़ कर फूट पैदा करना।

आज विदेशों में भी पृथक्-पृथक् धर्मावलम्बी हैं—यहूदी, पारसी, ईसाई, कैथोलिक, प्रोटेस्टैण्ट वगैरः। परन्तु वे भी एकमत नहीं हैं एक दूसरे से घृणा करते हैं। यहूदी धर्म ईसाई-धर्म को नहीं पचा सका। ईसाई धर्म पारसी धर्म को नहीं मिला सका और इसी प्रकार से वे आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। उनके धर्म की मान्यता के खिलाफ कोई आवाज उठाता है तो वे उस पर अनेक प्रकार के अत्याचार करके उसको दबाने की चेष्टा करते हैं। भारत में भी एक के बाद एक विभिन्न धर्म प्रचलित हुए और उन्होंने यहाँ के धर्म को दबाने की चेष्टा की। परन्तु वह शाश्वत धर्म अनेक प्रकार की टक्करों के बावजूद अपने अस्तित्व को कायम रखता हुआ उनको अपने अन्दर पचाता चला गया क्योंकि जितने भी धर्म आज प्रचलित हैं आप देखेंगे कि वे शाश्वत नहीं हैं। उनका जन्म कुछ समय का ही है। इसका समाधान आपको इस बात से हो जायगा कि इन धर्मों को प्रचलित करनेवाले पृथक्-पृथक् मनुष्य ही थे। जिनको चाहे आप प्रभु-पुत्र, खुदा का पैगम्बर या ईश्वर का अवतार कुछ भी मानें या कहें परन्तु इनको चलानेवाले मनुष्य ही थे न कि अनादि से चले आ रहे धर्म। तब फिर हम कहेंगे कि वह कौन सा धर्म है जो शाश्वत है, सृष्टि के आदि से चला आ रहा है तो हमें मानना होगा कि वह अपौरुषेय वेदों से प्राप्त वैदिक धर्म है जिसको

प्राचीन समय में आर्य धर्म भी कहते थे। वेद वह प्राचीन पुस्तक है जो देव-ऋषियों ने अपनी आत्मा को उस चैतन्य धर्मशक्ति—जो इस समग्र विश्व का संचालन कर रही है, धारण कर रही है उस परम आत्मा के साथ संयोग करके ज्ञान प्राप्त किया और इसकी रचना की। इसलिए वैदिक धर्म किसी मनुष्य का बनाया हुआ धर्म नहीं है। हमारे सनातनधर्मी भाई यदि ध्यान दें तो देखेंगे कि वे भी इसी धर्म को मानते हैं। केवल शब्दों के प्रयोग का फर्क है। सनातन का अर्थ है प्राचीन, और प्राचीन धर्म कौन-सा है वेदों का। तो फिर वैदिक धर्म ही तो सिद्ध हुआ। शब्दों के अलग-अलग प्रयोग से और उनके सही भावार्थ को न जानने से हम सोचते हैं कि हम अलग-अलग हैं। जैसे, एक कहता है मुझे अंगूर चाहिए, दूसरा कहता है नहीं मुझे तो 'द्राक्षा' चाहिए। तीसरा अंग्रेजी का जानकार कहता है मुझे तो Grapes (ग्रेप्स) चाहिए। परन्तु यदि वहाँ कोई इन सबकी भाषा जानने-वाला सज्जन होगा तो यही कहेगा कि आप तो केवल शब्द अलग-अलग बोल रहे हैं परन्तु आप सभी तो एक ही वस्तु की माँग कर रहे हैं। केवल आपका अपनी भाषा के अनुसार कहने का ढंग पृथक् है। इसी तरह जैसे विभिन्न नदियाँ अपने-अपने रास्तों से निकलकर आखिर समुद्र में जाकर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार ये सब समय-समय पर प्रचलित हुए धर्म एक ही हैं। सबका लक्ष्य एक ही है। वह यह कि हम शुभ कर्म करते हुए तथा सत्य का अनुसरण करते हुए परम लक्ष्य की तरफ बढ़ें। तब हम देखेंगे कि हमारा जो वह संकुचित दृष्टिकोण था जिसको अपनाकर हम एक दूसरे की आलोचना कर रहे थे उस भेद-भाव की दीवार टूट गई है। हमारा दृष्टिकोण व्यापक हो जायगा। आप ही बताइए कि क्या कोई धर्म यह कहेगा कि आप चोरी,

छल-कपट, बेईमानी, दुराचार, दुर्व्यवहार आदि करिए। कोई नहीं कहेगा, न मान्यता देगा, चाहे वह कोई भी धर्म हो। सब धर्म यही कहेंगे कि हम सब प्राणिमात्र की सेवा करें। समस्त विश्व का कल्याण करें। सब फलें-फूलें। न वहाँ काले-गोरे का भेद है। न वहाँ छोटे-बड़े का फर्क है। वहाँ सब एक समान हैं। हमें अपने धर्मों को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। जैनी को बौद्ध बनने की जरूरत नहीं। बौद्ध को किसी अन्य धर्म में जाने की आवश्यकता नहीं। हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम सब ऐसी धर्म-पद्धति से चलें जिसका अनुकरण करते हुए हम समन्वय और शान्ति, भाई-भाई को गले लगाना, झूठे दम्भ का त्याग, अन्धश्रद्धा से दूर व्यापक दृष्टिकोण, सहयोग, सत्याचरण, सहिष्णुता, शुद्धता, पवित्रता, दयाशीलता तथा सदाचार की ओर अग्रसर हों। तभी हम मूलमन्त्र, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को घर-घर में गुंजा सकेंगे।

ग्रामविकास

भारत ग्राम-प्रधान देश है। भारत की लगभग ८०% जन-संख्या गाँवों में निवास करती है। लगभग ५ लाख ५० हजार गाँव भारत में हैं। परन्तु भारत का ग्राम्य जीवन आर्थिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से बड़ा पिछड़ा हुआ है। हमारे ग्रामों में रोग, दरिद्रता तथा निरक्षरता जैसी बुराइयाँ फैली हुई हैं। एक लम्बे समय से चली आ रही गरीबी, बेकारी, अन्धश्रद्धा, रूढ़िवाद, संकीर्ण मनोभावना, अशिक्षा, गन्दगी आदि भारतीय ग्राम्य-जीवन में प्रवेश किये हुए हैं। हम देखते हैं कि गाँवों के लोग जीवन की नई धाराओं से परिचित नहीं हैं क्योंकि उनको ऐसा वातावरण ही नहीं मिलता कि वे इन सबको जान सकें। आज आप देखेंगे कि एक व्यक्ति या परिवार जो कुछ दिन पहले गाँव में रहता था और वह कहीं बाहर दूसरे प्रान्त के किसी शहर वगैरः में रोजगार के लिए चला जाता है और फिर कुछ दिन बाद गाँव में वापस आता है तो उसका तथा उन बच्चों का गाँव में रहने को दिल नहीं करता। वे चाहेंगे कि हम गाँव के बजाय पास के किसी शहर में चले जायँ। इसका क्या कारण है कि जो उनकी जन्मभूमि है जहाँ उनके कुटुम्ब के भाई, बहिन वगैरः सब हैं फिर भी उनका मन वहाँ नहीं लगता। इसका कारण यह है कि गाँवों का जीवनस्तर, रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा प्रायः बहुत पिछड़ा हुआ है। वहाँ न तो मनोरंजन के साधन, घूमने-फिरने के,

आने-जाने के साधन इत्यादि ऐसे हैं कि वह अपना समय व्यतीत कर सके। एक ग्रामनिवासी जो कि अपने व्यापार के कारण बम्बई आदि स्थानों पर रहता है उसे अपने गाँव में आते समय इतनी कठिनाई नहीं होती जितनी कि वहाँ ठहरने पर होती है।

इस प्रकार गाँव और शहरों में इतनी विभिन्नता होना हमारे सामूहिक जीवन-विकास की एक बड़ी बाधा है। ऐसा तो हो नहीं सकता कि सब लोग शहरों में आ जायँ। शहरों में अभी जन-संख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। बड़े-बड़े शहरों में रहने के लिए, कारोबार वगैरः के लिए कितनी तंग जगह मिलती है। आप किसी बड़े शहर में जाइए और कारोबार के लिए कोई जगह का इन्तजाम करिए। आप देखेंगे कि उस जगह का किराया तो अलग है। उसकी पगड़ी (सलामी) के लिए आपको रुपया अलग चुकाना पड़ेगा। कलकत्ता जैसे बड़े शहरों में प्रायः आपको सभी जगह लाइन लगी हुई मिलेगी। शौच, स्नान, बसें, ट्राम आदि सभी जगह आपको काफी भीड़ मिलेगी। इन सब कारणों को देखते हुए आज इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि गाँवों का सर्वांगीण विकास किया जाय। इसके साथ ही जब तक गाँव के लोगों में यह भावना न पैदा हो कि उनका जीवन-स्तर उन्नत हो। तब तक गाँव में कोई भी विकास-योजना सफल नहीं हो सकती। गाँव के लोगों में एक क्रान्ति लाई जाय और उनमें अपना जीवन-स्तर ऊँचा करने का उत्साह पैदा किया जाय।

आजादी से पहले गाँव की तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। उस समय श्री एफ. एल. बारेन ने इस दिशा में पंजाब में गाँव के नवनिर्माण का कुछ काम आरम्भ किया था

परन्तु कई कारणों से उसमें विशेष सफलता नहीं मिली। देश स्वतन्त्र होने के बाद सरकार का इस ओर ध्यान हुआ। सरकार ने योजनाओं के अधीन गाँव के विकास के लिए योजना बनाई। इन योजनाओं से कुछ विकास-कार्य हुआ। परन्तु हम इस विकास से यह सन्तोष नहीं कर सकते कि इन ५॥ लाख गाँवों के लिए विकास की यह गति पर्याप्त है। परन्तु कुछ न करने से थोड़ा होना भी अच्छा है। यह कार्य शुरू होने से हम अपने-अपने सुझाव सरकार तक भेज सकते हैं ताकि इन कार्यों को तेजी से बढ़ाया जाय। वास्तविक स्थिति यह है कि हमारे गाँव इतने अधिक पिछड़े हुए हैं कि इनके सर्वांगीण विकास के लिए बहुत बड़ी मात्रा में साधनों तथा लगातार प्रयत्नों की जरूरत है। अब तक इसके लिये जो प्रयत्न किये गए हैं वे तो केवल आरम्भ मात्र हैं। इसको हम सफलता-प्राप्ति नहीं कह सकते। लक्ष्य तक पहुँचने के लिये सरकार तथा जनता दोनों के अथक परिश्रम, त्यागभाव तथा सूझबूझ की आवश्यकता है। इसके साथ ही आज इस विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत जो आँकड़े पेश किये जाते हैं कि हमने इतनी सिंचाई के साधन किये, इतना उपज़ाऊ बीज तथा खाद का इन्तजाम किया। इतने स्कूल, तथा चिकित्सा-लय-केन्द्र खोले तथा इतनी नई सड़कें बनाई आदि। ये आँकड़े वैसे तो हमें बहुत प्रभावोत्पादक मालूम पड़ते हैं परन्तु जब हम इन आँकड़ों को उस क्षेत्र एवं जनसंख्या की दृष्टि से आँकते हैं तो हमें इनकी नगण्यता स्पष्ट दीखने लग जाती है। इसके लिए आवश्यकता है कि गाँवों के सामूहिक विकास के लिए ठोस कार्य जाय। इसके लिए निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना तथा क्रियान्वित करना आवश्यक है :—

(१) सिंचाई—गाँव का आर्थिक विकास किया जाय। इससे

लोगों की आय बढ़ेगी। आय बढ़ने से उनका रहन-सहन, खान-पान पहराव अच्छा होगा। उनका जीवन-स्तर उन्नत होगा। इसलिए आवश्यक है कि आज हमारे गाँव की आय का मुख्य साधन खेती है। खेती की उन्नति के लिए पर्याप्त सिंचाई के साधन हों। आज जो सिंचाई के साधन हैं ये अभी पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि हमारे यहाँ वर्षा बहुत कम होती है इसलिये खेती की पूरी उपज नहीं हो पाती।

(२) कुटीर तथा लघु उद्योग-धन्धे—गाँव के लोगों के पास खेती का जो कार्य है वह प्रायः साल में ५—६ महीने का होता है बाकी समय में वे लोग आम-तौर से बेकार रहते हैं। इसलिये आवश्यक है कि वहाँ कुटीर तथा उद्योग-धन्धों का विकास किया जाय। उनकी हमारे यहाँ अत्यन्त कमी है। इससे उन लोगों को काम मिलेगा तथा हमारी औसत आय में वृद्धि होगी।

(३) कृषि के आधुनिक तरीके—खेती के विकास के लिए उनको आधुनिक तरीके उर्वरक बीज, खाद, आधुनिक औजार, जहरीले कीटाणुनाशक औषधियों की जानकारी आदि से परिचित कराया जाय।

(४) पशुओं का विकास—खेती की तरह गाँव के लोगों के आर्थिक विकास में पशु-धन बहुत महत्वपूर्ण है। परन्तु आज गाँवों में पशुओं के रोगों की रोक-थाम तथा पशु-चिकित्सालय विभाग की बहुत कमी है। जब वहाँ पशुओं में बीमारी फैलती है तब पशुओं से गाँव के गाँव खाली हो जाते हैं और गाँव के लोग भाग्यवाद के भरोसे कोई ठोस कार्यवाही नहीं करते। इसलिये वहाँ पशुओं के लिए चिकित्सा वगैरः का पूरा प्रबन्ध हो।

(५) शिक्षा—आज गाँव में शिक्षा की अत्यन्त कमी है। अतः प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का प्रसार तथा सुधार और

धीरे-धीरे इसका बुनियादी शिक्षा में परिवर्तन तथा सामाजिक शिक्षा का प्रबन्ध हो। प्रौढ़ों की शिक्षा का भी प्रबन्ध आवश्यक है। साथ ही उसको साक्षर ज्ञान के लिये प्रोत्साहित भी किया जाय।

(६) स्वास्थ्य-सुधार— ग्रामीण जनता के लिए स्वास्थ्य केन्द्रों की व्यवस्था होनी चाहिए। स्वास्थ्य की दिशा में सुधार के लिये शुद्ध जल का प्रबन्ध, सफाई, साफ कपड़ा पहनना, पौष्टिक भोजन, मलेरिया, हैजा, चेचक, तपेदिक आदि महामारियों की रोक-थाम का प्रबन्ध करना तथा कुछ गाँवों के बीच एक जच्चागृह और प्रत्येक गाँव में एक चिकित्सालय हो।

(७) मनोरंजन—गाँव में मनोरंजन एवं व्यावहारिक शिक्षा के लिये फिल्मों, खेल-तमाशे, खेल-प्रतियोगिता आदि का आयोजन किया जाय तथा गाँव के प्रत्येक स्कूल के साथ एक वाचनालय हो जिसमें दैनिक अखबार और एक छोटी लायब्रेरी के साथ ही एक पार्क का प्रबन्ध हो जिससे गाँव का रहन-सहन आकर्षक तथा ज्ञान-वर्द्धक होगा।

वर्तमान व्यवस्था से आज वहाँ अध्यापक, वैद्य, डाक्टर वगैरः जाने की प्रायः इच्छा ही नहीं करते। इस प्रकार की व्यवस्था से वे भी वहाँ जाने के इच्छुक होंगे तथा वहाँ उनका समय शहर की भाँति आराम से गुजरेगा।

(८) सड़कों का विकास—यातायात की व्यवस्था के लिए सड़कों का विकास किया जाय। इससे गाँव और शहरों का ताल-मेल हो सकेगा। गाँव की बनी चीजें शहर की मण्डियों, बाजारों में जाने की सुविधा होगी तथा शहर की चीजें गाँव में आ सकेंगी।

(९) बिजली का साधन—आज के युग में कस्बों और

गाँवों में बिजली का न होना उनके पिछड़ेपन की एक खास निशानी है। आज प्रायः गाँव में बिजली की बहुत कमी है। बिजली के विकास से वहाँ के लोगों के समय की बचत होगी, शारीरिक परिश्रम कम होगा, खेती का उत्पादन बढ़ेगा तथा लघु और कुटीर-उद्योग विकसित होंगे।

(१०) ऋण-व्यवस्था—हमारे ग्रामीण किसान प्रायः निर्धन हैं। उनको समय-समय पर खेती के बैल, गाय, भेड़ें वगैरः ऋण रूप में लेनी पड़ती हैं। इसके लिए उनको अधिक ब्याज देना पड़ता है तथा ऋण भी कठिनाई से मिलता है। इसलिये ऐसी सरकारी व्यवस्था हो जिससे वे ऋण कम ब्याज में ले सकें। साथ में गृह-निर्माण के लिए भी ऋण मिलने की सुविधा हो।

(११) फिजूलखर्ची, सामाजिक कुप्रथा, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, भाग्यवाद आदि को दूर करने का प्रचार किया जाय तथा अन्य जो लड़ाई-झगड़े प्रायः होते रहते हैं उनसे बचाया जाय। उनकी शिक्षा-प्रणाली इस प्रकार की हो कि वे आदर्श नागरिक बन सकें। इस प्रकार से गाँव का विकास होने से ही भारत का सर्वांगीण विकास हो सकेगा।

———

आवागमन के साधन

प्राचीन समय में आवागमन के साधन बहुत सीमित थे। देश की जनसंख्या कम होने के कारण गाँव अथवा बड़े शहर काफी दूरी पर होते थे। लोग प्रायः पैदल ही एक गाँव से दूसरे गाँव तक आते जाते थे। कुछ लोग बैलगाड़ी अथवा ऊँट आदि को प्रयोग में लाते थे। यहाँ तक कि खेतों की फसल को भी सिर पर लेकर घर पर लाते थे। आधुनिक साधन रेल, मोटर आदि का प्रचलन बहुत कम था। लोगों को जब कभी एक गाँव से किसी दूसरे गाँव, शहर या मण्डी में फसल का सामान लेकर बैलगाड़ी आदि के द्वारा जाना पड़ता था तब कुछ दिन पहले जिस दिशा में जाना होता था उस दिशा के सब व्यक्ति मिलकर एक दिन नियुक्त कर लेते थे कि इस दिन या तारीख को इस दिशा में चलना है। क्योंकि इस प्रकार समूह में चलने से उन लोगों को काफी सुविधा तथा फायदे थे। गाँवों से काफी दूरी पर होने के कारण रास्ते में डाकू-चोर आदि उनका माल लूट लेते थे। अतः वे समूह के रूप में चलते थे। आज उसी परिपाटी के अनुसार हम धार्मिक अन्ध श्रद्धा से ऐसा विश्वास करने लग गये हैं कि इस दिशा में इस दिन चलना शुभ है और इस दिन अशुभ है। ऐसी हमारी भ्रामक धारणा बन गई है। ज्यों-ज्यों सभ्यता तथा साधनों का विकास हुआ है। यातायात के साधन सुधरते चले गए हैं। आजादी से पहले

अंग्रेजों के राज्य में भी यातायात के साधनों का विकास नहीं हुआ। जो रेलें आदि चालू हुईं वे भी उनके अपने व्यापारिक स्वार्थ के कारण चालू की गईं। आजादी के बाद हमारी सरकार ने इसकी तरफ ध्यान दिया परन्तु इसमें अभी बहुत कमी है।

यातायात प्रणाली में वे सभी साधन आते हैं जो व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने व ले जाने में सहायता देते हैं। ये साधन कई प्रकार के हो सकते हैं :—

(१) भूमि यातायात (२) जल यातायात (३) वायु यातायात।

भूमि यातायात को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) रेल-मार्ग (२) सड़क-मार्ग।

जल यातायात—पानी के जहाज तथा नौकाएँ आदि।

वायु यातायात—वायुयान आदि।

वर्तमान युग में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रशासकीय अथवा युद्ध-संबंधी किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाय, यातायात के समुन्नत व विकसित साधनों की बहुत आवश्यकता है। संसार के उन्नत देशों में आज यातायात प्रणाली ने इतनी उन्नति की है जो पहले कभी नहीं हुई। आप उन्नत देशों योरुप तथा एशिया के देशों में जाइए तो आप देखेंगे कि वहाँ सड़कों तथा रेलों का जाल बिछा हुआ है जिसके अन्तर्गत देश के विभिन्न भाग (राज्य, नगर व ग्राम) में व्यक्तियों तथा वस्तुओं को कम खर्चे पर और कम समय में ला और ले जा सकते हैं। आज देश का नवनिर्माण होने जा रहा है। इस नवनिर्माण में हम बड़े तथा छोटे पैमाने के उद्योग स्थापित कर रहे हैं। इसलिए इनमें रेल तथा जल यातायात की पर्याप्त सुविधाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे कच्चा माल दूर-दूर से आ सकता है तथा

बना हुआ माल दूर-दूर तक जा सकता है। इन कारणों से उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। यातायात के साधनों से देश में उत्पादन के क्षेत्र को भी बढ़ावा मिलता है। रेल के इंजन व डिब्बे, बसें, स्कूटर, कारें, पानी के जहाज, हवाई जहाज, नौकाएँ तथा साइकिल आदि बड़े तथा छोटे पैमाने के उद्योगों से श्रमिकों को रोजगार मिलता है।

इसके साथ ही हमारी कृषि में भी यातायात के साधनों से बहुत लाभ होता है। ये कृषि-जन्य खाद आदि किसान के खेत तक आसानी से पहुँचा देते हैं तथा खेती का सामान फसल आदि कम खर्च पर शीघ्र ही मण्डियों में ले जाते हैं। साथ ही इनके द्वारा फल, सब्जियाँ आदि भी कम खर्च पर दूर-दूर तक पहुँचा देते हैं जिससे वे खराब नहीं होने पातीं। इन साधनों के बगैर कई बार ऐसा भी हुआ है कि किसी प्रान्त में दुर्भिक्ष पड़ गया है और दूसरी जगह अन्न है परन्तु यातायात ठीक न होने तथा समय पर न पहुँचने से मनुष्य तथा पशु मर जाते हैं। यदि देश में यातायात के साधन विकसित हों तो बाजार में वस्तुओं का आना-जाना बराबर बना रहता है। क्योंकि माल दूर-दूर के स्थानों (विदेशों) से भी मँगाया जा सकता है। जैसे—आजकल हमारे यहाँ अमेरिका से गेहूँ आ रहा है। इससे बाजार में वस्तुओं की कीमतें भी ठीक रहती हैं। जैसे एक जगह भाव तेज है तो शीघ्र ही दूसरी जगह से माल लाकर दिया जाय। यातायात के विकसित साधन होने पर भारत जैसे विभिन्न वर्गों के लोग, जिनकी बोली भाषा खान-पान, रहन-सहन भिन्न-भिन्न प्रकार की है, आपस में एक दूसरे के सम्पर्क में आने से विचारों का आदान-प्रदान होता है तथा राष्ट्रीय एकता की भावना पुष्ट होती है। इन साधनों के द्वारा हम विदेशों से भी हर प्रकार का तालमेल बढ़ा

सकते हैं। आज हमें उच्च शिक्षा के लिए व्यापार तथा राष्ट्र के कार्यों आदि के लिए विदेशों में आना-जाना पड़ता है यह सब यातायात के विकसित साधनों के ही कारण होता है। इन विकसित साधनों से देश की रक्षा का उत्तम प्रबन्ध करने में सहायता भी मिलती है। युद्ध-काल में सेना तथा युद्ध सम्बन्धी सामान शीघ्रता से युद्धस्थलों व दूसरे सामरिक महत्त्ववाले स्थानों पर पहुँचाया जा सकता है। इसके साथ ही यदि देश के किसी भाग में अग्नि वगैरः आकस्मिक काण्ड हो जाय तो शीघ्र दमकल आदि भेजा जा सकता है। देश के किसी भाग में यदि विद्रोह या गड़बड़ी होती है तो पुलिस या सेना आदि को शीघ्रता से वहाँ भेजकर उसको शान्त किया जा सकता है। इसलिए आज के इस युग में यातायात के साधनों की कमी रहना हमारे विकास में एक बड़ी बाधा है। इसके समुन्नत विकास के लिए निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं :—

(१) किसी राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति बहुत कुछ उसकी सड़कों पर निर्भर होती है। हमारे यहाँ सड़कों का पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। भारत के विशाल क्षेत्रफल (१२,२१,६४० वर्गमील) बहुत बड़ी जनसंख्या (लगभग ५० करोड़ अब तक) और ५.५ लाख से भी अधिक गाँवों को देखते हुए, सड़कों का विकास अपर्याप्त है। भारत छोटे-छोटे गाँवों का देश है। इन सबका आपस में तथा नगरों व मण्डियों से संबंध स्थापित करने के लिए रेलें नहीं बनाई जा सकतीं। इन्हें केवल छोटी-छोटी सड़कों द्वारा ही जोड़ा जा सकता है। सड़कों के बनने से गाँवों का हर दिशा में नगरों से संबंध स्थापित हो जाता है। इससे गाँववाले नगरों की बनी हुई बहुत-सी चीजें काम में लाने लग जाते हैं और नगरों में गाँव की बनी कृषि-संबंधी अथवा दूसरी

चीजें आसानी से वहाँ भेजी जा सकती हैं। इन सबसे उनका रहन-सहन का स्तर ऊँचा होता है। उनकी संकीर्णता, अज्ञानता तथा रूढ़िवादिता आदि दोष कम होते हैं। इसलिए गाँवों के सर्वांगीण विकास के लिए सड़कें बहुत आवश्यक हैं। भारत में अभी तक बहुत से ऐसे गाँव हैं जिनका किसी नगर, मण्डी या रेलवे स्टेशन से किसी सड़क के द्वारा संबंध नहीं है। इसलिए देश की सुरक्षा, सफल-प्रशासन, राष्ट्रीयएकता तथा डाक व तार आदि की सुविधाओं की दृष्टि से भी सड़क यातायात का विकास होना बड़ा आवश्यक है।

(२) देहातों की सड़कों की हालत बहुत खराब है। मुख्य सड़कों की दशा तो जरूर काम चलाने योग्य है। कुछ सड़कें कच्ची हैं जो केवल अच्छे मौसम में काम देती हैं। वर्षा के आरंभ होते ही वे कीचड़ होने से बेकार हो जाती हैं। इससे बहुत दिक्कत होती है। इसलिए आवश्यक है कि सड़कें पक्की बनाई जायँ और पुरानी सड़कों की दशा सुधारी जाय।

(३) सड़कों पर स्थायी पुलों की भी कमी है जो कि यातायात में बाधक हैं। इसलिए स्थायी पुल बनाए जायँ।

(४) भारत में बैलगाड़ी सड़क यातायात का बहुत महत्वपूर्ण साधन रही है। ग्रामीणों के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अब भी भारत में लगभग १० लाख बैलगाड़ियाँ हैं। जिनमें काफ़ी पूँजी लगी हुई है। इनमें काफी व्यक्ति तथा पशु (बैल) आदि काम कर रहे हैं। ये बैलगाड़ियाँ काफी संख्या में माल ढोती हैं। इसलिए इनमें भी यथासंभव सुधार की आवश्यकता है। क्योंकि मोटर ठेलों का साधन होने पर भी इनका माल ढोने में अब और भविष्य में भी महत्वपूर्ण स्थान रहेगा। इसलिए इनके सुधार के लिए लोहा चढ़े लकड़ी के पहिए के

स्थान पर रबड़ के टायर पहिए का प्रयोग करना, गाड़ियों में स्प्रिंग लगाना आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे ये सुगमतापूर्वक अधिक माल ढो सकेंगी।

(५) रेलों की तरह मोटर बसों का राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिए। क्योंकि इनमें काफी पूँजी की आवश्यकता है। हर जगह बस-अड्डा बनाना आवश्यक है। इसके साथ जो पुरानी मोटरें चालू हैं उन्हें भी प्राइवेट कम्पनियाँ चलाती हैं। इसलिए कम्पनियाँ हर स्थान पर आधुनिक ढंग से अड्डा वग़ैरः नहीं बना सकतीं। अतएव ये सब विकास राष्ट्रीयकरण से हो सकेंगे। साथ ही सरकार को अधिक आय भी होगी। इसके लिए कानून बनाये जायँ कि कोई चालक (ड्राइवर) या कण्डक्टर (सहायक) कोई नशीली वस्तु का सेवन कर गाड़ी न चलाये। क्योंकि उसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम है। साथ ही वे प्रशिक्षित (ट्रेण्ड) हों। सरकारी बसों के चलने तथा पहुँचने का समय निश्चित होता है। इससे यात्रियों के समय की बचत होती है। निजी बसों में समय-सूची का इतना कड़ा पालन नहीं होता। साथ ही सरकारी बसों में किराए निश्चित होते हैं। परन्तु निजी बस मालिक समय व परिस्थिति के अनुसार किराए में हेरफेर भी कर देते हैं। सरकारी रोडवेज के अधीन यात्रियों की हर सुविधा का ध्यान रखा जाता है। जैसे बसों की अच्छी दशा, अच्छी आरामदायक सीटें, बस अड्डों पर प्रतीक्षालयों, टिकटघरों, भोजनालयों, शौचालयों, पीने का पानी आदि सुविधाओं का प्रबन्ध होता है। निजी रोडवेजों में इन सुविधाओं का इतना अच्छा प्रबन्ध नहीं होता।

(६) सरकारी मोटर कर्मचारियों को भी कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। उन्हें उचित और निश्चित वेतन मिलता है। नियमा-

नुसार उन्नति मिलती रहती है। बाद में पेंशन आदि का भी लाभ प्राप्त होता है। निजी मोटर मालिकों के अधीन कर्मचारियों को ये लाभ उपलब्ध नहीं होते।

(७) सड़क यातायात के राष्ट्रीयकरण से रेल-सड़क-स्पर्धा समाप्त हो जाती है तथा निजी मोटरमालिकों की तुलना में सरकार के वित्तीय साधन बड़े होते हैं। इसलिए आधुनिक ढंग की नई मोटरें खरीदना तथा सफाई आदि के कार्य अच्छे रहते हैं।

(८) सरकार का उद्देश्य केवल लाभ कमाना ही नहीं अपितु जनता की सेवा करना भी होता है। इससे वे ऐसी जगह भी बस चलायेंगे जहाँ से आय कम होगी। निजी मोटर मालिक वहीं बसें ज्यादा चलाते हैं जहाँ आमदनी अधिक होती है। इस प्रकार से राज्य सरकार को चाहिए कि वह मोटर-बस यातायात का राष्ट्रीयकरण करे।

रेल यातायात :

सड़क यातायात की तरह रेलें भी भारत में यातायात का प्रमुख साधन हैं वे यहाँ का लगभग ८०% माल और ७०% यात्री यातायात करती हैं। रेलों ने आन्तरिक और विदेशी दोनों प्रकार के व्यापार के परिमाण में वृद्धि की है। रेलें बनने से पूर्व यदि देश के किसी भाग में दुर्भिक्ष पड़ता था तो वहाँ काफी मनुष्य और पशु खाद्यान्न की कमी के कारण मर जाते थे। परन्तु रेलों के बाद यदि कहीं अकाल पड़ गया तो खाद्यान्न एक जगह से दूसरी जगह बहुत शीघ्र और आसानी से भेजा जा सकता है। इसके साथ ही रेलों ने आधुनिक उद्योगों की स्थापना में बहुत योग दिया है। रेलें कम भाड़े में शीघ्रता के साथ कोयला, मशीनें और कच्चा माल औद्योगिक केन्द्रों तक ले जाती हैं और

वहाँ से बना पक्का माल देश के विभिन्न भागों में वितरित कर देती हैं। सरकार को रेलों से बहुत बड़ी आय होती है। कितने ही लोगों को रोजगार मिला हुआ है। रेलों ने कृषि के काम में बहुत ही महत्वपूर्ण योग दिया है। कृषि से जो चीजें पैदा होती हैं उनको मण्डियों आदि में भेजना तथा किसान लोग जो फल, सब्जी आदि पैदा करते हैं, जो कि शीघ्र खराब होनेवाली होती हैं, उन्हें अब रेलों द्वारा आसानी से ले जाया जा सकता है।

रेलों से सामाजिक और राजनीतिक दोनों सुधार हुए हैं तथा देश की सुरक्षा में इसका विशेष महत्व है। परन्तु आजकल रेलों की दुर्घटनाएँ बहुत बढ़ गई हैं। अतः आवश्यकता है कि पुराने पुलों का पुनरुद्धार किया जाय, नये पुल बनवाए जायँ, सिगनल तथा सुरक्षा-साधनों का कड़ाई से पालन किया जाय। रेल-कर्मचारियों को सचेत किया जाय। तोड़-फोड़ करनेवालों के विरुद्ध सख्त से सख्त कार्रवाई की जाय। साथ ही तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए सुविधाओं को बढ़ाया जाय। लम्बी सफर के यात्रियों के लिए रेल के साथ भोजन आदि का विशेष प्रबन्ध हो। इस प्रकार से रेलों के विकास के लिए पूर्ण प्रयास किये जायँ।

जल यातायात :

जल यातायात परिवहन का बहुत पुराना और सस्ता साधन है। इसके मार्ग प्राकृतिक होते हैं और उनके बनाने में कोई खर्च नहीं होता। एक जलयान एक ही बार में बड़ी मात्रा में सामान ले जा सकता है। देश की सुरक्षा के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। जल यातायात को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

(१) आन्तरिक जलयातायात (२) समुद्री जलयातायात

आन्तरिक जलयातायात नदियाँ और नहरों से होता है।

दूसरे विश्वयुद्धकाल में इसकी ओर ध्यान दिया गया था। १९४५ में एक केन्द्रीय आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने देश में वर्तमान जलमार्गों को सुधारने, साफ करने, नये जलमार्गों के निर्माण तथा नदियों के जल के बहुमुखी प्रयोग की व्यवस्था आदि का कार्य किया। परन्तु भारत में आन्तरिक जलयातायात बहुत पिछड़ी दशा में है इसमें पर्याप्त सुधार होना चाहिए।

समुद्री यातायात—

भारत एक उपमहाद्वीप है। इसके तीन ओर समुद्र है यह पूर्वी गोलार्द्ध के केन्द्र में स्थित है। यहाँ से पूर्व और पश्चिम दोनों ओर के देशों को समुद्री-मार्ग जाते हैं और भारत का इन सब देशों से व्यापार-सम्बन्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भारत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। युद्ध काल में यह जलसेना और स्थलसेना के लिए आवश्यक वस्तुओं का यातायात करता है। १९४५ में जहाजरानी-समिति की नियुक्ति की गई। जहाज रानी-समिति ने सुझाव दिया कि जहाज-निर्माण-उद्योग का विकास किया जाय। सरकार ने इस सुझाव को माना है। इसके लिए एक कारखाना (जहाज-निर्माण) विशाखापत्तनम (आन्ध्रप्रदेश) में खोला गया है। इस प्रकार जहाजरानी ने काफी विकास किया। परन्तु देश की बढ़ती हुई जनसंख्या तथा व्यापार की दृष्टि से आवश्यकता है कि इसका अधिक से अधिक विकास किया जाय। इसके साथ ही बन्दरगाहों का भी विकास किया जाय। समुद्री रास्ते से जो माल आता है उसका प्रबन्ध इस प्रकार किया जाय कि उससे आज जो (Smugling) माल चोरी होती है, जिससे हमें काफी विदेशी मुद्रा की हानि उठानी पड़ती है, वह दूर हो।

वायु यातायात—

वायु यातायात परिवहन का सबसे आधुनिक रूप है वायु यातायात ने आज विश्व को बड़ा छोटा कर दिया है। प्राचीन समय में भी वायुयान प्रचलित थे, परन्तु वे राजों-महाराजों तक ही सीमित थे। आज की तरह आम लोगों के काम में नहीं आते थे। कहते हैं कि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम ने समय पर अयोध्या पहुँचने के लिए चिन्ता प्रकट की तब विभीषण ने कहा कि महाराज हमारा पुष्पक विमान आपको ठीक समय पर अयोध्या पहुँचा देगा। इसका यात्रापथ आकाशमार्ग होने के कारण पहाड़, दुर्गम बन, नदियाँ, समुद्र तथा रेगिस्तान आदि कोई बाधक नहीं। वायुयान का ही दूसरा रूप राकेट आज कितनी द्रुत गति से चलता है। आवाज की भी गति से तेज चलनेवाले ये साधन वास्तव में बहुत प्रगति कर गये हैं। अभी राकेट प्रत्येक व्यक्ति की सवारी का साधन नहीं। क्योंकि इसकी गति करीब बीस हजार मील प्रति घण्टा रफ्तार की है। इसलिये इसमें ट्रेनिंग प्राप्त (प्रशिक्षित) व्यक्ति ही जा सकते हैं। परन्तु कितना आश्चर्य है कि एक व्यक्ति भारत से चले और मास्को आध घण्टे में पहुँच कर वापस आ जाय। इसी प्रकार आज वायुयान भी दिन प्रतिदिन बड़ी उन्नति करते जा रहे हैं। आज के युग में हर देश के लिए हर दिशा में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

वायुयानों से फसलों की रक्षा की जाती है। जब कि विनाशकारी कीड़े-मकोड़े हो जाते हैं। तब इनके द्वारा दवाई छिड़क दी जाती है। भूचाल और बाढ़ में इनके द्वारा तुरन्त ही खाने और पहनने का सामान पहुँचाया जाता है। संकट के समय लोगों को वहाँ से निकाला जा सकता है। घायल तथा बीमार व्यक्तियों को तुरन्त डाक्टरी सहायता पहुँचाई जा सकती है। पत्र डाक के

द्वारा दूर-दूर स्थानों पर शीघ्र भेज दिए जाते हैं। युद्ध और देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी यह आवश्यक है। सेना को तुरन्त युद्ध-स्थल पर आवश्यक गोला-बारूद के साथ भेजा जा सकता है। व्यापार की दृष्टि से भी यह बहुत लाभदायक है। इससे व्यापारी लोग बहुत जल्दी एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा सकते हैं। इससे उनके समय की काफी बचत होती है। इसलिए आज के युग के लिए वायुयान का विकास बहुत आवश्यक है। वायुयान यातायात में निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं।

(१) आये दिन होनेवाली वायुयान दुर्घटनाएँ बहुत ही हानिकारक हैं। इन दुर्घटनाओं में हमें जन-धन की बहुत हानि होती है कई बार तो हम ऐसे मनुष्यों को खो बैठते हैं जो विद्वान्, समाज-हितैषी, वैज्ञानिक, इंजीनियर तथा जनरल आदि होते हैं जिसकी पूर्त्ति बहुत मुश्किल होती है। आर्थिक दृष्टि से ये स्वयं ही बहुत कीमती होते हैं। इसलिए ऐसा प्रयत्न किया जाय कि ये, दुर्घटनाएँ न हों।

(२) नये हवाई अड्डों और ग्लाइडर अड्डों का निर्माण तथा पुराने अड्डों का सुधार और इन पर सेवाओं तथा विभिन्न सुविधाओं का प्रसार होना चाहिए। नये विमान भी खरीदे जाने चाहिए।

(३) नई विमान-सेवाओं का विस्तार हो, क्योंकि आज जनसंख्या की अधिकता के कारण इनका ज्यादा रूप में चालू होना भी आवश्यक है खर्च भी कम होना चाहिए। इस प्रकार समय के साथ-साथ दिन-प्रति-दिन विकास होना आवश्यक है।

मोटर ठेलों से माल का यातायात—

रेल तथा बैलगाड़ी की तरह मोटरठेला भी माल लाने तथा ले जाने का एक अच्छा साधन है। मोटर-ठेलो के प्रचलन से

बैलगाड़ी बहुत पीछे रह गई है तथा कम भी हो गई है। प्राचीन समय में बैलगाड़ी का बहुत प्रचलन था परन्तु अब यह दिन-प्रति-दिन कम हो रही है। क्योंकि मोटरठेलों में बैलगाड़ी की अपेक्षा बहुत ज्यादा माल आता है और बहुत कम समय में, कम खर्च पर लाया जा सकता है। मोटरठेलों के प्रचलन से व्यापार में भी काफी वृद्धि हुई है क्योंकि व्यापारी लोग एक जगह से दूसरी जगह मण्डियों में शीघ्रता से माल ला तथा ले जा सकते हैं। इस प्रकार से मोटरठेलों का प्रचलन दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है।

मोटरठेलों के अन्दर निम्नलिखित परिवर्तन किये जायँ—

(१) मोटरठेलों का राष्ट्रीयकरण किया जाय। ये अपने-अपने राज्यों के अधीन हों। इससे आज जो माल चोरी के रूप में इधर-उधर निकास कर दिया जाता है वह रुकेगा। क्योंकि आज जो मोटरठेले हैं वे सब प्राइवेट हैं और वे कुछ कीमत अधिक लेकर माल को इधर-उधर मिल-जुल कर निकाल देते हैं। सरकारी होने से ऐसा नहीं हो सकेगा। इसके साथ ही आज जो प्राइवेट कम्पनियाँ हैं उनके रेट (भाव) भी ऊँचे हैं तथा निर्धारित नहीं हैं। सरकार के अधीन होने से रेट (भाव) उचित तथा कम होंगे।

(२) ड्राइवर प्रशिक्षित हों और कोई भी नशीली वस्तु पीकर ठेला न चलावे। ड्राइवर जब लिए जायँ तब यह शर्त हो कि वह कोई नशीली चीज सेवन करनेवाला न हो।

(३) बसों की तरह इनके भी अड्डे बने हुए हों तथा माल को सही रूप में पहुँचाना और समय पर पहुँचाना आवश्यक हो।

इस प्रकार मोटरठेले जो कि आधुनिक युग के माल यातायात के एक प्रमुख साधन हैं दिन-प्रति-दिन विकसित होता जायगा तथा इससे सरकार को काफी आय होगी।

जल-साधन

जल भी एक प्राकृतिक साधन है। देश के आर्थिक विकास के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है। जल के द्वारा खेती की पैदावार काफी बढ़ाई जा सकती है तथा आवागमन के लिए भी यह एक साधन है। आजादी से पहले भारत में जल-साधनों के प्रयोग के लिए कोई कार्यक्रम नहीं बनाया गया जिससे सिंचाई वगैरः करके हम अपनी खेती को उन्नत कर सकें। आजादी के पश्चात् हमारी सरकार ने इस ओर ध्यान दिया। परन्तु आज भी हम जलसाधनों का पूर्णरूप से प्रयोग नहीं कर पाये हैं। जिसके कारण हमें आज भी विदेशों से खाद्यान्न का आयात करना पड़ रहा है। जल-साधनों को ४ भागों में बाँट सकते हैं—

(१) समुद्र, नदियाँ, भूमिगत जल और वर्षा का जल।

समुद्र—समुद्र किसी एक देश की सम्पत्ति नहीं होती। केवल तट के समीप के समुद्र पर ही अलग-अलग देशों का अधिकार होता है। चूँकि एक ही समुद्र कई देशों की भूमि से सम्बन्धित होता है। समुद्र में पाई जानेवाली वस्तुओं से काफी आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं। ये बहुत कीमती होते हैं जैसे हीरा, पन्ना, सीप, मोती आदि। प्राचीन काल में भी तथा आज भी समुद्र-परिवहन का बड़ा साधन रहा है। यह साधन बड़ा सस्ता है क्योंकि इसके मार्ग प्राकृतिक होते हैं। अन्य साधनों की तरह इनके बनाने में खर्च की आवश्यकता नहीं होती। समुद्र में 'तटीय

जहाजरानी' की जाती है। समुद्र में से मछलियाँ पकड़ी जाती हैं और अनेक प्रकार के पदार्थ निकाले जाते हैं।

समुद्र के खारे पानी को सुखा कर नमक बनाया जाता है जो हमारे दैनिक प्रयोग की चीज है। भारत का ७०% नमक इसीसे प्राप्त होता है। भारत में समुद्र तटीय राज्यों अर्थात् महाराष्ट्र, केरल, मद्रास, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा और बंगाल में समुद्र के पानी को सुखाकर नमक बनाया जाता है। समुद्र तट पर बने बन्दरगाह वाणिज्य व व्यापार के महत्वपूर्ण केन्द्र होते हैं। आजकल समुद्री यातायात विभिन्न देशों के बीच व्यापार और आवागमन के अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन हैं। इस मार्ग से देश का काफी माल आयात या निर्यात होता है। इसके अतिरिक्त समुद्र में कितनी ही ऐसी वस्तुएँ हैं जिनको हम अभी खोज नहीं सके हैं।

भूमिगतजल—

यह जल भूमि के नीचे होता है। कहीं इसकी गहराई कम कहीं ज्यादा होती है। प्रायः गाँवों में पीने का पानी हमें कुँओं के जरिये ही प्राप्त होता है। भूमि के नीचे का जल कुँओं और नलकूपों के द्वारा हमारे प्रयोग में आता है। कुएँ भारत में सिंचाई के देशी व प्राचीन साधन हैं। भारत कृषि-प्रधान देश है वर्षा का वितरण स्थान और समय दोनों के अनुसार दोषपूर्ण, असमान और अनिश्चित होता है। देश के अधिकांश भागों में यह निश्चित नहीं है कि किसी वर्ष वर्षा कितनी मात्रा में होगी—यह कम भी हो सकती है और अधिक भी। इसलिए हमारे यहाँ कृषि के लिए कुएँ बड़े उपयोगी हैं। भारत जैसे देश में किसान गरीब हैं। खेती की सिंचाई के लिए कुँआ एक उत्तम साधन है।

यह बड़ा सुविधाजनक होता है और आवश्यकता के अनुसार किसी समय भी खेत में पानी दिया जा सकता है। कुएँ के पानी में बहुत से ऐसे रासायनिक पदार्थ घुले रहते हैं जो भूमि को उपजाऊ बनाते हैं। कुँओं के द्वारा हमारे यहाँ कई प्रान्तों में सिंचाई होती है; जैसे—उत्तर प्रदेश, पंजाब, मद्रास, राजस्थान, बिहार, आन्ध्रप्रदेश वगैरः में। नलकूप भी सिंचाई का एक उत्तम साधन है। ये कुएँ बिजली की सहायता से चलाये जाते हैं। परन्तु इनके लिए पर्याप्त मात्रा में भूमिगत जल की आवश्यकता होती है तथा यह एक बार काफी खर्चीला होता है परन्तु बाद में इनकी देख-रेख और प्रबन्ध ठीक रखने से इनकी सिंचाई कुँओं से अधिक अच्छी रहती है। हमारी योजनाओं के अधीन भी नलकूप लगाये जा रहे हैं। उत्तर-प्रदेश में बहुत नलकूप हैं। बड़े पैमाने में खेती के लिए नलकूप बहुत आवश्यक हैं।

वर्षा का जल—

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में वर्षा का जल बहुत महत्त्व रखता है। प्राचीन काल में जल-सिंचाई के साधन नहीं थे। हम प्रायः वर्षा के जल पर ही निर्वाह करते थे। ठीक समय पर उचित मात्रा में वर्षा होने से खेती की पैदावार पूरे रूप में होती है जिससे हर वर्ग में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। देश की कृषि से उद्योग-धन्धे, व्यापार व सरकार की आय आदि सम्बन्धित होने के कारण वर्षा से ये सब भी प्रभावित होते हैं। वर्षा हमारे यहाँ वर्ष भर लगातार नहीं होती। अधिक वर्षा वर्ष के तीन महीनों जुलाई से सितम्बर तक होती है और कुछ वर्षा जाड़ों में भी होती है।

भारत की औसत वार्षिक वर्षा ४२ इंच है। परन्तु विभिन्न भागों में इसकी मात्रा में बड़ी विभिन्नता पाई जाती है।

उदाहरणार्थ आसाम में चेरापूँजी स्थान पर संसार भर में सबसे अधिक वर्षा होती है। इसके विपरीत राजस्थान में बहुत कम। इस प्रकार से वर्षा होने में बहुत विभिन्नता है। वर्षा का जल प्रत्यक्ष रूप से भूमि की सिंचाई करता है। इस जल को तालाबों में एकत्र करके भी सिंचाई के काम में लाया जाता है।

नदियाँ—

भारत के अन्दर नदियाँ काफी हैं। देश के लगभग सभी भागों में वर्षभर लगातार बहनेवाली नदियाँ हैं। अनुमान है कि इन नदियों का कुल वार्षिक (१ एकड़ फुट पानी १ = एकड़ भूमि के क्षेत्र में एक फुट गहरा पानी) प्रवाह लगभग १३५.६ करोड़ एकड़ फुट है। इसमें से अनुमानतः केवल ४५ करोड़ एकड़ फुट पानी सिंचाई के लिए प्रयोग किया जा सकता है परन्तु अभी तक इसका बहुत कम प्रयोग किया जा रहा है। नदियों के जल को नियन्त्रित करके हम उनसे कई कार्य कर सकते हैं; जैसे—नदियों के पानी को ऊँचाई से गिराकर बिजली पैदा करना। नदियों पर बाँध बनाकर सिंचाई के लिए नहरें निकालना, बाँधों की सहायता से बाढ़ों के जल को एकत्रित कर बाढ़ों को नियन्त्रित करना, आदि। इस प्रकार नहरों से सिंचाई के साधन होने पर कृषि बहुत उन्नत होगी। लोग खुशहाल होंगे। उनका आर्थिक स्तर ऊँचा होगा।

हमारे यहाँ प्रचुर मात्रा में खेती होने पर भी किसान इतना गरीब क्यों हो रहा है। इसका कारण अकाल पर अकाल पड़ना, फसलें पूर्ण रूप से न होना है। नहरों की सिंचाई से प्रतिवर्ष दो-तीन फसलें हो सकेंगी, इससे प्रति एकड़ उपज बढ़ेगी। आज जो हमें विदेशों से खाद्यान्न आयात करना पड़ रहा है; इसकी कमी पूरी होगी, साथ ही जल-विद्युत् के विकास से

देश हर दिशा में तेजी से बढ़ेगा। आज हमारे बहुत से कार्यों, जैसे—उद्योग-धन्धों यातायात तथा संवाद-वहन के साधनों के विकास को प्रोत्साहन मिलेगा। गाँवों में बिजली जाकर वहाँ की कायापलट ही कर देगी। इसके अतिरिक्त बाढ़ों का नियन्त्रण-कार्य भी बहुत लाभदायक है। प्रतिवर्ष बाढ़ें देश में करोड़ों रुपये की हानि करती हैं। इनसे गाँव के गाँव बह जाते हैं और खेती बर्बाद हो जाती है। बड़ी संख्या में लोग बे-घर हो जाते हैं। सरकार को बाढ़-पीड़ितों के लिए लाखों रुपए की सहायता देनी पड़ती है। यातायात के साधन नष्ट हो जाते हैं। बाढ़ों के नियन्त्रण से देश को काफी लाभ होगा तथा वह जल-बाँधों की सहायता से जल को एकत्रित कर सिंचाई के प्रयोग में लाया जा सकता है। इसलिये देश के आर्थिक विकास के लिये जल साधनों की पर्याप्त मात्रा में उचित प्रयोग अत्यावश्यक है। नदियों के जरिए हमारी योजनाओं के अधीन निम्नलिखित नदी-घाटी योजनाएँ चालू की गई हैं :—

(१) भाखड़ानांगल योजना—यह योजना भारत की सबसे बड़ी योजना है। इस योजना पर लगभग १७०० करोड़ रुपया खर्च किया गया है। इस योजना से पञ्जाब हरियाना तथा राजस्थान को मिलाकर लगभग ३६ लाख एकड़ भूमि को पहले से अधिक पानी मिलने लगेगा। इस योजना से करीब कुल ६.०४ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न की जा सकेगी।

(२) दामोदर घाटी योजना—इस योजना से आनेवाली बाढ़ों का प्रभावपूर्ण नियन्त्रण किया जा सकेगा। इस कार्य हेतु इस नदी पर चार बाँध बनाये गये हैं। बोकारो, दुर्गापुर और चन्द्रपुर में तीन थर्मलपावर स्टेशन बनाये गये हैं। इस योजना से लाखों एकड़ भूमि की सिन्चाई भी हो सकेगी।

(३) महानदी घाटी योजना—इस योजना में महानदी घाटी का बहुमुखी विकास किया जायगा। सम्पूर्ण योजना से २५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई तथा ५ लाख किलोवाट बिजली पैदा होने का अनुमान है।

(४) तुङ्गभद्रा योजना—इस योजना से आन्ध्र प्रदेश और मैसूर को लाभ पहुँचा है। इससे ८.३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इस योजना पर लगभग ६० करोड़ रुपया व्यय हुआ है।

(५) कोसी योजना—यह योजना बिहार में है। इससे बिहार और नेपाल को लाभ हुआ है। यह करीब ५० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करेगी।

(६) चम्बल योजना—इस योजना से राजस्थान और मध्य प्रदेश को लाभ पहुँचा है। चम्बल योजना के तीन चरण है। इस योजना से काफी सिंचाई और बिजली उत्पन्न की जा सकेगी।

(७) नागार्जुन सागर योजना (आन्ध्र प्रदेश)—यह योजना दक्षिण भारत की सबसे बहुमुखी नदी घाटी योजना है। नन्दी कोण्डा ग्राम के पास कृष्णा नदी पर बाँध बनाया गया है। इससे काफी सिंचाई तथा बिजली प्राप्त की जा सकेगी।

(८) रिहन्द बाँध योजना (उत्तर प्रदेश)—इससे उत्तरप्रदेश में सिंचाइ हो सकेगी और बिजली भी उत्पन्न की जा सकेगी।

(९) कोयना शक्ति योजना (महाराष्ट्र)—इससे महाराष्ट्र की खेती को काफी लाभ है तथा बिजली भी उत्पन्न की जा सकेगी।

(१०) मच्छकुण्ड योजना (उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश)—यह आन्ध्रप्रदेश के विशाखापत्तनम् जिले में है। यहाँ बाँध और बिजली घर बनाया गया है।

(११) मयूराक्षी जलाशय योजना (पश्चिमी बंगाल)—यह पश्चिमी बंगाल में स्थित है। इससे बिजली और सिंचाई दोनों प्राप्त हुए हैं।

(१२) राजस्थान नहर योजना—इससे राजस्थान को लाभ होगा। इस पर लगभग ६६ करोड़ रुपया लगा है। इससे ३३.५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी।

(१३) काक्रपाड़ा योजना—इससे महाराष्ट्र को लाभ हुआ है। इससे सिंचाई एवं बिजली भी उत्पन्न की जा सकेगी।

(१४) लोअर भवानी (मद्रास)—इससे मद्रास को लाभ हुआ है। इससे २.०७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

(१५) भाद्रा जलाशय (मैसूर)—इससे मैसूर राज्य को लाभ पहुँचा है। इससे बिजली एवं सिंचाई दोनों कार्य होंगे।

इस प्रकार योजनाओं के अधीन ये बाँध बाँधे गये हैं तथा और भी बनाये जा रहे हैं। परन्तु भारत जैसे विशाल देश तथा जनसंख्यावाले देश के लिये ये योजनाएँ बहुत कम हैं। इसलिए आवश्यक है कि खाद्यान्न के आयात को रोकने के लिये तथा खेती की उपज बढ़ाने के लिये इनको तेजी से बढ़ाया जाय तभी देश आत्मनिर्भर हो सकेगा और खाद्यान्न के लिये विदेश का मुँह नहीं ताकेगा तथा इन योजनाओं से देश समृद्धिशाली भी बनेगा।

भाषा एवं वेष-भूषा

भाषा—प्राचीन काल में जिस समय भारतवर्ष का नाम आर्यावर्त्त था, उस समय यहाँ की भाषा संस्कृत थी। हमारी प्राचीनतम पुस्तक वेद भी इसी भाषा में बने हुए हैं। इसके बाद जैसे-जैसे समय में परिवर्तन होता गया, भाषा में भी परिवर्तन होता गया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्राचीन समय में संस्कृत भारत की बोलचाल की भाषा तो थी ही परन्तु यह भी हो सकता है कि समस्त संसार की भाषा भी संस्कृत रही हो। उस समय चक्रवर्ती राज्य की प्रणाली थी। इसके साथ ही संस्कृत भाषा वह समृद्ध भाषा है जिसके द्वारा ही दूसरी भाषाएँ विकसित हुई हैं। यह ठीक है कि उसमें शब्दों का हेर-फेर है या दूसरे प्रकार के नाम दिये हुए हैं। जिस प्रकार दुनियाँ में अन्य भाषाएँ प्रचलित हुईं, उसी प्रकार यहाँ भी अपने-अपने प्रान्तों में पृथक्-पृथक् भाषाएँ हैं। भारत में परतन्त्रता के कारण मुसलमानों की हुकूमत में उर्दू का काफी विकास हुआ। क्योंकि यह स्वाभाविक है कि जो शासनकर्त्ता होते हैं जनता प्रायः उनकी भाषा को ही अपनाती है। राज्य का बहुत-सा कार्य उसी भाषा में होता है। तत्पश्चात् हमारे यहाँ अंग्रेजों का शासन हुआ और उन्होंने अंग्रेजी भाषा को प्रोत्साहन दिया। अंग्रेजी काफी उग्ररूप में फैली चूँकि अंग्रेजों का शासन दुनियाँ के बहुत से हिस्सों पर था इसलिये अंग्रेजी का आज भी दुनियाँ में काफी ऊँचा स्थान है।

आज हमारे देश को आजाद हुए २० वर्ष हो चुके हैं इसलिये आवश्यक है कि हम अपनी समृद्ध राष्ट्र भाषा हिन्दी को अपनाएँ। परन्तु आज भी हमारा सीमित दृष्टिकोण उसको अपनाने में हिचकिचा रहा है। अपनी इस सीमित दृष्टि के कारण ही लोभ या अन्य कारणों से हम इसको अपनाने में एक विवाद खड़ा कर देते हैं। विधान के अनुसार सन् १९६५ में देश की राष्ट्र भाषा हिन्दी बनाने का निश्चय हुआ था किन्तु गैर हिन्दी प्रान्तों में यह विवाद का विषय बन गया। परन्तु यदि हम व्यापक दृष्टिकोण से विचार करें तो यह समस्या आसानी से हल हो सकती है। इसको हल करने के लिये यदि हम ठंडे दिमाग से सोचें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि हमारे देश में अब १७ प्रान्त हैं। प्रत्येक की अपनी पृथक्-पृथक् भाषाएँ हैं। तब क्या यह सम्भव है कि सभी राष्ट्र-भाषा बनाई जायँ ? ऐसा होना नितांत असंभव है। तो फिर हमें देश की एक भाषा को राष्ट्र-भाषा का रूप अवश्य देना होगा। इसके लिए हर पहलू पर विचार करते हुए निजी स्वार्थ की सब भावनाओं को त्याग देना पड़ेगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तथा प्राचीनता की ओर जाने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि संस्कृत भाषा के बाद यदि दूसरी कोई युक्तियुक्त समृद्ध, सरल और जिह्वा, कण्ठ, तालु, ओष्ठ वगैरः के प्राकृतिक प्रयोग से विशुद्ध यदि कोई भाषा है तो वह हिन्दी ही हो सकती है अन्य नहीं।

इसी कारण महर्षि स्वामी दयानन्द और राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने गुजराती होते हुए भी हिन्दी सीखी और अपनी सब पुस्तकें हिन्दी में लिखीं। यह एक दूरदर्शिता एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण का उदाहरण है। जिस प्रकार आज अनेक मतमतान्तर जो किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा चलाये हुए हैं हम उन सबको धर्म की

संज्ञा नहीं दे सकते। क्योंकि वे सब धर्म अपने-अपने ढंग के विशेष नियम बनाकर अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार प्रचलित किए हुए हैं। अतः धर्म की तरह शाश्वत नहीं हैं, इसी भाँति हिन्दी एक समृद्ध भाषा है और समुद्र के समान है। अन्य प्रान्तीय भाषाएँ नदी के समान हैं और प्रायः इसी से निकली हुई हैं केवल कुछ शब्दावली की बोलने का फर्क है। इसलिए हमें राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही अपनानी पड़ेगी।

इसके साथ ही जो प्रान्तीय भाषाएँ हैं वे अपने-अपने प्रान्तों में अवश्य पढ़ाई जायँ परन्तु जिन प्रान्तों को दो विभागों में बाँटा गया है, जैसे पंजाब को हरियाना और पंजाबी सूबे में विभक्त किया गया है वहाँ हरियाना में यदि पंजाबी भाषा को थोपा गया तो वह गलत चीज होगी। चूँकि हरियाना में सब कार्य हिन्दी में होता है इसलिए वहाँ हिन्दी होनी चाहिए और पंजाबी में क्षेत्र में पंजाबी। जिस प्रान्त की परिस्थिति, बोलचाल आदि भिन्न-भिन्न हो वहाँ यह कैसे हो सकता है कि एक ही भाषा अपनाई जाए। केवल चन्द व्यक्तियों के लिए कोई नियम नहीं बनाया जाता। वहाँ करीब आधा प्रान्त हरियाना क्षेत्र का है और आधा पंजाबी का इसलिए यह आवश्यक है कि वहाँ दोनों भाषाएँ चलानी होंगी। ऐसी समस्या यदि अन्य प्रान्तों में कहीं हो तो वहाँ भी ऐसा ही होना चाहिए। अब तो हरियाना और पंजाब अलग-अलग हो गए। अतः भाषा-समस्या का कोई झगड़ा रहा ही नहीं। हाँ, जैसे कुछ मारवाड़ी भाई और अन्य लोग आज पश्चिमी बंगाल, आसाम या अन्य किसी प्रान्त में कारोबार के लिये गये हुए हैं। काफी वर्ष से उनके बाल-बच्चे भी वहीं रह रहे हैं। वे यदि कल यह माँग करें कि हम तो हिन्दी जानते हैं इसलिए वहाँ हिन्दी ही प्रचलित हो तो माँग उचित नहीं है। वहाँ तो उन्हें

उसी प्रान्त की भाषा का अध्ययन करना होगा या राष्ट्र-भाषा का।

इसके साथ ही हमें इस प्रकार का प्रबन्ध करना चाहिए कि हमारी अध्ययन-प्रणाली इस प्रकार की हो कि यदि हम विदेशों में जाएँ तो वहाँ भी हमें भाषा की वाधा न हो। परन्तु इसके साथ यह तो हो नहीं सकता कि एक मनुष्य संसार की सब भाषाओं का अध्ययन करे। अतः हमें एक ऐसी भाषा का उच्च श्रेणियों में अध्ययन करना होगा जो संसार में समुन्नत और प्रचलित भाषा हो। वह भाषा अंग्रेजी ही है। इसलिये पहले प्रत्येक प्रान्त में वहाँ की प्रान्तीय भाषा और साथ में राष्ट्र-भाषा का अध्ययन कराया जाए। इसके बाद जब बच्चे का दिमाग विकसित हो जाय तब अंग्रेजी पढ़ाई जाए। इसके साथ ही जब हम राष्ट्र-भाषा हिन्दी की बात करते हैं तो हमारे यहाँ के पश्चिमी सभ्यता में पले हुए तथा शिक्षा पाये हुए भाई कहते हैं कि हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी नहीं होनी चाहिए। क्योंकि आज का बढ़ा हुआ विज्ञान, नये-नये आविष्कार, डाक्टरी, तकनीकी, आर्थिक तथा साहित्यिक आदि सब पुस्तकें अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं अन्य भाषा में नहीं। हाँ, हम यह बात भी स्वीकार करते हैं। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि इम कारण से हिन्दी को न अपनाएँ। कोई भी चीज जब दूसरे तरीकों से हल न हो तभी हम उसको उस लिहाज से अपना सकते हैं। परन्तु जब वह हल हो जाय तो अपनाने की जरूरत नहीं। इसके लिये लिये हमें थोड़े खर्च और परिश्रम की जरूर आवश्यकता होगी। परन्तु यह नहीं कि वह हल न हो। हम उन, सब पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करा देवें और इन विषयों के विद्वानों को भारतीय भाषाओं में और विशेषकर राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखने के लिये प्रोत्साहित करें। इसकी जरूरत इसलिये है कि यदि हम हिन्दी को न अपनाएँगे

तो इससे काफी नुकसान होने का अन्देशा है। जैसे दूसरे मुल्कों ने आजादी के बाद अपनी ही भाषा को अपनाया। हालाँकि वहाँ इसके पूर्व अंग्रेजी ही थी। यह ठीक है कि एक मुल्क गुलाम हो जाय। परन्तु यह नहीं हो सकता कि वह सदा गुलामी की जंजीरों में ही जकड़ा रहे। उसे अपनी भाषा को अवश्य अपना कर विकसित करना चाहिए। क्योंकि प्राकृतिक रूप से जो बच्चा जिस देश का होता है वह उसी भाषा को आसानी से सीखता है। इसलिये आवश्यकता है कि हम भाषा के सवाल को लेकर वाद-विवाद में न पड़ें तथा व्यापक दृष्टिकोण से काम लें। विदेशी भाषा के सहारे कोई देश प्रगति नहीं कर सकता। आज जो लोग अँग्रेजी की वकालत करते हैं या प्रान्तीय भाषा के चक्कर में हैं वे गलती पर हैं। यदि हम निष्पक्षता से विचारें तो हम देखेंगे कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो हर प्रान्त तथा भारत के कोने-कोने में बोली और समझी जाती है। यह समृद्ध भी है। हमारे लिये यह शर्म की बात है कि हमलोग एक ही देश के निवासी आपस में दूसरे लोगों के साथ अपने देश की भाषा में बातचीत नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि हम आज तक एक ऐसी भाषा नहीं अपना सके हैं जो सभी जानते हों। इसलिये हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाकर उसका तेजी से विकास करना चाहिए। भाषा के विकास के लिये निम्नलिखित कार्य किये जायँ :—

(१) सारे भारतवर्ष में राष्ट्रभाषा लागू की जाय। उसमें ही केन्द्र तथा अन्य प्रान्तों का सारा कार्य (सरकारी अथवा गैर-सरकारी) हो। प्रान्तों में राष्ट्रभाषा और वहाँ की प्रान्तीय भाषा हो। उन दोनों में सब कार्य हों। चाहे वे सरकारी हों अथवा गैरसरकारी।

(२) प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को एक निश्चित अवधि के अन्दर राष्ट्रभाषा के लिखने-पढ़ने का ज्ञान होना चाहिये।

(३) आज विज्ञान-संबंधी, इंजीनियरिंग, डाक्टरी आदि का जो साहित्य हिन्दी में उपलब्ध नहीं है उसका अनुवाद कराया जाय और इन विषयों के विद्वानों से कहा जाय कि वे हिन्दी अथवा अपनी मातृ-भाषा में इन विषयों में पर पुस्तकें लिखें। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त विद्वान् अपनी समझी हुई बात को जितने अच्छे ढंग से अपनी मातृ-भाषा में प्रकट कर सकता है उतने अच्छे ढंग से अँग्रेजी में नहीं। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधीजी ने जो भी उत्तम साहित्य लिखा वह पहले अपनी-अपनी मातृ-भाषा में ही लिखा। इसके बाद उसका संसार की अन्य भाषाओं में अनुवाद हो गया। इसी प्रकार हमारे देश के विद्वानों को भी करना चाहिए।

भेष—

सृष्टि के आरम्भ में जब मानव का विकास हुआ उस समय लोग शरीर से प्रायः नंगे रहा करते थे। शरीर पर केवल वृक्षों के पत्ते या मृगछाला, शेर की खाल आदि लपेटे लेते थे। बाद में ज्यों-ज्यों अग्नि के आविष्कार के बाद अन्न का पकाना, रहने के लिये स्थान, आने-जाने के साधन आदि आविष्कार होते गये त्यों-त्यों वे सभ्यता की तरफ बढ़ने लगे, उनके खान-पान, पहराव में अन्तर आने लगा। वे पहले पहल कुछ हाथ का बुना हुआ मोटा कपड़ा, तदनंतर मशीनों के आविष्कार से बना बारीक कपड़ा पहनने लगे। बीच में यह कला इतनी चरम सीमा तक विकसित हुई कि ढाके की मलमल विश्वविख्यात हो गई।

तब ऐसा महीन कपड़ा बुना जाने लगा कि एक अँगूठी से तमाम साड़ी को निकाल दिया जाता था। इस प्रकार से काफी विकास हुआ। प्रत्येक मौसम के लिहाज से भिन्न-भिन्न कपड़े बनने लगे। लोगों ने उसका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। परन्तु हमारे देश का जो आम पहनावा था वह भारत की जलवायु के अनुसार धोती, कुर्ता, अँगरखा पगड़ी और साफा आदि का था। मुसलमानी शासन आने से तथा देश गुलाम होने से स्वभावतः कुछ लोग उन्हीं की तरह रहने लगे जैसे हम लाँग को टाँग कर रखते हैं तो वे तहमद मार कर रखते थे। इस प्रकार हमारे भी कुछ भाई उन्हीं की तरह तहमद आदि रखने लगे, हमारे अन्दर कुछ परिवर्तन हुआ। परन्तु बाद में अंग्रेजी शासन आने से हम भी उन्हीं की तरह अपने भेष को बदलते चले गये। उन्हीं की तरह कोट, पैंट, नकटाई आदि पहनने लग गये। अंग्रेजी शासन के दरम्यान तो यहाँ तक था कि धोती-कुर्ता पहननेवाले आदमी को वे अपनी जगहों में आने-जाने की रोक लगा देते थे। आज भी इस दास-प्रथा का कुछ अंश हमारे अन्दर स्वाभाविक-सा बन गया है। हम धोती कुर्तेवाले को पैंट-कोटवाले की अपेक्षा नीचा और अशिक्षित समझने की बेवकूफी करते हैं। यह सब गुलामी की निशानी नहीं तो और क्या है पहले तो यह आवश्यक है कि जिस देश की जैसी जलवायु हो उसी प्रकार का ड्रेस (पहनावा) वहाँ का होना चाहिये। जैसे भारत में अधिकांश गर्म जलवायु है तो हमें खुले और हलके कपड़े प्रयोग करने चाहिएँ। जो कपड़ा स्वदेशी हो, कम लागत का हो तथा अपने यहाँ के पदार्थ को लेकर बना हुआ हो उसे ही पहनना चाहिए। रूस जैसे ठण्ढे इलाके का पहराव यदि हम अपनायेंगे तो यह ठीक नहीं। हमारे जलवायु के हिसाब से हमारा भेष होना

चाहिए। इसके साथ विदेशी पहरावा बहुत खर्चीला भी होता है। भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से एक गरीब देश है। हमारे यहाँ प्राचीन समय में विद्यार्थी इतनी सादगी का पहरावा रखते थे कि वे देखने में तपस्वी प्रतीत होते थे। उससे चरित्र का भी पालन होता था। क्योंकि कपड़ों की सजावट भी चंचलता पैदा करने की एक प्रमुख निशानी है। साथ ही ये इस प्रकार की चीजें हैं जिन्हें सिलाई वगैरः के लेहाज से बहुत पैसे खर्च करके तैयार कराना पड़ता है तथा धुलाई में काफी खर्च होता है। कहना नहीं होगा कि हमारे इस आधुनिक फैशन ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया है कि हमारी लड़कियाँ बचपन में ही इस प्रकार का ड्रेस (पहरावा) पहनने लग जाती हैं कि वे न तो अपने शरीर को ही सभ्यतानुकूल ढँक सकती हैं और न उस ड्रेस को पहनकर घर के काम-काज ठीक ढंग से कर सकती हैं। एक छोटे से उदाहरण से यह चीज स्पष्ट होगी। एक स्कूल में पढ़नेवाली लड़की का फाउँटेन पेन गिर जाता है तो वह स्वयं बार-बार कोशिश करने पर भी—चुस्त पहनावा के कारण—जमीन पर से पेन नहीं उठा सकती। अब आप ही अनुमान लगाइये कि यह कैसी पोशाक (पहनावा) है ? स्त्री के जो अंग मनुष्य को स्वाभाविक ही उत्तेजित करते हैं वे सब इस पहरावे से साफ दिखाई देते हैं। अब आप सोचिए कि हमारी वेषभूषा किस हद तक गिर चुकी है और इसमें यदि परिवर्तन न हुआ तो हमारे चरित्र-पतन का यह एक प्रमुख अंग बन जायगा। हमारा आज का नवयुवक यह पहरावा पहनकर कोई काम नहीं करना चाहता। उसको बैठने में बड़ी परेशानी अनुभव होती है। वह आराम से बैठ नहीं सकता। दूसरे काम तो करेगा ही क्या ? उसे बैठने के लिये कुर्सी चाहिए। इसी प्रकार यह आवश्यक है कि हम

इस निकम्मी खर्चीली वेष-भूषा को अविलंब त्याग दें। सरकार को इसमें निम्नलिखित परिवर्तन करने चाहिएँ—

(१) स्कूल तथा कालिजों के लिये नियम हो कि प्रत्येक गाँव अथवा शहर में स्कूल-कालिजों की पोशाक (Dresses) ऐसी हो जो उनके स्कूल की तरफ से चुनी गई हो, जिसे गरीब और अमीर सब खरीद सकें। इससे सादगी पैदा होगी तथा बच्चों की भावना एक जैसी होगी। उनमें ऊँच-नीच का भेद-भाव न होगा। सबका ड्रेस एक समान होने से सुन्दर तथा अनुशासन-बद्ध लगती है। साथ ही अध्यापकों के लिये भी ऐसा ही नियम होना चाहिए।

(२) टेरलीन आदि कीमती विदेशी कपड़ों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। टेरलीन आदि हमारे यहाँ भी न बनाये जायँ। क्योंकि एक तो इससे शरीर में अग्नि लगने का खतरा रहता है। दूसरे ये बहुत ज्यादा कीमती हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि जब तक हमारी आर्थिक हालत अच्छी न हो जाय तब तक हमारे यहाँ ऊँचे रेटों का कपड़ा न बनाया जाय।

(३) चुस्त ड्रेस पर पूर्णतया पाबन्दी हो। साथ ही लड़कियों के लिए स्कूलों में इस प्रकार की ड्रेस लागू की जाय जो सभ्य सादी और कम खर्चीली हो।

भोजन :

खान-पान से जीवन का गहरा सम्बन्ध होता है। जो भी चीज हम खाते-पीते हैं उसका मन, बुद्धि और शरीर पर अवश्य प्रभाव पड़ता है, यह एक प्राकृतिक तथ्य है। कहावत है कि 'आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धि' यानी हमारा भोजन शुद्ध होने से बुद्धि सात्विक होगी। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि कन्द-मूल फल

खाकर तत्व-ज्ञान प्राप्त करते थे। जब कि मलेच्छ लोग मांस-मदिरा खाते-पीते थे। इस प्रकार सुर और असुर दो वर्ग थे। असुर लोग देवताओं से संग्राम करते थे तथा उनके आश्रमों में जाकर विघ्न-बाधा डालते थे। इस प्रकार सात्विक और तामसिक बुद्धिवालों में संघर्ष रहता था। शिक्षाशास्त्रियों ने आहार के तीन भेद किये हैं—(१) सात्विक (२) राजसिक और (३) तामसिक।

सात्विक आहार में दूध, फल, अन्न मेवे आदि प्राकृतिक हैं।

राजसिक आहार में मिठाई, कचौड़ी, पूड़ी आदि तली हुई और मसाले वगैरः से बनी हुई वस्तुएँ हैं जिसका प्राकृतिक रूप बिगाड़कर, विकृत करके कुछ भारी और गरिष्ट बना दिया जाता है।

तामसिक आहार में मांस, मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थ हैं। मांस खाना प्राकृतिक भोजन नहीं है। यह हमारी इन्द्रियों को गलत दिशा में ले जाता है। यह तो ठीक है कि आज दुनियाँ के अधिकांश लोग मांसाहारी हैं परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि कोई बुराई अधिक फैल जाय तो हम उसे इसलिए मानने लगें कि यह तो अधिकांश लोगों की मान्यता की चीज है। मांसाहार के लिए प्रायः यह दलील दी जाती है कि बहुत सी जगहों की जलवायु इस प्रकार की है कि वहाँ मांसाहार के बिना नहीं रहा जा सकता, या यह शक्ति अधिक देता है तथा पौष्टिक है। परन्तु यदि हम गम्भीरता से सोचें तो देखेंगे कि वास्तव में मांसाहार मनुष्य जाति के लिए सर्वथा अस्वाभाविक है। धार्मिक या नैतिक दृष्टि से देखें, चाहे स्वास्थ्य की दृष्टि से सोचें तो भी निरपराध और अबोध पशुओं की हत्या करके उनका मांस खाना मनुष्य के लिए बुद्धिमानी का कार्य नहीं है। यदि आप प्राकृतिक

रूप से देखें तो पता लगेगा कि मनुष्य के आहार-पाचन के संस्थान इस प्रकार के बने हुए नहीं हैं जो कि मांसाहार के अनुरूप हों। साथ ही मांसाहार अनेक रोगों को पैदा करता है। इससे विषयों की तरफ अधिक प्रवृत्ति होती है तथा बुद्धि की सात्त्विकता नष्ट होती है। आज पश्चिमी देशों के अन्दर मांसाहारी अधिक हैं परन्तु अब वे धीरे-धीरे शाकाहार की तरफ बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। आप देखेंगे कि वहाँ भी जो सुकरात, अरस्तू, अफलातून, टालस्टाय, बनार्डशा आदि विचारक, सन्त, महात्मा हुए हैं, उनमें सभी शाकाहारी थे। शाकाहार में वे सब शक्तियाँ मौजूद हैं जो कि मांसाहार में हैं ही नहीं। आप एक दूध पीनेवाले के साथ किसी मांसाहारी को दौड़ाइये, आप देखेंगे कि वह जल्दी ही पीछे रह जायगा, क्योंकि जीवनी-शक्ति तो अधिकतर दूध में है। मांसाहार केवल दिखावा है, दूध, अन्न, घी, मेवे ये सब ठोस चीजें हैं।

मांसाहार उस समय की चीज थी जिस समय हमारे पास न तो उदरपूर्त्ति के इतने अधिक साधन ही थे और न हमें विशेष ज्ञान था। लोग प्रायः घनघोर जंगलों में रहते थे। हिंसक पशुओं से उनका मुकाबला होता था और वे क्षुधा-निवृत्ति के लिये और साधन न होने की वजह से उन्हीं का मांस खा जाते थे। परन्तु आज वह समय नहीं है। आज मानव जाति काफी जागृत, साधन-सम्पन्न और विचारक हो चुकी है। अब उसके लिए अभक्ष्य खान-पान शोभा तथा विवेक का कार्य नहीं है। आज दुनियाँ में अशान्ति, झगड़े, राज्यलोलुपता, विनाशकारी शस्त्रों का निर्माण, चरित्र-पतन आदि जो अत्यन्त द्रुतगति से बढ़ते जा रहे हैं इनका प्रमुख कारण हमारा गलत खान-पान है क्योंकि यदि हम सूक्ष्मता से देखेंगे तो हम पायेंगे कि यह कहावत बिल्कुल

यथार्थ है कि जैसे "जैसा खाये अन्न, वैसा हो मन" और जैसा 'पीये पानी वैसी बोले वाणी।'

कुछ लोग कहते हैं कि कई जगहों की जलवायु ऐसी ठंडी है कि वहाँ के लिए मांस-मदिरा आवश्यक है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। आज एशिया तथा पश्चिम के देश काफी स्वाववलम्बी हैं तथा आर्थिक हालत में सम्पन्न हैं। साधनों की भी वहाँ कमी नहीं है। यदि वे चाहें तो उनके लिये सूखे मेवे—जो बहुत गर्म होते हैं तथा दूसरी चीजें जो प्रकृति ने हमें प्रदान की हैं—सेवन करके हम वहाँ की ठंड को आराम से सहन कर सकते हैं। प्रकृति ने हमें क्या नहीं दिया है ? सब कुछ ही दिया है। फलों को लीजिए; फलों की अत्यधिक किस्में हैं उनमें एक से एक मीठे खट्टे, गर्म, ठंडे, हाजमा, पौष्टिक हर प्रकार के हैं। इसी प्रकार, अनेक प्रकार के अन्न, मेवे आदि हैं। इन सबके होते हुए भी हम अपनी जिह्वा के वशीभूत होकर कृत्रिम और अभक्ष्य खान-पान करें तो इसमें न तो प्रकृति का ही दोष है और न किसी अन्य का; यह सब हमारा अपनी इन्द्रियों का दोष है। यदि आप सात्त्विक और सादा आहार करें तथा चरित्रशाली रहें तो आप देखेंगे कि हमारे अन्दर बल-बुद्धि की कोई कमी नहीं रहेगी। हम विषयों के वशीभूत होकर व्यर्थ शक्ति व्यय करते हैं और कृत्रिम साधनों की तरफ दौड़ते हैं। इससे हमारी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। क्योंकि हमने वास्तविकता को नहीं पहचाना। वास्तविकता यह है कि हम प्रकृति की तरफ जितना बढ़ेंगे प्रकृति हमारी उतनी ही मदद करेगी। भोजन की सूक्ष्मता को हमने नहीं पहचाना। हमने केवल उसको उदर-पूर्ति का सहारा मात्र मान लिया है। यदि आप भोजन की सूक्ष्मता की तरफ देखें तो अनुभव करेंगे कि इसका हमारे दिल-दिमाग से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहाँ

तक कि यदि आपने पवित्र कमाई की है और उसका आप भोग करते हैं तो वह हर प्रकार से सुखदाई, आरोग्य एवं बुद्धिवर्धक होगी और उससे आप यशस्वी होंगे और इसके विपरीत यदि आपकी कमाई नेक नहीं है तो वह आपको हर प्रकार से दुःखदायी होगी। इन सबका अनुभव करने की तथा गहराई में जाने की आज हम साधारण लोगों में सामर्थ्य नहीं रहीं और न हमारा इन सबकी तरफ विचार ही जाता है। प्रत्येक साधारण पुरुष केवल अन्नमय कोष तक ही सीमित है उसको इससे आगे का ज्ञान नहीं है जबकि इसके अतिरिक्त भी हमारे अन्दर दूसरे और कोष भी विद्यमान हैं। जैसे—प्राणमय कोष, मनोमय कोष, अमृतमय कोष तथा आनन्दमय कोष। जिस प्रकार अन्नमयकोष के द्वारा हमें क्षुधा वगैरः लगती है और हम उसकी पूर्ति के लिये आहार करते हैं उसी प्रकार इन दूसरे कोषों का भी अपना-अपना पृथक्-पृथक् कार्य है और वे अपनी-अपनी क्रिया करते हैं परन्तु हम उनकी क्रियाओं को न पहचानते हैं न अनुभव करते हैं। यदि हम उन सबको पहचानें तो उनके अन्दर वह अटूट खजाना भरा हुआ है जिसको हम सिद्धियाँ कहें, परमानन्द कहें या अन्य चाहे जो कुछ। क्या आपने कभी यह विचार किया है कि हमारे ऋषि-मुनियों में क्या चीज थी जिससे वे इतने आत्मदर्शी, दूरदर्शी, तत्ववेत्ता होते थे। क्या वे कोई विशिष्ट खान-पान करते थे ? नहीं। उसका कारण यही था कि उनका आहार इतना सात्विक, सादा और पवित्र होता था कि उनकी सब क्रियाएँ अपना-अपना कार्य ठीक करती चली जाती थीं। इसके लिये मैं आपको एक उदाहरण लिख दूँ। एक महात्मा जंगल में कुटी बनाकर रहते थे। एक बार दैवयोग से ऐसी वर्षा हुई कि कुटी के चारों तरफ जल ही जल हो गया। अब महात्माजी न तो बाहर जा सके और न

कुछ कर सके। जो राशन था वह भी कम ही रह गया था, वह एक-दो दिन में समाप्त हो गया। जब दो-तीन दिन बाद जल कम हुआ तो वे पास में पड़नेवाले एक वैश्य की दुकान से आटा लाने गये और आटा लेकर वापिस आ गये। रोटी बनाई और पेट भर कर खाया। रात्रि को सो गये। सोने के बाद रात्रि को एक स्वप्न आया कि यदि बकरा आदि का मांस खा लिया जाय तो कोई बात नहीं और उनको माँस वगैरः भी नजर आता दिखाई दिया। इसके पश्चात् उनकी निद्रा टूट गई और उठे। स्वप्न याद किया तो उनके मन में बड़ी ग्लानि हुई। मन ही मन सोचने लगे कि यह स्वप्न तो बहुत बुरा दिखाई दिया; क्या कारण है। उन्होंने सब विचार कर निश्चय किया कि यह आटा जिस वैश्य के यहाँ से मैं लाया हूँ उसके पास चलना चाहिए। जरूर आटे में गड़बड़ हो सकती है। ऐसा विचार कर वे गये और उससे कहा कि आपने जो आटा हमें दिया है उसमें कुछ खराबी तो नहीं थी। वैश्य ने कहा, आटा तो ठीक था परन्तु वह तराजू मैं अपने पड़ोसी के घर से लाया था उसने उससे कुछ तौला होगा। महात्माजी बोले कि उससे पता लगाओ कि उसने क्या तौला था, जब उसने पता लगाया तो उसने कहा कि हमने इसमें बकरे के मांस का वजन किया था और उस तराजू को ठीक से साफ नहीं किया था। महात्मा ने कहा कि अब मेरे स्वप्न का रहस्य पूरा हो गया नहीं तो मुझे शक था कि ऐसा स्वप्न क्यों आया। कहने का तात्पर्य यह है कि भोजन से हमारा बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है और आप इसकी जितनी बारीकी में जायँगे इसमें बहुत अधिक विशेषता पायेंगे। भीष्म पितामह यह जानते हुए भी कि पांडव धर्म पर हैं और कौरव अधर्म तथा अन्याय पर तुले हुए हैं। फिर भी उनको अन्न के ही प्रभाव के कारण

पांडवों के विरुद्ध लड़ना पड़ा। इसलिये आहार की शुद्धि परम आवश्यक है। वह अभक्ष्य, अपवित्र, छलकपट शोषण का न हो वह शुद्ध, पवित्र, सात्विक, प्राकृतिक और परिश्रम का हो, तो आप देखेंगे कि हर जगह सुख, शान्ति, मानवता, भ्रातृत्व तथा प्रेमभाव होगा और हम सुखी और सम्पन्न होंगे। चाहे आज दुनिया के लोग विज्ञान, टैक्नोलाजी आदि की कितनी ही उन्नति कर लें परन्तु जब तक हमारा खानपान नहीं सुधरेगा, हम नैतिकता, शान्ति, सद्भाव नहीं ला सकते, इसलिए आहार-शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

वन-बगीचा-सुधार

खेती की तरह वन भी हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन समय में जब कि आबादी बहुत कम थी वन बहुत ज्यादा थे। जैसे-जैसे आबादी बढ़ती गयी वनों में कमी होने लगी। क्योंकि उनको काटकर कहीं सड़कें, रेल लाइन, खेती आदि की जाने लगी। आजादी से पहले वनों के विकास के लिए कोई कार्यक्रम नहीं था। हमारे यहाँ प्राकृतिक दशा जलवायु, मिट्टी तथा अन्य स्थानीय तत्वों की विभिन्नता के कारण विविध प्रकार के वन पाये जाते हैं। वनों का भारत के आर्थिक जीवन में बहुत बड़ा स्थान है। इनसे देश की अर्थव्यवस्था को कई प्रकार के परोक्ष तथा प्रत्यक्ष लाभ होते हैं। विभिन्न प्रकार के वनों से हमें विभिन्न प्रकार की लकड़ी प्राप्त होती है। जैसे — सागवान, शीशम, साल, देवदार, चीनार, कर, ओक आदि। ये हमारे मकानों के लिये, जलाने के लिए, फर्नीचर आदि के लिए बहुत काम आती है। वनों से हमें ऐसी लकड़ी भी प्राप्त होती है जिससे रेलगाड़ी के डिब्बे और मोटरों के मुख्यांश बनते हैं। कुछ उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त होता है। जैसे कागज के उद्योग के लिए सवाई, बम्भर, घास और बाँस का गूदा। रंगों के लिए पेड़ों की छालें, रेशम के कीड़ों के लिये शहतूत, सुगन्धि के लिए चन्दन की लकड़ी, वार्निश, लाख आदि भी जंगलों से मिलती है। सिनकोने के पेड़ से कुनैन बनाई जाती है। दियासलाई जो हमारे दैनिक

उपयोग की चीज है इसकी लकड़ी भी वनों से प्राप्त होती है। भिन्न-भिन्न प्रकार के खेलों का सामान तथा बच्चों के खिलौने आदि भी वन की लकड़ी से बनाये जाते हैं। वनों में अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ भी मिलती हैं। जो कि विभिन्न प्रकार के रोग और बीमारियों से बचाकर हमें जीवन प्रदान करती हैं।

जड़ी-बूटियों की काफी खोज की गई है परन्तु अब भी इस प्रकार की जड़ी-बूटियाँ वनों में पाई जाती हैं जिनको हम सही रूप से नहीं जान पाते कि यह किस काम की है। वनों से हमें चारा अत्यधिक मिलता है जिससे खेतों में चारे फसलें पैदा करने की आवश्यकता नहीं रहती। वनों में पत्तियों के ढेर के ढेर हो जाने से खाद का काम लिया जाता है। वनों से वर्षा बहुत होती है। क्योंकि वन बादलों को खींचकर वर्षा लाने में बहुत सहायक होते हैं। यही कारण था कि प्राचीन समय में वर्षा समय पर और पूरी मात्रा में होती थी। वनों से जलवायु शुद्ध रहता है। तथा देश का प्राकृतिक सौन्दर्य बढ़ता है। काश्मीर आदि की घाटी का सौन्दर्य अधिकतर वहाँ के वनों के कारण ही है। घने वन देश के लिए दीवार का काम देते हैं। इसके साथ ही वनों से सरकार को बहुत आय होती है। १९५७-५८ में वनों का कुल क्षेत्रफल लगभग भारत के कुल भू-क्षेत्र का २२% भाग था। विशेषज्ञों के अनुसार भारत जैसे उष्ण कटिबन्ध देश में कुल भू-क्षेत्र का लगभग ⅓ भाग वनों के अन्तर्गत अवश्य होना चाहिये। इसलिये वनों के विकास की काफी आवश्यकता है।

वनों की तरह बगीचे भी हमारे लिए बहुत उपयोगी एवं आवश्यक हैं। इनसे भी हमें खाने के लिए विविध प्रकार के फल, शुद्ध सुगन्धमय फूलों की सुगन्धि मिलते हैं जो हमारे जीवन को

प्रफुल्लित करते हैं। दूसरे मुल्कों में बगीचे तथा छोटी-छोटी बाड़ीं फूल-पौदों की आपको हर घर में देखने को मिलेंगी। हमारे यहाँ भी पहले समय में लोगों को बाग-बगीचों का बहुत शौक था वे अपनी आय का पैसा विवाह, मकान, आदि में जिस प्रकार खर्च करते थे उसी तरह बाग भी लगाते थे। धार्मिक दृष्टि से भी वृक्षों का लगाना धर्म का हेतु माना गया है। इनका हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम अनायास ही बहुत से रोगों से बचे रह सकते हैं। यदि हमारे घरों में डेनमार्क आदि देशों की तरह छोटे-छोटे बगीचे, फूल-वाले उपवन लगायें। आप डेनमार्क जाइये तो आप देखेंगे कि वहाँ के हर घर में फूलों के पौदे इस प्रकार लगे हुए मिलेंगे कि आप बाहर किसी मनमोहक जंगल में खड़े हैं। हमारे स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू को गुलाब का फूल इतना प्रिय था कि वह प्रतिदिन उद्यान से खिला हुआ फूल मँगाकर अपने कोट में लगाते थे। हम आज घरों की इमारतों पर इतना पैसा खर्च करते हैं परन्तु कहीं भी कोई फूल-पौदा या बाड़ी की जगह नहीं मिलेगी। फलों से हमें जीवनी-शक्ति प्राप्त होती है। जिस प्रकार मकान के निर्माण के लिए ईंट, चूना, लोहा वगैरः की चीजें मौजूद हों और कारीगर न हो तो वह मकान ज्यों का त्यों पड़ा रहेगा, उसका निर्माण नहीं हो सकता। उसी प्रकार हमारे शरीर को जहाँ प्रोटीन युक्त पदार्थों आदि की आवश्यकता है वहाँ हमें विटामिनों की भी काफी जरूरत पड़ती है। फलों से हमें विटामिन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। जो कि शरीर में कारीगर का काम देते हैं। इसलिए आवश्यक है बाग-बगीचों का पूर्ण विकास किया जाये।

वनों के विकास के लिए निम्नलिखित सुधार आवश्यक हैं।

(१) वनों के काटने पर रोक लगानी लगानी चाहिए। तब

तक वह न काटे जावें जब तक कि उतनी ही मात्रा में अपितु उससे भी ज्यादा भूमि पर पेड़ लगाने की व्यवस्था न की जावे।

(२) वनों का क्षेत्रफल योजना-अनुसार बढ़ाते रहना चाहिए। तथा नहरों, सड़कों और रेलमार्गों के दोनों ओर वृक्ष लगाये जायँ।

(३) गाँव की पड़ी सीमान्त भूमि में वृक्ष लगाये जायँ ताकि गाँव के लोगों के लिए ईन्धन की लकड़ी अधिक उपलब्ध हो, वे गोबर के उपले बना कर जलाने के काम में लेते हैं उस गोबर को खाद रूप में काम में लायें जिसकी हमारी खेती के लिए अत्यन्त आवश्यकता है।

(४) वन की वस्तुओं पर निर्भर उद्योगों की प्रगति के लिए व्यापारियों और वन-अनुसन्धान संस्था के बीच सम्पर्क बढ़ाया जाय।

(५) हमारे यहाँ विभिन्न प्रकार के वन हैं जैसे पर्वतीय वन, सदाबहार वन, सूखे प्रदेश के बन, समुद्रतट के वन और पतझड़ वाले वन। अब जैसे पर्वतीय वन हैं इनमें परिवहन के साधन बहुत कम होते हैं। इससे इनका पूरा लाभ नहीं उठाया जाता। अतः इनमें परिवहन के साधन बढ़ाये जायँ।

(६) कई प्रान्तों में वनों के कुल क्षेत्रफल का अनुपात से बहुत कम ज्यादा है। जैसे मध्यप्रदेश में ३१.४ प्रतिशत, केरल में केरल में ३३.४ प्रतिशत, पंजाब में १५.२ प्रतिशत और राजस्थान में ९.८ प्रतिशत। इसलिये यह अनुपात बहुत कम ज्यादा है। अतः आवश्यकता है कि जिन भागों में वनों की अधिक आवश्यकता है जैसे कि गंगा के बने आबाद मैदान में वहाँ इनको बढ़ाया जाय।

(७) जहाँ कहीं निजी वन हैं वहाँ उनके स्वामित्व को राष्ट्रीय हित में परिणत करना आवश्यक है जिससे कि उनके मालिक निजी आय के लिये उनका प्रयोग कर सामान्य कल्याण को हानि न पहुँचा सकें।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सरकार को चाहिए कि वह वनों के अधिकाधिक विकास के लिए अच्छी से अच्छी क्रियान्वित नीति अपनाए। वनों के विकास के लिये हर सम्भव चेष्टा की जाय जो कि हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी है। स्वतंत्रता से पहले वन-नीति सन्तोषजनक न थी। हमारी सरकार ने आजादी के बाद इस दिशा में कुछ कार्य किया है उस कार्य को हम तेजी से और आगे बढ़ायें तथा देश में वनों के क्षेत्रफल की जो कमी है वह पूरी की जाए। क्योंकि देश की आजादी तेजी से बढ़ रही है। नए-नए निर्माण हो रहे हैं। इसलिये वनों के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है।

———

विद्युत्-शक्ति

किसी भी देश के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के लिए विद्युत्-शक्ति के साधनों का बड़ी मात्रा में होना अत्यन्त आवश्यक है। वैसे शक्ति के साधन विभिन्न प्रकार के हैं। जैसे, मनुष्य, पशु, वायु, लकड़ी, कोयला, खनिज, तेल, परमाणुशक्ति, सूर्य की शक्ति आदि है। परन्तु आज के इस तेजी से बढ़ते हुए युग में परमाणु और सूर्य की शक्ति को छोड़कर बाकी दूसरे साधन बहुत पीछे रह गये हैं। उनकी कार्य-क्षमता, विद्युत्-शक्ति के आगे बहुत कम है। भारत में पहले जब कि विद्युत्-शक्ति का विकास नहीं हुआ था हम लकड़ी, कोयला, पशु वगैरः से काम लेते थे और आज भी इनका प्रयोग कुछ रूप में ही रहता है। जैसे—तेल निकालने के लिए छोटे-छोटे कोल्हू बनाकर और पशु के जरिये कोल्हू चलाकर तेल निकालना, फसल निकालने के लिये बैलों से गाहना, माल ढोने के लिये बैलगाड़ी का प्रयोग करना, कपड़ा धीरे-धीरे करघों पर हाथ से बुनना तैयार करना तथा इस प्रकार से खनिज तेल के रूप में बिजली के बहुत कम साधन हैं। हम खनिज तेल के अपने घरेलू उत्पादन से मुश्किल से अपनी माँग का १०% भाग पूरा कर पाते हैं। अतः यहाँ डीजल, बिजली के बहुत छोटे-छोटे कारखाने हैं। इस समय देश में उत्पन्न कोयले का लगभग १०% भाग बिजली बनाने में काम आता है क्योंकि जिस जगह कोयले का भण्डार है वहीं बिजली उत्पन्न करना तो

कम खर्च का काम है परन्तु दूसरी जगह कोयला ले जाकर बिजली उत्पन्न करना बहुत खर्चीला बैठता है अतः देश के इन भागों में शक्ति के किसी अन्य साधन (जैसे जल-विद्युत्) का विकास बहुत आवश्यक हो जाता है।

सौभाग्य से भारत में जल-विद्युत् के साधन प्रचुर मात्रा में हैं। मोटे तौर पर अनुमान है कि देश में कुल मिलाकर लगभग ४.१ करोड़ किलोवाट जल-विद्युत् तैयार करना सम्भव हो सकता है। इसके साथ ही जलविद्युत् की शक्ति कोयले और तेल की शक्ति से कमखर्चालु है तथा कोयले और तेल के साधन निश्चित व सीमित मात्रा में होते हैं। जलविद्युत् शक्ति का सबसे सस्ता साधन है और प्रकृति के कुदरती रूप से जलसाधन की कुछ बनावट भी हमारे यहाँ ऐसी है कि जहाँ कोयला वगैरः का साधन नहीं है उन जगहों में जल-साधन बड़ी मात्रा में हैं तथा सिंचाई के साधनों के साथ-साथ हम बिजली उत्पादन का प्रबन्ध भी कर सकते हैं अतः इसका तेजी से विकास देश की समृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे विकासशील देश आज उत्पादन में या आर्थिक क्षेत्र में इसके जरिये बहुत आगे बढ़ गये हैं।

इसके अतिरिक्त परमाणुशक्ति भी बिजली प्राप्त करने का एक और साधन है। यह साधन ऐसे प्रदेशों के लिए सिद्ध हो सकता है जो नदियों तथा कोयले की खानों से बहुत दूर है। भारत में अगस्त १९५६ ई० में बम्बई के पास ट्राम्बे में परमाणु शक्ति उत्पन्न करने के लिए पहला परमाणु यन्त्र लगाया जा चुका है। परमाणु शक्ति उत्पन्न करने के लिये यूरेनियम और थोरियम की आवश्यकता होती है।

यह भी काफी खर्चीली होती है परन्तु इससे हमें और भी तेज गति से कार्य करने की क्षमता प्राप्त होती है। यूरेनियम और

थोरियम के हमारे यहाँ पर्याप्त भण्डार हैं। यह इसके लिए अच्छी चीज है। अतः यह आशा है की जा सकती है कि आगामी कुछ वर्षों में देश में परमाणु शक्ति से भी बिजली उत्पन्न की जाने लगेगी। अतः आवश्यक है कि देश के आर्थिक विकास के लिये बिजली का विकास बहुत आवश्यक है। परन्तु हमारे इस विशाल देश में योजना के अधीन पर्याप्त मात्रा में विकास नहीं हो रहा है। बिजली के विकास के लिये निम्नलिखित बात ध्यान देने योग्य है।

(१) भारत गाँवों का देश है। आज गाँव और कस्बों में बिजली की अत्यन्त आवश्यकता है। आज के विकासशील युग में कस्बों और गाँवों में बिजली का न होना उनके पिछड़ेपन की खास निशानी है। अधिकतर बिजली का विकास शहरों में किया गया है गाँवों में बहुत कम। गाँव में बिजली का विकास होने से उनके समय की बचत होगी। शारीरिक परिश्रम कम होगा। खेती वगैरः का उत्पादन बढ़ेगा। गाँव की आर्थिक हालत सुधरेगी।

(२) बिजली के विकास के लिए आवश्यक है कि इसके फिटिङ्ग वगैरः के लिए इस काम के ट्रेण्ड कारीगर हों क्योंकि यह हर व्यक्ति का कार्य नहीं। इससे अधिक लोगों को दस्तकारी का कार्य मिलेगा तथा लोगों का काम समय पर और बचत से हो सकेगा।

(३) आज देश में बिजली के सामान की काफी कमी है और कमी की वजह से वह नीचे दर्जे का तथा अधिक कीमत का है। अतः आवश्यक है कि लोगों को इस तरफ प्रोत्साहित किया जाये और इसके कारखाने वगैरः ज्यादा संख्या में स्थापित किए जायें ताकि सामान भी पूरी मात्रा में मिल सके और पैसे भी ठीक लगें, इसलिये देश के आकार को देखते हुए तथा जब

कि आज हम बिजली को इतना प्रयोग में लाने लग गये हैं कि रेडियो चलाना, बिजली के पंखे, सिनेमा, खाने-पीने का सामान, कपड़ों पर लोहा करना, आभूषण वगैरः पालिश के बनाना तथा छोटे-बड़े उद्योग-धन्धे, बिजली से चलनेवाली रेलें वगैरः हर दिशा में बिजली का प्रयोग हो रहा है। इसलिए इतने बड़े विशाल देश में जहाँ करीब ५ लाख गाँव हों बिजली का विकास तेजी से करना बहुत आवश्यक है। बिजलीवाले नगरों और गाँवों के प्राप्त आँकड़ों के अनुसार कुल संख्या १९५०-५१ में केवल ३७०० थी। १९६०-६१ ई० में यह बढ़कर २३००० हजार हो गयी थी। तीसरी योजना के अधीन यह और बढ़कर १९६५-६६ में ४३००० हजार कर देने का लक्ष्य रखा गया था। अब हम देख सकते हैं कि इतने विशाल देश में इस गति से चलना कहाँ तक ठीक है। इसलिए आवश्यकता है कि इस गति को और तीव्र किया जाये।

———

मनोरंजन कार्य-क्रम

यह प्राकृतिक रूप से स्वाभाविक है कि अन्य बातों की तरह जैसे खाने के लिए सुस्वादु मिष्टान्न, अन्न, मेवे, फल आदि की; पीने के लिए पेय पदार्थ, रहने के लिए अच्छे हवादार मकान और पहरने के लिए कपड़े आदि की आवश्यकता होती है वैसे ही यह आवश्यक है कि मनोरंजन के लिये भी कुछ कार्य-क्रम अवश्य हों; अन्यथा हर प्रकार का सुख होते हुए भी हम नीरस जीवन में प्रविष्ट हो जायँगे। यह बात और है कि किसी व्यक्ति की रुचि कुछ होती है और किसी की कुछ और। यदि हम अन्वेषण करें तो देखेंगे कि कुछ लोग तो बचपन से ही किसी विशेष चीज में रुचि रखते हैं और कुछ लोग जहाँ जैसा वातावरण और संग मिलता है उसके अनुकूल हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न मनुष्यों में विभिन्न प्रकार की रुचियाँ मिलेंगी। कोई पुस्तकें पढ़ने में रुचि रखता है, कोई खेल में, कोई सिनेमा देखने में, कोई नशीली चीजों के सेवन में, कोई रेडियो सुनने में, कोई संगीत में, कोई देश-भ्रमण में रुचि रखता है।

परन्तु हमें विचार करके देखना चाहिए कि हमारे मनबहलाव का जो कार्य-क्रम है वह गलत रूप का तो नहीं है अथवा हम कुसंस्कार या दुर्व्यसन के कारण कहीं ऐसा रास्ता तो नहीं अपना रहे हैं कि जिससे हमारा स्वास्थ्य एवं पैसा बर्बाद हो। हम अज्ञान की तरफ अग्रसर तो नहीं हो रहे हैं। यदि ऐसा नहीं है

तो ठीक है, अन्यथा हमें यह रास्ता बदलना चाहिए। चाहे हम किन्हीं भी कारणों से इनकी तरफ बढ़े हों विचार करने के पश्चात् हर प्रयत्न से हमें उसे छोड़ देना चाहिए।

आधुनिक समय में मनोरंजन का सबसे ज्यादा प्रचलित रूप सिनेमा है। प्रायः हर व्यक्ति, विद्यार्थी, व्यापारी, मिल मजदूर, डाक्टर, वकील अधिकांश लोग सिनेमा देखते हैं। नित्य नई-नई फिल्में लगती हैं, प्रायः हर शहर में सिनेमा हैं। यह सर्वविदित है कि आज जो सिनेमाप्रणाली है वह हर दृष्टि से कितने गहरे पतन की तरफ ले जानेवाली है। विद्यार्थी-वर्ग को ही आप लें, प्रथम तो हमारा देश आर्थिक हालत से बहुत ही कमजोर है, यहाँ एक बच्चे को शिक्षित करना आर्थिक लिहाज से बहुत ही मुश्किल कार्य है। इसपर भी यदि विद्यार्थी सिनेमा आदि देखें तो कितना खर्च और बढ़ जाता है। यह सीमा केवल खर्च तक ही न रहकर आगे बढ़ जाता है। उसमें तरह-तरह के बढ़ते हुए यौवन में कुत्सित दुर्व्यसनों का बढ़ावा होना, फैशन-परस्ती बढ़ना, चरित्रहीनता, विषयों में प्रवृत्ति, स्वास्थ्य का दुर्बल होना, आँख की दृष्टि कमजोर होना, दिनचर्या व्यवस्थित न रहना। क्योंकि फर्ज किया जो रात को सिनेमा देखने जाते हैं क्या वे एक या दो बजे सिनेमा से आकर पूरी नींद ले सकेंगे और जब नींद पूरी नहीं होगी तो कब्ज आदि अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होंगी जिससे बुरे और उत्तेजनात्मक स्वप्न आयेंगे एवं शरीर में अनेक रोग व्याप्त होंगे। इसलिये सिनेमा देखना ठीक नहीं। इसी प्रकार से मिल मजदूर, व्यापारी वर्ग या दूसरे लोग सभी इसी प्रकार की फिजूलखर्ची की तरफ आकृष्ट होकर अपने आपको गलत रास्ते पर जाते दिखाई देते हैं। मिल मजदूर अपनी गाढ़े पसीने की कमाई इस प्रकार के सत्यानासी रास्ते पर चलकर बर्बाद करें,

इससे बढ़कर बेवकूफी की बात उनके लिए दूसरी नहीं हो सकती। पहले तो मिल की ड्यूटी ही कभी दिन की और कभी रात्रि की होती है जिससे स्वास्थ्य काफी खराब होता है उस पर सिनेमा में जाना तो अपने शरीर पर कुठाराघात करना है। इसी तरह व्यापारी, मुनीम तथा अन्य नौकरी पेशा के व्यक्ति जो दिन भर खटते हैं और रात को सिनेमा देखते हैं; यह मनबहलाव नहीं अपितु नितान्त गलत कार्य है। इसमें संदेह नहीं कि आज इस निर्धन देश का कितना पैसा सिनेमा में जाता है। एक-एक सिनेमा-गृह की इमारत दस-दस बीस-बीस लाख की लागत से बनी हुई हैं जब कि हालत यह है कि गाँवों के अन्दर बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक कमरा तक नहीं है। साथ ही बहुत से ऐक्टरों का इतना अधिक वेतन है जो हमारे यहाँ राष्ट्रपति के वेतन से अधिक है। और यह सब पैसा प्रायः ऐशो-इशरत, आरामतलबी, फैशनपरस्ती आदि में व्यय होता है। क्या इस प्रकार देश आगे बढ़ेगा या हम उन्नति कर सकेंगे ? कदापि नहीं कर सकते। इसलिये आवश्यकता है कि हम इस प्रकार के कार्यों से अपना मनबहलाव न करें।

इसके साथ ही यदि हम यह कहें कि सिनेमा में सब अवगुण ही अवगुण है तो यह भी ठीक नहीं। सिनेमा के सदुपयोग में गुण भी हैं परन्तु जो आधुनिक रूप और कार्य-क्रम है वह तो सत्यानासी ही है। इसमें क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है—

(१) सिनेमाओं का राष्ट्रीयकरण किया जाय।

(२) वे हीं फिल्म बनाई जायँ जो ऐतिहासिक, भौगोलिक सामाजिक ज्ञान - विज्ञानवर्धक तथा हर प्रकार से शिक्षाप्रद हों। कोई भी फिल्म अश्लील न हो।

(३) रात्रि के नौ बजे के पश्चात् कोई शो न हो।

(४) कोई भी नशीली वस्तु प्रयोग करके (शराब आदि) सिनेमा में न जाय। और न वहाँ पीने की व्यवस्था हो। सिनेमा-दर्शकों को आज्ञा हो कि वे कोई भी सिनेमा देखते हुए हो-हल्ला या गन्दे शब्दों का प्रयोग न करें।

(५) सिनेमा फिल्मों के लिए ऐसी कोई चीज आयात न की जाय जिससे विदेशी मुद्रा का नुकसान हो।

इसी प्रकार से नशीली तथा मादक वस्तुओं के सेवन से मन-बहलाव या आराम महसूस करना भी है। परन्तु वास्तव में ये सब अनावश्यक खर्चालु, शरीर के ह्रास कारक तथा तमोगुण प्रधान होते हैं। इनसे न तो कोई आराम ही मिलता है और न ये मनोरंजन की वस्तु हैं। यह ठीक है कि हम आदत से लाचार होकर इनका सेवन करते रहें। कुछ समय पहले चीन में अफीम का वहुत प्रयोग शुरू हो गया था बाद में वहाँ की सरकार को उसे कानूनी रूप से बन्द करना पड़ा। क्योंकि वहाँ इससे इतना नुकसान हुआ कि यदि इसको कानूनी रूप न दिया जाता तो चीन बर्बाद हो जाता। कितनी भूल और बेसमझी तथा बुरी आदत है कि हमारे यहाँ के मजदूर या किसान लोग अथक परिश्रम करने के बाद हुक्का या तम्बाकू का सेवन करते हैं क्या इससे कोई फायदा होता है ? कुछ नहीं। यह प्रयोग ऐसा ही है जैसे कोई थका हुआ ताँगे का घोड़ा हो और उसको चाबुक लगाकर फिर तेज किया जाय परन्तु वह ज्यादा देर न चल सकेगा। इसी प्रकार जितने भी उत्तेजक और मादक द्रव्य हैं वे सब हमारी बुद्धिनाशक, अनेक प्रकार के रोगोत्पादक और इन्द्रियों को क्षणिक उत्तेजित करनेवाले होते हैं। एक समय के पश्चात् ऐसा होता है कि वे बिल्कुल बेकार हो जाती हैं। शराब ने हमारा कितना पतन किया है। वे राजपूत क्षत्रिय लोग जो युद्ध में

शत्रुओं से लोहा लेते थे आज इस बुरी आदत के कारण धन और शरीर से कितने निर्बल हो गए हैं। आज उनकी नसों में वह रक्त नहीं रहा जो उनके पूर्वजों में था। इसी तरह गाँजा, सुल्फा, भंग, अफीम, चरस आदि किसी भी वस्तु का प्रयोग हमें न करना चाहिए। हाँ, इनको आवश्यकता होने पर औषध रूप में प्रयोग या सेवन किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

इसके अतिरिक्त तास, चौपड़ आदि खेलना भी एक बुरी प्रथा है। तास, चौपड़ खेलने से समय नष्ट होता है और साथ ही इनकी इतनी बुरी आदत पड़ जाती है कि लोग सोने, बैठने, खाने, पीने आदि तथा घरेलू कार्यों को भी छोड़ देते हैं, सबका सब समय इसी में बर्बाद कर देते हैं। कुछ लोग तो इसके पैसों की हार-जीत लगाकर जुआ का रूप बना देते हैं। इन सब बुरे व्यसनों से बचना अत्यावश्यक है।

स्वाध्याय—मनोरंजन का सस्ता, ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी साधन है जिनसे अपने कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध हो सके, ऐसे वेदशास्त्र, महापुरुषों के लेख, संस्मरण, वैज्ञानिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि का पठन-पाठन और भगवान् के ॐकार आदि किसी नाम या गायत्री का जप करना तथा अपने जीवन के अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। तैत्तिरीय उपनिषद् में ऋत, सत्य, तप, दम, शम, अग्नि, अग्निहोत्र, अतिथि, मनुष्य, प्रजा, प्रजन और प्रजाति—इन १२ प्रकार के कर्तव्यों में प्रत्येक के साथ 'स्वाध्याय-प्रवचनेच' दोनों शब्द लगाकर पढ़ने-पढ़ाने का महत्व प्रकट किया गया है।

मनु महाराज ने तो चारों आश्रमवासियों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संन्यास) के लिए स्वाध्याय को अनिवार्य दैनिक कर्तव्य बताया है। स्वाध्याय के बिना ज्ञान की प्राप्ति और अपनी

आत्मा को परमात्मा में स्थिर करना सम्भव नहीं है। जीवन-निर्माण के लिये यम-नियमों का विशेष महत्व है। नियम एक प्रकार से व्यक्तिगत कर्तव्य है और यम सार्वभौम धर्म है। योग-दर्शन में इन यम-नियमों का सुविस्तृत और सुन्दर वर्णन किया गया है। योग-दर्शन के साधनापाद में क्रियायोग का वर्णन किया गया है। वहाँ क्रियायोग के लिये बताया गया है कि तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान यह क्रियायोग है। इस प्रकार स्वाध्याय को योग का एक अनिवार्य अंग माना गया है। स्वाध्याय और योग दोनों को एक दूसरे के लिए अनिवार्य बताया है। योग से स्वाध्याय करे और स्वाध्याय से योग करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योग—इन दोनों की साधना से मनुष्य अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

परन्तु स्वाध्याय का क्या अर्थ है। किसी भी पुस्तक, पत्रिका आदि का पढ़ लेना मात्र ही स्वाध्याय नहीं है। स्वाध्याय से तात्पर्य है कि हम उन्हीं पुस्तकों आदि का अध्ययन करें जिनसे बुद्धि का विकास हो, जो हमें सत्कर्मों की तरफ प्रेरित करें, जिससे जीवन में आनेवाले विषाद और क्लान्ति के क्षणों को आनन्द और प्रसन्नता के क्षणों में परिणत करने की क्षमता हो तथा जो मोक्ष-मार्ग में प्रेरक हों। इस प्रकार के स्वाध्याय से हम वास्तविकता की तरफ अग्रसर होंगे और अपने ध्येय को प्राप्त कर सकेंगे। अन्यथा हम रास्ते से भटक जायँगे और खराब पुस्तकों के अध्ययन से हम बजाय सुधार के गलत रास्ते की तरफ चले जायँगे, जीवन अन्धकारमय, कामी, संकीर्णभावनापूर्ण तथा अशान्त हो जायगा। इसलिए स्वाध्याय सर्वसुलभ, सस्ता, यात्रा आदि में भी समय का सदुपयोगी, सन्मार्ग दर्शक तथा स्थायी प्रसन्नता प्रदान करता है। स्वाध्याय के बिना न कोई देश उठ

सकता है, न व्यक्ति; चाहे किसी भी तरह की उन्नति इष्ट हो, स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है।

इसके साथ ही आज जो गंदा, अश्लील, समय तथा धन को व्यर्थ नष्ट करने वाला साहित्य बाजारों में बिक रहा है। जिससे हमारी नव आगन्तुक पीढ़ी उच्छृङ्खल, कामुक, आलसी बनती जा रही है इसे कानूनी रूप से वन्द कर देना चाहिए।

स्वाध्याय से हमें वास्तविक और स्थायी आनन्द प्राप्त होगा जैसा कि वेद में कहा गया है—हे विद्वान्! उठो, जागो, अपने अन्दर दिव्य भावनाओं को धारण करने के लिये प्रभु से सर्वदा स्वाध्याय द्वारा भिक्षा माँगते रहो।

सामूहिक रूप से उपयोगी मनोरंजन कार्यक्रम :—

सामूहिक रूप से भी मनोरंजन के काफी उपयोगी साधन हैं। जैसे, सत्संग, गाना-बजाना, पर्व-मेले, तैराकी-व्यायाम, खेल-कूद, वन-बगीचा की सैर तथा तीर्थों की या अन्य यात्रा आदि। इस प्रकार से हम अपने समय की सुविधा तथा अर्थ-व्यवस्था के हिसाब से मनोरंजन कर सकते हैं। प्राचीन काल में इन चीजों का महत्व बहुत अधिक था। इन चीजों को यदि हम सात्विक वृत्ति से उपयोग करें तो इनसे हमें वास्तविक आनन्द की प्राप्ति के साथ-साथ अध्यात्मवाद तथा स्वास्थ्य की प्रेरणा एवं नीरोगता आदि प्राप्त होंगे। उदाहरणस्वरूप यदि हम दैनिक या साप्ताहिक सत्संग वगैरः में जाते हैं तो हमें वहाँ अच्छे-अच्छे उपदेशकों के उपदेश, महापुरुषों के जीवनचरित्र की व्याख्या, भजन, ध्यान, यज्ञ आदि कितनी चीजें पढ़ने, सुनने, मनन करने को मिलेंगी जिनसे हमें अध्यात्मवाद की प्रेरणा के द्वारा आत्मिक खुराक प्राप्त हो सकेगी जो आत्म-विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

इसी प्रकार गाना-बजाना भी एक उत्तम साधन है। गायन विद्या से जीवन सरस अथवा रसमय हो जाता है। सामवेद में गायन विद्या का बड़ा भारी महत्त्व बताया गया है। यह एक अत्यन्त उपयोगी कला है। गायन विद्या से तात्पर्य यह है कि हमारे गाने शुद्ध, सात्त्विक, देशभक्तिपूर्ण, वीररस, सात्त्विक हास्य रस, ओजस्वी, ईश्वर भक्ति आदि के हों। आज की तरह गंदे, अश्लील, असभ्य न हों। आजकल फिल्मी रिकार्ड एवं रेडियो आदि पर जो गाने गाये जाते हैं वे इतने अश्लील हैं कि उन्हें एक परिवार के सदस्य भाई, बहिन, बेटी, बहू वगैरः एक साथ बैठकर नहीं सुन सकते। इस प्रकार के गाने न हों। प्राचीन काल में राजे-महाराजाओं के यहाँ राजकवि होते थे जो कि समयानुकूल कविता सुना-सुनाकर सत्प्रेरणा प्रदान करते थे। इसलिये गायन-विद्या से हम काफी उपयोगी मनोरंजन प्राप्त कर सकते हैं।

इसी प्रकार से समय-समय पर आनेवाले पर्व, मेला आदि—जो कि हमारी एकता, श्रद्धा और निष्ठा के प्रतीक हैं—इनसे भी हमें काफी मनोरंजन प्राप्त होता है। हाँ, इनमें जो अन्ध श्रद्धा की चीजें हैं वे न हों और हम इनके स्थान पर राष्ट्रीय पर्व मनायें। १५ अगस्त और २६ जनवरी को गाँव-गाँव और शहर-शहर में मेले के रूप में उत्सव मनाये जायँ। जहाँ भाषण, उपदेश खेल-कूद, नाटक, स्वाधीनता-संग्राम आदि की झाँकियाँ दिखाई जायँ। इसी तरह तैराकी, व्यायाम, खेल-कूद आदि से हमारा मनोरंजन भी होता है और शरीर भी स्वस्थ रहता है। कोई भी यात्रा करना ज्ञानवर्धक, प्रकृति के सौंदर्य का दर्शन, ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी आदि प्राप्त करने से हमें कितना आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये आवश्यक है कि हम ऐसा कोई भी साधन मनोरंजन का न अपनायें जो हमारे समय, धन और शरीर की

शक्ति को व्यर्थ नष्ट करनेवाला हो, अपितु ऐसे साधन खोज निकालें और अपनाएँ जिनसे हर व्यक्ति गरीब-अमीर आसान रूप से मनोरंजन प्राप्त कर सके।

शिकार खेलना—यह भी मनोरंजन का एक साधन है। परन्तु इसका प्रचलन कुछ गलत रूप से चला हुआ है। पूर्व समय में राजे-महाराजे शिकार खेलते थे और उनको इसका बड़ा शौक होता था। परन्तु जिस समय इसका प्रचलन हुआ था उसका कारण यह था कि हिंसक पशु शेर, चीते, जंगली हाथी आदि जो किसी कारण से इतने उन्मत्त हो जाते थे कि वे नजदीक की बस्तियों में आकर जन-धन-पशु आदि का नुकसान करने लग जाते थे तब उस बस्ती के लोग अपने राजा से प्रार्थना करते थे कि अमुक हिंसक पशु हमारे यहाँ आता है और वह गाँव में नुकसान करता है तब राजा लोग उस पशु का शिकार करते थे। बाद में यह एक प्रथा हो गई। राजे-महाराजे पूरे दल-बल सहित जाने लगे और मंच बनाकर कोई भैंसा या बकरा बाँधकर क्षणिक कृत्रिम मनबहलाव के लिए अकारण ही हिंसा पर उतारू होकर शिकार करने लगे जो आज भी कहीं-कहीं कुछ अंशों में प्रचलित है। इस प्रकार से हमें शिकार नहीं करना चाहिये। शिकार उसी पशु का किया जाय जो किसी कारण उन्मत्त होकर कोई नुकसान पहुँचाता हो।

इसके साथ ही शिकार के प्रचलन से मांसाहार को भी बढ़ावा मिला है। जो मनुष्य की प्राकृतिक खुराक नहीं है। मानव हिंसक पशु का शिकार करते-करते उन मृग आदि पशु-पक्षियों का भी शिकार करने लगा जो कि वन में बिहार करते हुए प्रकृति की शोभा के प्रतीक होते हैं। अतः ऐसा न किया जाय।

इस प्रकार यदि हम अकेले या सामूहिक रूप से जो भी मनोरंजन करें वह शुद्ध, सात्त्विक, सामर्थ्यानुकूल हो ताकि उसे करने से हम आरोग्यता, प्रेम, उत्साह आदि प्राप्त कर सकें। ऐसा न हो कि आज की तरह प्रायः हम अनैतिकता, अयोग्यता आदि को अपनावें।

भिक्षा-वृत्ति

प्राचीन समय में भिक्षा का रूप आज की भिक्षा के रूप से भिन्न था। उस समय वर्णाश्रम के हिसाब से ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम होते थे। इस प्रकार जो ब्रह्मचारी होते थे वे ऋषिमुनियों के पास आश्रमों में रहते थे ज्ञान प्राप्त करते थे तथा भिक्षा लाकर उदरपूर्ति करते थे। इसके अतिरिक्त दूसरे वे ही लोग भिक्षा माँग कर लाते थे जो बिल्कुल असहाय या शरीर से आजीविका कमाने योग्य नहीं थे। उस समय भिक्षुओं को लोग आदर की दृष्टि से देखते थे। यहाँ तक था कि यदि किसी गृहस्थ के द्वार पर कोई भिखारी आ जाता था और उस गृहस्थ के पास चाहे एक समय का ही भोजन होता तब भी वह स्वयं भोजन छोड़कर उसको खिला देता था। कोई इस प्रकार का भिखारी नहीं था जो अकारण ही भिखारी बन गया हो। वे भिखारी सही रूप में भिखारी ही होते थे। साथ ही यह नियम था कि वे आवश्यकता से अधिक भिक्षा संग्रह नहीं करते थे। वे उतनी ही भिक्षा लाते थे जितने की उनको आवश्यकता होती थी। इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं कि यदि उनके पास एक समय का भोजन है तो उन्होंने उस समय का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। उनमें संग्रह की आदत ही नहीं थी। वे केवल उदरपूर्ति के उद्देश्य से ही आहार करते थे। उनका काफी समय ध्यान, भजन वगैरः में ही व्यतीत होता था। एक समय का वर्णन है

राजा अश्वपति जंगल में एक साधु के पास गये और उन्होंने साधु से भोजन करने के लिए कहा। साधु ने भोजन करने से इन्कार कर दिया। इस पर महाराज ने सोचा कि शायद महात्माजी को यह शक है कि इनके राज्य में कुछ कमी या दोष है इसलिए भोजन स्वीकार नहीं कर रहे हैं। इस पर राजा ने महात्मा से कहा—महात्मन्, मेरे राज्य में न तो कोई चोर है न कोई जार और न ही कोई बुरे आचरण वाली नारी है। फिर आप भोजन के लिए इन्कार क्यों कर रहे हैं। महात्मा ने कहा, राजन् हम आपका भोजन इसलिए इन्कार नहीं कर रहे हैं कि आपके राज्य में कोई खराबी है। हम तो इसलिए अस्वीकार कर रहे हैं कि हमारे पास अभी एक समय का भोजन शेष है इस पर राजा को बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने उसे अगले पहर का निमन्त्रण देकर विदा ली। अब आप देखें कि उस समय के भोजन का क्या स्वरूप था। वे लोग इन्द्रियों के दास नहीं थे। वे केवल क्षुधा-शान्ति के लिए ही भिक्षा लाते थे। वही भिक्षा ग्रहण करते थे जो आदरपूर्वक दी जाती थी। परन्तु अब हम देखते हैं कि आज की परिस्थिति पूर्व समय से बिल्कुल भिन्न है। आज लोगों ने इसे एक पेशा बना लिया है। पहले लोग जहाँ असहाय होकर, अपाहिज होकर या किसी प्रकार उदरपूर्ति न होने की वजह से भिक्षा लाते थे वहाँ आज लोग हर प्रकार से समर्थ होकर भी—जिनके शरीर में कोई दोष नहीं—भिक्षा की याचना करते देखे जाते हैं। दूसरे समृद्धशाली देशों में भी भिक्षावृत्ति दिखाई पड़ती है परन्तु वह हमारे देश के समान ढोंग रचकर नहीं की जाती वहाँ भिक्षावृत्ति बहुत ही कम है। परन्तु कुछ देशों में यह कानूनी तौर से बन्द कर दी गई है। यह चाहे जहाँ किसी भी रूप में हो; कहीं भी होनी

नहीं चाहिए। क्योंकि इसके अन्दर आहिस्ता-आहिस्ता दोष पनपने लग जाते हैं। उनकी हरकतें बड़ी खराब हो जाती हैं। इनका एक बड़ा गिरोह हो जाता है जिससे समाज में एक बड़ी समस्या बन जाती है। समाज को काफी नुकसान होता है। हम देखते हैं कि आज के अंगहीन, कोढ़ी भिखारी दिन भर माँगते फिरते हैं और एक-एक पैसा इकट्ठा करके काफी रुपया जमा कर लेते हैं। यहाँ तक कि कइयों के पास तो बैंकों में जमा तक मिलते हैं। वे न तो स्वयं ही अपने जीवन में इनको काम में लाते हैं और न किसी और को ही देते हैं। यह बैंकों में ही अन्त समय में रह जाता है। इसके साथ ही कुछ भिखारी इस प्रकार के हैं जो दुर्व्यसनों या बुरी आदतों के कारण भिक्षा माँगने लग गये हैं। वे दिन में जो पैसा, अन्न, कपड़ा तरह-तरह के प्रपंच, स्वांग रचकर लोगों से इकट्ठा कर लेते हैं उसे रात को बुरे कार्यों में बरबाद करते हैं। इसी प्रकार कोई भक्त रूप में, कोई भगवे कपड़े पहनकर, कोई कोढ़ी या भिखारी बनकर या अन्य किस्म के अनेक भेषों में दुनियाँ को ठगते और खाते हैं। घर से झगड़ा हुआ और मोगा बन गया। कपड़े रँगे और माँगना-खाना शुरू कर दिया। इस प्रकार से वे स्वयं का स्वाभिमान खोकर दुनियाँ का नुकसान करते हैं और जीवन व्यर्थ बरबाद करते हैं। इसके साथ ही उनमें बहुत से गृहस्थी भी करते हैं जो कि समाज में काफी नये भिखारियों की संख्या बढ़ाते रहते हैं। अब आप देखें कि जब साधारण आदमी ही अपने बच्चों की शिक्षा, पालन-पोषण अच्छी तरह से नहीं कर पा रहे हैं और उनमें से काफी बेकार घूमते हैं तब इन भिखारियों की सन्तान समाज पर कितना भार और कितनी परेशानी फैलायगी! यह समाज पर कलंक ही तो है। इन सबको देखते हुए इसमें

कानूनी रूप से काफी सुधार की आवश्यकता है—

(१) सब प्रान्तों को तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों में ऐसा नियम बनाया जाय कि उनके यहाँ जो भिखारी शरीर से बिल्कुल ठीक हैं उनको काम पर लगने का हुक्म दिया जाय और जो अन्धे, लँगड़े, गूँगे, बहरे आदि हैं उनको सरकार की तरफ से कार्य में लगाया जाय ताकि वे अपना जीवन-निर्वाह कर सकें। क्योंकि आजकल ऐसे साधन आविष्कृत हैं कि अन्धे आदमियों को भी काफी काम दिया जा सकता है। इसके अलावा जो किसी प्रकार का कार्य नहीं कर सकते उनके लिए सरकार अपनी तरफ से रोटी कपड़ा आदि का प्रबन्ध करे।

(२) जिन भिखारियों को सरकार काम में लगाए उनके अन्दर जो अनेक प्रकार के दुर्व्यसन हैं उन्हें छोड़ने के लिए सब प्रकार से प्रयत्न करे। इस प्रकार उनका खर्च कम और सादा जीवन हो सकेगा। उनके अन्दर स्वाभिमान बढ़ेगा। साथ ही वे व्यक्ति जो पागल हो गये हैं या आवारा हैं, जिनको न खाने की सुध है न पहनने की, उनको सरकार उनके परिवार में या पागलखाने में भेजे, ऐसा नियम होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कोई भी व्यक्ति साधु भेष में या अन्य रूप में कैसी भी तरह भिक्षावृत्ति न कर सके।

इस प्रकार भिखारियों की संख्या दिन-प्रति दिन कम होती चली जायगी और इससे जनता की काफी परेशानी तथा चोरी वगैरः से बचाव हो सकेगा। इसे एक बार कार्यान्वित करने में अवश्य कुछ परिश्रम और खर्च करना पड़ेगा परन्तु बाद में सरकार तथा जनता को इससे बहुत लाभ होगा। समाज के अन्दर आज जो अयोग्य और निकम्मे व्यक्तियों की वृद्धि हो रही है उससे छुटकारा मिल सकेगा। इसलिये यह आवश्यक है कि इस संबंध में शीघ्र ही कानून लागू किया जाय।

गो-समस्या

"गौ आदि पशुओं के नष्ट हो जाने से राजा और प्रजा दोनों का नाश हो जाता है।" (महर्षि स्वामी दयानन्द)

"जो गाय की रक्षा नहीं कर सकता वह सच्चा हिन्दू नहीं है।"

(महात्मा गान्धी)

भारतीय संस्कृति के अनुसार हमारी तीन माताएँ हैं। प्रथम जन्म देनेवाली माता, दूसरी गौमाता और तीसरी भारत माता। यदि हम इन तीनों माताओं की रक्षा और आदर करते हैं तो हमारा राष्ट्र फले-फूलेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। अन्यथा हम पतन की ओर जा रहे हैं और यह पतन रुकेगा नहीं।

आज सारे विश्व में करीब ५० करोड़ पशु हैं। इनमें से लगभग आधे अर्थात् २५ करोड़ अकेले भारतवर्ष में हैं। इन २५ करोड़ पशुओं में गाय, बैल, भैंस, ऊँट, घोड़ा, हाथी, भेंड़, बकरी आदि सब हैं। अब इनमें अधिकतर अर्थात् करीब १० करोड़ गाय और बैल हैं। शेष अन्य १५ करोड़ हैं। ये सब अपनी-अपनी जगह प्रत्येक काम लायक और फायदेमंद हैं। परन्तु गाय इनमें सबसे अधिक उपयोगी मानी गई है। शास्त्रों में गाय को कामधेनु माना गया है। गाय का दूध बल बुद्धिवर्धक, तेज तथा स्वास्थ्यवर्धक और अत्यन्त जीवनोपयोगी है। इसलिये गाय को मारना केवल महापाप ही नहीं अपितु हमारे स्वास्थ्य और राष्ट्र के लिये घातक भी है। वैसे तो

जीवमात्र में चींटी से लेकर हाथी तक किसी भी जीव की जान-बूझकर हत्या करना दोष है। हमारे यहाँ प्रत्येक सद्-गृहस्थ के लिये दैनिक पंच महायज्ञ माने गये हैं। (१) ब्रह्मयज्ञ (२) देव यज्ञ (३) पितृ यज्ञ (४) अतिथियज्ञ (५) बलिवैश्यदेव यज्ञ। इन चारों यज्ञों से तात्पर्य है—सन्ध्या, हवन, माता-पिता की सेवा और विद्वान् दोनों का सम्मान करना। इसी प्रकार बलिवैश्यदेवयज्ञ का अर्थ है कि कुत्तों, कंगालों, कुष्ठों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों में लिये अन्न का छठाँ भाग देना चाहिए ताकि उनके जीवन की रक्षा हो सके। जब चींटी, कृमि आदि की रक्षा के लिए मनुष्य का प्रयत्न करना फर्ज है तब गाय जैसी कामधेनु माता का संहार करना अपने कर्तव्य से पतित होना तथा अपने हाथों अपने पैरों पर कुठाराघात करना है। इसके अतिरिक्त आज गाय का प्रश्न एक गम्भीर प्रश्न बन गया है और यह सदियों से चला आ रहा है। न जाने कितनी बार इसके खिलाफ आन्दोलन, संघर्ष आदि होते रहे हैं परन्तु यह समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

यह आन्दोलन काफी लम्बे समय से चल रहा है और जब तक सरकार कोई ठोस कदम न उठायेगी तब तक यह आन्दोलन चलता ही रहेगा। जब तक गौहत्या बन्द नहीं होगी तो यह जनसाधारण की भावना का अनादर करना ही होगा। गौहत्या की समस्या आज की समस्या नहीं। जब इस देश में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने राजवंश स्थापित करके अपनी साम्राज्य-परम्परा स्थापित की तब भारत पर सुख और शान्ति से राज्य करने के उद्देश्य से दूरदर्शी बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने राजाज्ञा द्वारा अपनी शासन-सीमा में गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया, किन्तु औरंगजेब ने अपने राज्य में

गोहत्या प्रचलित कर दी, महाराणा राजसिंह ने उसका घोर विरोध किया और उसी समय छत्रपति शिवाजी एवं गुरु गोविन्द-सिंह ने औरंगजेब के विरुद्ध इतना भीषण विद्रोह शुरू किया कि औरंगजेब सुख की नींद न सो सका। बाद में हमारे ऊपर अंग्रेजों का शासन आया। इस समय अंग्रेजों ने एक प्रकार की बन्दूकों के कारतूस बनाये जिनमें गाय की चर्बी लगी होती थी और यह दाँतों से ही खोला जा सकता था। जब इस रहस्य का पता श्री मंगल पाण्डेय को लगा तो उसने भारतीय सैनिकों से कहा कि अंग्रेजों का राज्य हुआ सो हुआ, अब ये हमारे धर्म को भी भ्रष्ट करना चाहते हैं। हम दाँत से जो कारतूस खोलते हैं इसमें गाय की चर्बी है। जब यह ज्ञात हुआ तो देखते-देखते भारतीय सैनिकों ने विद्रोह शुरू कर दिया और क्रान्ति की चिन-गारियाँ सारे भारतवर्ष में फैल गईं। फलस्वरूप उस १८५७ के विद्रोह में हजारों अंग्रेज मारे गये और काफी भारतीयों को गोली के घाट उतारा गया।

इसी प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध के समय में भी जब अंग्रेज सैनिकों को मांस की आवश्यकता हुई तो उन्होंने रतोना नामक स्थान में एक गोहत्या-गृह बनवाया जिसकी लागत ५० लाख थी। परन्तु जब वहाँ के हिन्दुओं को यह पता लगा तो वे अपने-अपने हथियार लेकर वहाँ पहुँच गये और उसको तहस-नहस कर दिया। इसके बाद जब अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया और हम दासता की जंजीरों में जकड़ गये। उस समय हमारे यहाँ बड़े-बड़े सुधारक और समाजसेवी महापुरुष हुए जिन्होंने उस समय आवाज बुलन्द की कि गौ हत्या बन्द हो। सर्वप्रथम महर्षि स्वामी दयानन्द हुए जिन्होंने 'गो करुणानिधि' नाम की पुस्तक लिखी। उन्होंने इस पुस्तक में गाय का और उसके

वंश का महत्व वताया और पहले-पहल रिवाड़ी में गोशाला खुलवाई। बाद में महामना पं० मदनमोहन मालवीय, कलकत्ता के श्री हासानन्दजी, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला हरदेवसहाय आदि-आदि द्वारा समय-समय पर अनेक प्रयत्न किये गये और कहा गया कि गोहत्या कलंक है और यह वन्द होनी चाहिये। इससे अनेक प्रकार के झगड़े-फसाद होते रहे। अंग्रेजों ने कई बार चेष्टा की और कई जगह गोहत्यागृह बनवाये परन्तु उन आन्दोलनों के कारण उन्हें बन्द करना पड़ा। परन्तु फिर भी कई जगह गोहत्या होती रही। इसके पश्चात् हम आजाद हुए और आजादी के बाद अन्य समस्याओं की तरह (जैसे शिक्षा, गरीबी, कृषि और सुरक्षा आदि की समस्याएँ थीं) गोहत्या-समस्या भी हमारे सामने प्रमुख-रूप से थी। परन्तु सरकार ने इस ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया। हमारे नेता जो आजादी से पूर्व गोहत्या के खिलाफ थे वे भी अब मौन साधे रहे और इसके लिये कोई नवीन कार्यक्रम नहीं बनाया गया। चाहे इसमें कुछ भी कारण रहे हों—जैसे हमारे यहाँ मुसलमान तथा अन्य मांसाहारी आदमी हैं वे अधिकतर मांसाहार करते हैं। जूतों या चमड़े के अन्य चीजों की अनेक बड़ी कम्पनियाँ हैं जिनके लिये चमड़े की आवश्यकता होती है। विदेशों के लिये काफी मांस बाहर भेजा जाता है जिससे हमें विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है। देश में चारे-दाने का अभाव भी है। हमारे यहाँ जब से हमें आजादी मिली तब से ही हम खाद्यान्न का आयात कर रहे हैं तथा कुछ बड़े गोहत्यागृह के मालिकों के कारण यह पाप हो रहा है। इस प्रकार से कुछ भी कारण रहे हों अथवा हैं, परन्तु गोहत्या जारी रहना एक अशोभनीय, जनसाधारण की भावना का हनन तथा देश के लिए घातक है। ये जो फायदे कुछ लोग

समझ रहे हैं या नजर आ रहे हैं ये क्षणिक और बहुत तुच्छ हैं बजाय इन फायदों के हर दृष्टिकोण से नुकसान कहीं बहुत ज्यादा है।

जब सरकार की तरफ से इसके लिये बराबर उदासीन नीति रही तो जनसाधारण में इसके लिए काफी क्षोभ उत्पन्न हो गया और एक लम्बे समय से दबी चली आ रही भावना के अन्दर एक भयंकर विस्फोट हुआ। वे अपनी भावना को और अधिक नहीं दबा सके और वह भावना एक उग्र आन्दोलन के रूप में पिछले दिनों साकार रूप में प्रकट हो गई। इस आन्दोलन का काफी उग्र रूप हुआ और इसमें सक्रिय रूप से आर्यसमाज, सनातनधर्म, जैनी आदि-आदि भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी गो-भक्त लोगों ने भाग लिया जिनमें प्रमुख रूप से अग्रणी नेता निम्न-लिखित थे—

सर्वश्री स्वामी रामचन्द्रजी वीर जिन्होंने सर्वप्रथम आमरण अनशन शुरू किया और जो पहले भी काफी बार अनशन कर चुके हैं। इनके पश्चात् इनके पुत्र श्री धर्मेन्द्रजी, शृंगेरी मठ के पूज्य जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्यजी महाराज, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज ने आमरण अनशन किया। इसके साथ ही श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्री, स्वामी रामेश्वरा-नन्द, लाला रामगोपालजी शालवाले, श्रीओमप्रकाशजी त्यागी, श्रीशिवकुमारजी शास्त्री तथा दूसरे गणमान्य नेताओं ने पुरजोर आवाज बुलन्द की और जेल-यात्रा की। इस प्रकार से यह आन्दोलन चल रहा है।

बहुत से भाइयों का यह भी विचार है कि चुनाव के समय में ही यह प्रचार किया जाता है और इसमें राजनैतिक दाँव-पेंच तथा स्वार्थ है। हो सकता है कि कुछ अंशों में ऐसा हो और

कुछ विरोधी पार्टियाँ इस प्रकार की सामग्री या आश्रय लेकर चलती हों परन्तु हमें यह मानना पड़ेगा कि यह जनसाधारण की आवाज है और यह आवाज साधारण देर-सवेर अवश्य ही सुननी पड़ेगी। अन्यथा बेचारी अनजान, मूक गऊओं का जो लंबे अर्से से हमारे अल्प स्वार्थ के कारण कुर्बान होती आई हैं—अभिशाप हमें लग सकता है और हम सब विनाश की तरफ चले जा सकते हैं। इसलिए आवश्यकता है कि अन्य समस्याओं की तरह यह भी एक प्रमुख समस्या मानी जाय और इसके लिए भरपूर चेष्टा की जाय। और गोहत्या करनेवाले सभी कसाईखाने अविलम्ब बन्द कर दिए जायँ। इसके साथ ही आज अखिल भारतीय स्तर पर जो आन्दोलन चल रहा है जिसका केन्द्र से अनुरोध है कि गोहत्या समस्त भारत में बन्द की जाय। उस संबंध में भी हमें विचार करना चाहिये। गोहत्या आन्दोलन की यह बात तो ठीक है कि गोहत्या पूर्ण रूप से बन्द हो। परन्तु गोहत्या बन्द कराने का या गौ की रक्षा का क्या यह सही रूप है ? मेरी राय में यह ठीक नहीं। इससे तो सरकार और जनसाधारण के बीच एक संघर्ष चलता रहेगा और हमारा समय कुर्बानी में तथा इन सबके इन्तजाम के लिये सरकारी पैसे का व्यय होता रहेगा और हम जो अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं उसे नहीं प्राप्त कर सकेंगे। इसके लिये हमारी केवल यह धार्मिक श्रद्धा ही काम नहीं दे सकती कि गोहत्या करना पाप है और यह बन्द होनी चाहिए। इसके लिये हमें कुछ क्रम-बद्ध रूपरेखा बनाकर वर्त्तमान परिस्थितियों को अवलोकन करते हुए चलना पड़ेगा। फर्ज किया कि यह आन्दोलन और उग्र रूप धारण कर ले और सरकार पर ऐसा दबाव डाले कि वह सम्पूर्ण गोहत्या बन्द कर देवे तो फिर इसके बाद यदि उनको पूरा चारा-

दाना और पालन-पोषण नहीं मिला और वे भूख आदि से तड़प-तड़प कर सड़कों और गलियों में मरीं तो क्या हमारा यह आन्दोलन सफल हुआ ? इसलिए आवश्यक है कि सरकार और जनता इसमें परस्पर सहयोग से और सहभावना से काम लें और इसका यथोचित उपाय करें। अब जो आन्दोलन है इसमें यही होता आ रहा है कि दमनचक्र चलता है और राष्ट्र की करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है बात वहीं की वहीं रहती है। इस प्रकार काम करने से कोई फायदा नहीं।

इसलिये इस संबंध में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं—

आन्दोलनकारियों से नम्र निवेदन—

(१) आपके जो M. P. चुनकर गये हैं या कांग्रेस के इस विचारधारा के जो M. P. गोहत्या के विरोध में हैं वे सब मिलकर केन्द्र में यह आवाज बुलन्द करें कि संविधान में जो गौ के लिये अटकाव की बात है वह संशोधित हो।

और आप लिखित रूप से भी अपनी गौरक्षा समिति की तरफ से संशोधन की चेष्टा करें।

(२) कोई भी व्यक्ति भैंस न रक्खे उसके स्थान पर गाय रक्खे।

(३) आन्दोलन उन्हीं चार प्रान्तों में किया जाय जहाँ गोहत्या अभी बन्द नहीं हुई है। जैसे, आन्ध्र, आसाम, बंगाल, गुजरात। पहले यह लिखित चेष्टा की जाय कि गोरक्षा-समिति की तरफ से सारे भारत से जत्थे बनकर जायँ। आप इसे लागू करें यदि वे न करें तो वहाँ की सरकार को बाध्य किया जाय।

(४) जनता में मांस न खाने का प्रचार किया जाय क्योंकि आज लोग मांसाहार को तरफ तेजी से बढ़ रहे हैं। यह कार्य

साहित्य के जरिये अथवा प्रचार के द्वारा किया जाय। यह शिक्षा स्कूलों से ही शुरू हो। यदि लोग मांसाहार की तरफ बढ़ेंगे तो क्या केवल कानून से गोरक्षा हो जायगी ? नहीं होगी। इसलिये मांस खाने की प्रवृत्ति रोकी जाय।

(५) गाँव-गाँव और शहर-शहर में गौशालायें तथा डेरी फार्म अपने चन्दे से या सरकार के जरिये अधिक से अधिक खोले जायँ। जहाँ पर इनका पूर्णरूप से पालन-पोषण हो सके। इनके लिये चरागृह तथा कृषि फार्मों का पूर्ण प्रवन्ध हो। हर गाँव में गौओं के लिए गोचर-भूमि छोड़ी जाय।

(६) कोई भी पशु आवारा न छोड़ा जाय चाहे वह दुधारू हो अथवा न हो। जहाँ पर जिस प्रान्त में गोहत्या बन्द हो वहाँ कोई हत्या हो तो उसकी तुरन्त रिपोर्ट की जाय।

(७) जीवित पशु के चमड़े का बिल्कुल दैनिक कार्यों में प्रयोग न हो और जिन कम्पनियों या फैक्टरियों में जीवित चमड़े की चीजें बनती हों उन्हें बन्द किया जाय।

(८) जहाँ तक सम्भव हो हर गाँव और शहर में जो परिवार गाय रख सके, वह अवश्य रखे। यह प्रत्येक के लिये तो सम्भव नहीं क्योंकि आजकल शहरों में तो ऐसी हालत है कि वहाँ कारोबार के लिये ही स्थान नहीं। इसलिये कुछ बड़े शहरों को छोड़कर जहाँ यह सम्भव हो वहाँ अवश्य गायें रक्खी जायँ इससे गौवंश की रक्षा भी होगी और जनता स्वयं भी काफी बीमारियों से बचकर आरोग्यता प्राप्त कर सकेगी।

(९) जो पार्टी या व्यक्ति इसमें राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करना चाहें उनसे गो-रक्षा-समिति सावधान रहे। इसके पदाधिकारी वे व्यक्ति हों जो स्वयं या पार्टी का स्वार्थ साधने का प्रयत्न न करें

और समय-समय पर सरकार को उन बातों से अवगत करायें तथा आवश्यक सुझाव दें।

(१०) जो गाय किसी कारण ठीक रूप से दूध न दे सके या कम देती हो उसको बाँझ करके उससे बैल आदि की जगह दूसरा काम लिया जाय ताकि आज जो काफी गायें बेकार हो जाती हैं और हम अनुपयोगी समझकर आवारा छोड़ देते हैं, वे काम में लगे। साथ ही जो लँगड़ी-लूली, बैल गायें हों उनके लिये गोशाला में पूरा प्रबन्ध हो। और हम ऐसे उपाय खोजें कि यह लिमिट में ही रहें अधिक न बढ़ें और गाएँ इस प्रकार रखी जायँ कि उन पर जो खर्च आये उससे अधिक आय प्राप्त हो।

(११) हम इतने आलसी और आरामतलब हो गये हैं कि हम एक गाय को रखने के कार्य में भी भार महसूस करते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसको हम माता मानते हैं और जो हमारे जीवन के लिए इतनी उपयोगी है उसकी थोड़ी सेवा से हम कितना हिचकते हैं। हम मकान में अन्य कार्यों के लिए जगह बना लेंगे परन्तु एक गऊ रख सकें ऐसा स्थान नहीं बना पाते। विवाह-शादियों में काफी दहेज दे देंगे—जो अनावश्यक है—परन्तु गोदान नहीं करते। इसलिये आवश्यक है कि प्रत्येक विवाह में गरीब-अमीर सब और दहेज न देकर सामर्थ्यानुसार एक दो या अधिक गायें दें। हम चाय, सिनेमा, तास-चोपड़, बीड़ी-सिगरेट, शराब, मांस आदि या दूसरे ऐसे ही कार्यों में समय और पैसा बर्बाद कर देंगे परन्तु एक गाय नहीं रख सकते। हमारी धार्मिक श्रद्धा भी इतनी गिर चुकी है कि औरों को तो क्या आप एक वृद्धा माता से ही गौ लाने की बात पूछिये जो हमेशा मन्दिर में जाती हैं गऊ में श्रद्धा रखती हैं वह भी अक्सर यही

कहेगी कि नहीं गऊ न लाना उसकी सेवा कौन करेगा, यह तो खर्चीला कार्य है। चाहे हमें बाजार से आधा पानी मिला हुआ या सपरेटे का दूध दूने पैसे खर्च कर ही मिले परन्तु हम गाय रखना स्वीकार नहीं करते। इसके साथ ही आज गन्दा तथा निम्नस्तर का खान-पान करने से हमारा कितना पैसा अनेक प्रकार के व्यसनों में रहने से बर्बाद हो रहा है यदि केवल वही पैसा गौ-रक्षा हेतु लगाया जाय तो भी गो-रक्षा हो सकती है। विज्ञान द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि गऊ का दूध एक सम्पूर्ण खुराक है, और उसमें A. B. C. D. E. सभी विटामिन मौजूद हैं। फिर हम दूसरी चीजों में पैसे खोयें और स्वास्थ्य नष्ट करें यह समझदारी नहीं है इसलिये आवश्यकता यह है कि हम केवल नारे मात्र लगाकर या आन्दोलन करके धार्मिक अन्ध श्रद्धा से ही गौ का नाम न लें, इसके लिये कुछ त्याग, परिश्रम तथा क्रिया-रूप में रचनात्मक कार्य भी करें, तभी गोवंश की वृद्धि हो सकेगी। यह अधिकतर आम जनता का कार्य है केवल सरकार को ही सारा दोष देना उचित नहीं। इस प्रकार गौ की उन्नति होगी और हमारा कल्याण होगा।

गौ-समस्या के हल के लिये सरकार से अनुरोध :

(१) संविधान में संशोधन किया जाय। जिससे सम्पूर्ण देश में गौहत्या बन्द हो।

(२) पंचवर्षीय योजनाओं में इसको प्रमुख स्थान दिया जाय। इसके लिए योजना बनाई जाय कि प्रत्येक प्रान्त और केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों में प्रति वर्ष इतने रुपये गौवंश की वृद्धि में लगाये जायँगे और डेरी फार्म खोले जायँ।

(३) जनहित की भावना का आदर करते हुए जहाँ चार

प्रान्तों में गौहत्या बन्द नहीं है वहाँ बन्द कराई जाय। केवल इतना ही कहने से नहीं चलेगा कि यह केन्द्र का मामला है। ऐसा नियम बनाया जाय कि हर गाँव में गोचर भूमि अलग से छोड़ी जाय। तथा वेजीटेबल घी में रंग मिला दिया जाय।

(४) आन्दोलन समाप्त करने के लिये लिखित रूप में सरकार वचनवद्ध हो कि हम शीघ्रातिशीघ्र गोहत्या इतने समय तक बन्द कर रहे हैं और कोई भी नया लाईसेंस किसी नये कसाईखाने के लिये न दिया जाय।

(५) जितनी भी चमड़े कम्पनी या फैक्टरियाँ हैं उनको आदेश दिया जाय कि वे जीवित पशु के चमड़े की कोई भी चीज नहीं बना सकतीं।

(६) गोशाला या डेरी फार्मों के साथ या दूसरी जगह इस प्रकार की जमीन गोचर भूमि के लिए हो उसमें आजकल के नवीन आविष्कारों से जो घास वगैरः उगाई जाती है वैसी घास उगाने के तरीके अपनाए जायँ। ये घासें कम समय में अधिक लम्बी और ज्यादा पैदा होती हैं तथा काफी गुणदायक हैं।

(७) भैंसों का और विकास न हो। जहाँ भैंसें और भैंस जोत के काम में लेने पड़ते हैं वहाँ इनको भेज दिया जाय। कुछ समय बाद यह स्वयं समाप्त हो जायँगी। यह भी गऊ के विकास में बाधक है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, रूस, जापान वगैरः में भैंसें नहीं हैं।

इस प्रकार यदि सरकार जनसाधारण की भावना का आदर करती हुई इसकी तरफ सक्रिय रूप से ध्यान दे तो अन्य समस्याओं की तरह यह समस्या भी शीघ्रताशीघ्र हल हो सकती है और हमें हर दृष्टि से इससे लाभ होगा।

गौ का महत्व—

(१) गाय का दूध अपने आप एक पूर्ण खुराक है। यह बल-बुद्धिवर्द्धक और स्फूर्तिदायक तथा अनेक रोग नाशक है।

(२) गाय का मूत्र और गोबर दोनों काम की चीजें हैं। गाय का मूत्र सैकड़ों रोगों का नाश करता है और गोबर खाद, उपले वगैरः बनाने तथा गृह लीपने के काम आता है। इसलिए दोनों ही काम की चीजें हैं।

(३) गाय के दूध में विटामिन ए, बी, सी, डी, ई ये सब मिलते हैं। जो हमारे शरीर-निर्माण करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

(४) गाय के दूध में किरोटीन, आयोडिन काफी होता है जो डाक्टरों के मत से मनुष्य के शरीर के लिए बहुत आवश्यक है। और गाय के दूध में जो लवण होता है वह भूख बढ़ाता है।

(५) गाय के दूध में प्रोटीन, स्टार्च, कार्बोहाइड्रेट, कैलसियम और फासफोरस ये सब पाए जाते हैं जो कि शहर के लिए बहुत आवश्यक होते हैं। इसके साथ ही गाय के दूध-घी में जो पीला रंग होता है यह स्वर्ण का अंश है ऐसा माना गया है। इसलिए इससे बहुत-सी चीजें हमें अनायास ही मिल जाती हैं जो हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

(६) आर्थिक दृष्टि से भी जो लोग इस भ्रम में हैं कि अपंग और वृद्ध गाय-बैलों से हमें बहुत हानि है। परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। प्रथम योजना राष्ट्रीय आय रिपोर्ट १९५२, पशु संख्या विवरण १९५६ के अनुसार एक गाय के गोबर, गोमूत्र का आर्थिक मूल्य वार्षिक ४८) रुपया है और सरकारी विशेषज्ञों के मतानुसार गोसदन में रखने का वार्षिक खर्च ३६) रुपया है।

(७) एक गाय करीब औसतन २० वर्ष जीवित रहे और इस अवधि में हम उसका आर्थिक दृष्टि से हिसाब लगायें तो आम तौर से इस प्रकार होगा।

पहले के तीन साल छोड़कर और आखिरी के दो छोड़ने से १४ साल में १४ बार यदि वह बच्छी या बच्छा देती है तो एक तो इनकी कीमत और दूसरे दूध १४ साल में ४ सेर औसत भी रखें तो ६१।।) मन होता है जिसकी कीमत वर्तमान में २७०००) रुपये होती है। इसी प्रकार गोबर, मूत्र और खाल तथा बच्छा और बच्छी की कीमत अलग है यदि हम यह सब रखें तो हमारे विचार से यह टोटल दूध समेत ३२०००) अन्दाज होना चाहिये। और चारा-दाने का व्यय इस अवधि में एक गाय पर करीब दस सेर चारा और दो सेर दाना। इस हिसाब से २० साल में १०००) मन चारा जो कि वर्तमान में ५) रुपये मन से ९०००) रुपये और १।। साल में दूध देने के दौरान दाना हुआ। २७०) मन जो कि ४०) रुपये मन से १००००) रुपये का हुआ। इस तरह टोटल खर्च १९०००) हुआ। अब इसे आप चाहे और थोड़ा कमती ज्यादा भी लगाएँ तब भी आप देखेंगे कि कितना लाभ एक गाय से हमें प्राप्त होता है। इसके अलावा जिस परिवार में गाय होगी वहाँ अन्न कम लगेगा। रोग कम होंगे तथा हमारा शरीर ठीक रहेगा। अब यदि फिर भी हम यह मानें कि गऊ समाज पर बोझ है और इससे नुकसान ही नुकसान है तो यह हमारी बड़ी नासमझी है। इस प्रकार से हमें करोड़ों रुपया वार्षिक आय गऊ से प्राप्त होगी।

यदि हम पीढ़ी दर पीढ़ी इसका लाभ देखना चाहें तो महर्षि स्वामी दयानन्द कृत गौ करुणानिधि में विस्तार से देख सकते हैं कि एक गाय से कितनी गाय और बैल हो जाते हैं।

इस प्रकार से आर्थिक, वैज्ञानिक, शारीरिक और आत्मिक हर दृष्टि से गाय हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी है। हाँ, यह ठीक है कि इसकी तरफ ध्यान न देने से आज यह विकट समस्या प्रतीत होती है परन्तु यदि इस पर पूर्ण विचार कर निःस्वार्थ भाव से क्रियात्मक रूप में कार्य किया जाय तो यह स्वयं समस्या न रहे अपितु हमारी कितनी एक दूसरी समस्याओं को हल करने में समर्थ होगी और देश का कल्याण होगा।

अतः आवश्यक है कि हम गऊ माता का खून इस पृथ्वी पर न बहाकर गाय के घी-दूध की नदियाँ बहाएँ जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र फले फूले और हम सुख-शान्ति से रहें।

———

चुनाव-प्रणाली

भारत १५ अगस्त सन् १९४७ को स्वतन्त्र हुआ। पश्चात् उसके नये संविधान का निर्माण हुआ। भारत का संविधान २६ नवम्बर सन् १९४९ को अपना लिया गया और २६ जनवरी १९५० को लागू किया गया। भारत का संविधान संसार के सभी संविधानों से बड़ा है। भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोक-तन्त्रात्मक-गणराज्य घोषिय किया गया। अब भारत अपने बाह्य तथा आन्तरिक कार्यों में किसी दूसरी शक्ति या राज्य के अधीन नहीं है। गणराज्य की वास्तविक शक्ति लोकमत माना गया और २१ वर्ष के प्रत्येक नरनारी को बिना किसी धर्म, जाति, सम्पत्ति, शिक्षा, अथवा भाषा के भेदभाव के मताधिकार दिया गया। अंग्रेजी काल में भारत में अधिक से अधिक १४ प्रतिशत जनता को मताधिकार प्राप्त था। भारत में १९०९ के ऐक्ट के अनुसार सबसे पहले साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली आरम्भ की गई। इसके अनुसार मुसलमानों को यह अधिकार दिया गया कि उनके प्रतिनिधि उनके द्वारा ही चुने जायँगे। १९१९ के ऐक्ट में सिक्खों को यह अधिकार दिया गया कि वे हिन्दुओं से अलग अपने प्रतिनिधि राज्यों और केन्द्र के विधान-मण्डलों में भेज सकें। १९३२ के साम्प्रदायिक पंचाट के अनुसार यह प्रणाली भारतीय ईसाइयों, आंगल भारतीय समुदाय और हरिजन या पिछड़ी हुई जातियों पर लागू की गई। इसके विरुद्ध पूज्य बापू ने अनशन

किया जिसका परिणाम यह हुआ कि हरिजन नेताओं और हिन्दू नेताओं में एक समझौता हो गया जिसको पूना समझौता कहा जाता है। इसके अनुसार हरिजनों को हिन्दुओं का ही भाग समझा गया। परन्तु उनके स्थान सुरक्षित कर दिए गए। नये संविधान में इस साम्प्रदायिक चुनाव-प्रणाली को बिल्कुल समाप्त कर दिया गया है। क्योंकि इस प्रणाली के अनुसार देश में साम्प्रदायिक विष उत्पन्न होता था। नये संविधान के अनुसार संयुक्त-चुनाव-प्रणाली अपनाई गाई। इसके अनुसार हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, अपने-अपने अलग प्रतिनिधि नहीं चुनते। बल्कि सब किसी भी उम्मीदवार को वोट दे सकते हैं। चाहे वह उम्मीदवार हिन्दू हो या मुसलमान अथवा और किसी धर्म से सम्बन्धित हो। नए संविधान के अनुसार हरिजनों और कबीलों के अतिरिक्त किसी भी जाति के लिए स्थान सुरक्षित नहीं किये गए। अब यह संविधान के ८ वें संशोधन के अनुसार १९७० तक सुरक्षित है। इसके बाद फिर विचार होगा। यद्यपि हमारे देश में बालिग होने के लिए २१ वर्ष की आयु मानी गई है परन्तु दूसरे देशों में यह आयु भिन्न-भिन्न है। जैसे फ्रांस में यह आयु २४, जापान में २५, डेनमार्क में २३ और रूस में १८ वर्ष मानी गई है। इंगलैंड और अमेरिका में हमारे देश की भाँति २१ वर्ष है। लोकतन्त्र को ठीक रूप से चलाने के लिए यह परम आवश्यक है कि चुनाव कुछ समय के पश्चात् नियमित रूप से होते रहें और वे चुनाव सर्वथा निष्पक्ष हों। भारत में प्रत्येक ५ वर्ष के बाद विधानसभा और लोकसभा के चुनाव होते हैं। नगरपालिकाओं का चुनाव प्रत्येक ३ वर्ष के बाद होता है। भारत का पहला आम चुनाव फरवरी १९५२ में हुआ। इस चुनाव में लगभग १७ करोड़ ६० लाख से अधिक मतदाताओं को वोट का

अधिकार दिया गया। संसार के इतिहास में लोकतन्त्रीय सरकार का यह सबसे बड़ा चुनाव था। इससे पहले इतना बड़ा चुनाव कभी नहीं हुआ। विभिन्न देशों के लोगों की नजर इस चुनाव पर लगी हुई थी। यद्यपि भारत के लोग प्रायः अशिक्षित थे और उनके लिए यह एक नया कार्य था। परन्तु फिर भी उन्होंने इसमें साहस और बुद्धि से काम लिया तथा लोकतन्त्र के पौधे को मजबूत किया।

तमाम देश में चुनाव-स्थान स्थापित किये गये तथा मतपेटियाँ रखी गईं। सरकार को काफी आदमी इस कार्य पर लगाने पड़े। प्रत्येक दल को अपना-अपना चुनाव-निशान बनाना पड़ा ताकि मतदाताओं को वोट डालने में आसानी हो। इस चुनाव में प्रत्येक पार्टी के अपने-अपने निशान इस प्रकार थे, जैसे—कांग्रेस का बैलों की जोड़ी, जनसंघ का 'दीपक', किसान मजदूर प्रजापार्टी का 'झोपड़ी', साम्यवादी दल का 'दरांती', अकाली पार्टी का 'तीरकमान', सोशलिस्ट पार्टी का 'वृक्ष' आदि। विधान सभा के लिये २५० रु० जमानत और लोकसभा के लिये ५०० रु० जमानत रखी गई। इस चुनाव में मतदाताओं ने ३२१८ प्रतिनिधि राज्यविधान सभाओं और लोकसभाओं के लिये चुने। इस चुनाव में लोकसभा में बहुमत कांग्रेस को मिला। दूसरा आम चुनाव फरवरी-मार्च १९५७ में हुआ। इस आम चुनाव में १९ करोड़ ३० लाख मतदाताओं को मताधिकार दिया गया। लोकसभा और विधानसभाओं के लिये इकट्ठे चुनाव हुए। लोकसभा की ५०० सीटों में से ३६५ सीटें कांग्रेस को मिलीं। शेष सीटें अन्य दलों तथा निर्दलीय उम्मीदवारों को प्राप्त हुईं। अतः केन्द्र में कांग्रेस का ही मंत्रिमण्डल बना।

तीसरा आमचुनाव फरवरी १९६२ में हुआ। इस तीसरे

चुनाव में कांग्रेस को लोकसभा की ३६१ सीटें मिलीं, दूसरे आम चुनाव से कुछ कम ! परन्तु केन्द्र में मन्त्रिमण्डल कांग्रेस का ही बना। इसमें प्रजा-समाजवादी दल को दूसरे चुनाव से कम सीटें मिलीं और जनसंघ को दूसरे से ज्यादा। निर्दलीय तथा अन्य दलों को दूसरे चुनाव से कम सीटें मिलीं।

इसके बाद फरवरी १९६७ में चौथा आम चुनाव हुआ। इस चुनाव के नतीजे काफी आश्चर्यजनक रहे। सत्तारूढ़ दल (कांग्रेस) को लोकसभा की काफी सीटों से हाथ धोना पड़ा। लोकसभा में तीसरे आम चुनाव में कांग्रेस को जहाँ ३६१ सीटें मिली थीं उसकी जगह अब इसको करीब २८१ सीटें प्राप्त हुईं और विरोधी दलों को करीब २४० सीटें। इसी प्रकार से देश के १७ राज्यों में से ८ राज्यों में गैरकांग्रेसी सरकारें बनी हैं। भारत की ५० करोड़ जनसंख्या में से सिर्फ २० करोड़ लोग ही कांग्रेसी राज्य सरकारों के शासन के अन्तर्गत हैं। पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, हरियाना में कांग्रेस सत्ताच्युत है ही, तथा दक्षिण के दो राज्यों मद्रास और केरल में भी कांग्रेस का शासन नहीं है। राजस्थान में अभी राष्ट्रपति शासन है, परन्तु वहाँ लोकतंत्रीय शासन का द्वार पुनः खुलने पर कांग्रेस सत्तारूढ़ बनेगी इसमें बहुत संदेह है बनने पर स्थिर नहीं रहेगी। पंजाब में गैरकांग्रेसी सरकार बनी। इस प्रकार से हम देखते हैं कि कांग्रेस की स्थिति बहुत कमजोर हो गई है।

अब यह शंका पैदा होती है और इन हालतों को देखते हुए यह स्वाभाविक भी है कि केन्द्र में अब जो कांग्रेस सत्तारूढ़ दल है यह केन्द्र की सरकार भी पाँच साल चल सकेगी या नहीं। क्योंकि जैसे हरियाना और यू. पी. में पहले पहल कांग्रेसी सरकार बनी और बाद में कुछ कांग्रेसी असंतुष्ट होकर विरोधियों में

आ मिले इस प्रकार वहाँ गैरकांग्रेसी सरकार बन गई। तब यदि केन्द्र में भी ऐसा ही कुछ हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि अब बहुमत होने में अन्तर बहुत कम है। परन्तु इसको तो भविष्य बतायेगा कि क्या होता है और क्या नहीं। लेकिन इन घटनाओं को देखते हुए मालूम पड़ता है कि देश में परिवर्तन बहुत तेजी से आ रहा है। इसका कारण जनता में असंतोष की भावना तथा जागृति होना है। असंतोष का कारण दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई मँहगाई, बेकारी, भ्रष्टाचार, अन्न-कष्ट तथा कुशल प्रशासन आदि की कमी है। इस प्रकार से जनता में असंतोष की भावना बढ़ती गई और उसने चुनाव आने पर कुछ सूझ-बूझ से काम लिया। यह बात दूसरी है कि विरोधी पार्टियाँ आज इस कार्य को सुचारु रूप से सम्भाल सकें या नहीं। परन्तु जनता काफी दिनों से अपनी जिस भावना को दबाए हुए थी उसे साकार रूप में प्रकट कर चुकी। अभी कई प्रान्तों मे विरोधी पार्टियों ने मिलकर सरकार बनाई है परन्तु यह बराबर चलती रहनी बहुत मुश्किल है। जहाँ एक ही पार्टी का बहुमत है वहाँ तो कार्य ठीक प्रकार से चल सकेगा। क्योंकि उनकी पालिसी एक जैसी होगी परन्तु जहाँ कई पार्टियों ने मिलकर साझा-दल बनाया है वहाँ चलनी मुश्किल है क्योंकि सब मामलों में एक मत होना असम्भव है। पृथक्-पृथक् पार्टियों की अपनी-अपनी नीतियाँ होती हैं। हाँ, केरल और मद्रास में विरोधी पार्टियों की सरकार का चलते रहना नजर आता है। वैसे तो अभी भी हम सही दिशा की तरफ नहीं हैं क्योंकि जब तक एक या दो ही विरोधी दल नहीं रहेंगे तब तक यह सब कार्य सुचारु-रूप से नहीं चल सकता। अब आवश्यकता है कि जो छोटो-छोटी पार्टियाँ हैं जिनका कहीं-कहीं कोई-कोई प्रतिनिधि बनता है तथा दूसरी वे पार्टियाँ जिनके विचार

एक दूसरी पार्टी से परस्पर काफी मिलते-जुलते रहें वे सब एक हो जायँ। उदाहरणस्वरूप, प्रजा समाजवादी पार्टी और संयुक्त सोशलिस्टपार्टी काफी मिलती-जुलती पार्टियाँ हैं और वह भी पृथक्-पृथक् चल रही हैं। इससे शक्ति विघटित होती है। अब समय ऐसा नहीं है कि हम छोटी-छोटी बातों को लेकर अलग-अलग रहें। अब आवश्यकता है कि इन बातों को भुलाकर हम संयुक्त रूप से चलें। यदि दोनों पार्टियाँ एक होतीं तो आज लोकसभा में इनका विरोधी पार्टी की जगह दूसरा स्थान होता। इसी प्रकार से अन्य पार्टियों को भी ऐसा ही करना चाहिए। इसके साथ ही आज यह गलत विचार धारा पनप रही है कि कहीं तो बंगाली-मारवाड़ी का प्रश्न उठता है, कहीं अकाली और गैर-अकाली का। इस प्रकार की भावना देश के लिये हित-कर नहीं है, हम सबको इस संकुचित दायरे से ऊपर उठ कर व्यापक दृष्टिकोण से चलना चाहिये। जो पार्टी इस प्रकार की विरोधी भावना का प्रचार करे, जनता को उस पार्टी का साथ नहीं देना चाहिये। बंगाली, आसामी, गुजराती, महाराष्ट्री वगैरः हम सब एक देश के ही हैं अतः हम सब एक हैं। किसी प्रान्त में कोई रहे उनमें वैमनस्यता कैसी ? ऐसी भावना से तो देश विघ-टन की तरफ चला जायगा और हम खंड-खंड हो जायँगे। इस प्रकार की भावनाएँ न बढ़ने पायें। साथ ही साथ आज जो पद-लोलुपता बढ़ती जा रही है यह भी घातक चीज है। यह किसी भी पार्टी के अन्दर नहीं होनी चाहिए। चाहे वह कोई भी पार्टी हो सत्तारूढ़ पार्टी हो या अन्य। कहना नहीं होगा कि आज कांग्रेस के पतन का कारण काफी अंश में यह पदलोलुपता भी है। कांग्रेस को भी इससे शिक्षा लेनी चाहिए। यही हालत यदि और पार्टियों में भी पनपे तो वे भी गिर जायँगी। इसलिये हर

पार्टी को इस पर निगाह रखते हुए कुछ ऐसे नियम और सिद्धान्त बनाने चाहिए कि यह चीज न पनप सके। जब हम देश-सेवा की भावना लेकर चले हैं तब हमारे अन्दर पद की इच्छा किसलिये हमें तो एक सिपाही की तरह उस पार्टी का आर्डर तथा एक सजग-प्रहरी की तरह देश की सेवा करते जाना चाहिये। इसमें चाहे हमारे पास कोई पद हो या न हो। ऐसा न होना चाहिये कि हम किसी पद के कारण किसी पार्टी से अलग हों अपितु जहाँ भी हमारा उस पार्टी से विचारों में मतभेद आये या अन्य कारण हों तभी अलगाव करें, पद के लिये नहीं। यह नहीं कि जब स्वार्थसिद्ध होता देखें तब तो उस पार्टी का बिल्ला लगा लिया जाय और जब स्वार्थ सिद्ध न हो तो उसे उतार कर फेंक देवें। ऐसी अवसरवादिता उचित नहीं।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि हमारे यहाँ चार आम चुनाव हो चुके हैं, परन्तु हम नहीं कह सकते कि आज जनता वोट का सही इस्तेमाल कर रही है। अभी भी वह अपने वोट का सही इस्तेमाल करके निष्पक्ष भाव से अपने प्रतिनिधि चुनकर नहीं भेज रही है। हालाँकि इस चौथे आम चुनाव में जनता ने काफी जागृति से काम लिया है, परन्तु फिर भी प्रजातन्त्र की जो मूल चीज वोट है, जनता अभी उसका सही रूप से प्रयोग नहीं कर रही है। वह नहीं जानती कि यह अमूल्य चीज है, जो पैसों के लोभ से जात-पाँत अथवा बिरादरी का पक्ष लेकर, किसी दबाव या धमकी में आकर, सत्तारूढ़ व्यक्ति या किसी पार्टी की अन्धश्रद्धा से तथा लम्बे-लम्बे और जोशीले भाषण सुनकर प्रयोग करने की चीज नहीं है। उनको नहीं मालूम कि यदि हम किसी स्वार्थवश अपने वोट को गलत इस्तेमाल करते हैं तो वह देश तथा इलाके के लिए गलत कार्य कर रहे हैं और देश को

अवनति की तरफ अग्रसर कर रहे हैं। मतदाताओं को सोचना चाहिए कि जिन प्रतिनिधियों को हम चुनकर भेज रहे हैं, देश के नियम-कानून उन व्यक्तियों के दिमाग और हाथों से बनते हैं। हमें सोचना चाहिए कि आज प्रजातन्त्र का युग है और प्रजातन्त्र के अन्दर हर बालिग को मताधिकार दिया गया है। प्रत्येक नरनारी को बिना किसी धर्म, जाति, सम्पत्ति, शिक्षा, भाषा तथा भेद-भाव के मत देने का हक है। इसलिए प्रजातन्त्र के अन्दर राज्यतन्त्र की तरह रानी के कोख से राजा पैदा नहीं होता। इसके अन्दर आम जनता की राय से राजा बनता है जिसमें न जाति-पाँत का बन्धन है न गरीब-अमीर का। इसलिए हमारा यह प्रथम कर्त्तव्य है कि हम अपने वोट का सही प्रयोग करें। इससे स्वस्थ प्रजातन्त्र का विकास हो सकेगा। इसके साथ ही प्रत्येक पार्टी निष्पक्ष भाव से अपने-अपने उन व्यक्तियों को टिकट देवें जिन व्यक्तियों का चरित्र ऊँचा हो, वे ईमानदार हों, अपने किसी निजी कार्य में फँसे हुए न हों। जो जनता का सही प्रतिनिधित्व कर सकें। जो सक्रिय हों, अपने इलाके की समस्याओं को समझ सकें तथा उसके प्रति अपनी आवाज बुलन्द कर सकें। इस प्रकार अपने इलाके की तरक्की से देश की तरक्की होगी तथा देश आगे बढ़ेगा। कहना नहीं होगा कि आज हमारी प्रगति की जो धीमी गति चल रही है उसका कारण यह है कि हमने सही मार्ग प्रदर्शन करनेवाले प्रतिनिधि नहीं भेजे हैं। उनके अन्दर कमजोरी यह है कि वे अपने इलाके की समस्याओं को ठीक तरह पेश करना नहीं जानते। इससे सरकार भी पूरी बात को न जान कर अनभिज्ञ रहती है। जैसे, किसी इलाके में स्कूल, कालिज या सड़क, बिजली वगैरः की आवश्यकता है और उस इलाके का प्रतिनिधि है। वहाँ अपनी

इस जरूरत को पेश नहीं कर रहा है तो वह इलाका ज्यों का त्यों ही रह जायगा। क्योंकि उसका प्रतिनिधित्व करनेवाला सक्रिय व्यक्ति नहीं है। अब इसमें सरकार का क्या दोष ? सरकार मंजूर करती है कि हमें इस प्रान्त को इतना रुपया विकास-कार्यों के लिए देना है। अब जो प्रतिनिधि जिस इलाके के हैं उनकी यह ड्यूटी है कि वे अपने हिस्से के हिसाब से उसको अपने इलाके में खर्च करायें। अगर वे ऐसा नहीं करते हैं तो उनका इलाका वैसे का वैसा ही रह जायगा। इसलिए आम ज़नता का यह फर्ज है कि वह जिस वक्त चुनाव का समय आये उस समय और किसी चक्कर में न जाकर एक ही दृष्टिकोण रखे कि हमें अपना वोट उस व्यक्ति को देना है जो हमारे इलाके क़ी पूरी सूझबूझ तथा मजबूती के साथ आवाज बुलन्द करनेवाला हो, जिसका दरवाजा उस इलाके की आम जनता के लिए बगैर किसी स्वार्थ के अपनी ड्यूटी को समझते हुए हरवक्त खुला रहे। जिसका एक ही उद्देश्य हो कि मेरा इलाका हर दशा में प्रगति करे चाहे वह प्रतिनिधि किसी भी पार्टी का हो उसका दृष्टिकोण यह न हो कि अपनी पार्टी के व्यक्तियों का ही कार्य करना है दूसरों का नहीं। या जिन्होंने मुझे वोट दिया है उनको भी लाभ पहुँचाना है। इस प्रकार का संकुचित दृष्टिकोण प्रगति में बाधक होगा। उसका कर्तव्य है कि उस इलाके का कोई भी व्यक्ति आए उसके उचित कार्य में जहाँ तक हो पूर्ण सहयोग प्रदान करें। इस प्रकार आप देखेंगे कि हमारा यह प्रजातन्त्र कितनी जल्दी सफल होगा तथा हम आगे बढ़ेंगे। हर वर्ष खुशहाल होगा तथा देश का कल्याण होगा।

———

जन्म, विवाह, मृत्यु-संस्कार

जन्म :

शरीर के व्यापार और क्रिया करने योग्य परमाणुओं का जब मेल होता है तब जन्म होता है। अर्थात् शरीर और जीवात्मा का संयोग जन्म है और शरीर तथा जीवात्मा का वियोग मृत्यु कहलाता है। जन्म होने के पश्चात् मनुष्य ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है त्यों-त्यों वह अपनी योग्यता और परिस्थिति के अनुकूल विद्या-अध्ययन, खेल-कूद तथा जीवन-संघर्ष की बातें सीखता हुआ आगे बढ़ता जाता है।

विवाह :

जब मनुष्य विद्याध्ययन का समय— ब्रह्मचर्य आश्रम—समाप्त करके यौवन काल में प्रविष्ट होता है और परमपिता परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि की वृद्धि करने के लिये विवाह जैसे पवित्र संस्कार को करके गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होता है तब हम यह देखते हैं कि जीवन के लिये आवश्यक, धर्मानुकूल, शास्त्रों का पवित्र संस्कार-विवाह भी आज कितना मलिन, अशान्त, भार रूप तथा पतन की तरफ ले जानेवाला हो गया है। उसके विकृत रूप से आज हम कितने परेशान और दुःखी हैं। आज विवाह, विवाह नहीं बल्कि एक सौदा हो गया है। जिस प्रकार व्यापार के लिये किसी वस्तु का सौदा किया जाता है वैसे ही आज लड़के और लड़कियों

के सौदे किए जाते हैं। इस गन्दे वातावरण को भलीभाँति जानते और प्रत्यक्ष देखते हुए भी कोई व्यक्ति इसका तिरस्कार करने को तैयार नहीं होता, तथा ऐसा करने में जरा भी हिचकिचाहट महसूस नहीं करता। तो क्या समाज इस घृणित प्रथा को तिलांजलि नहीं देगा ?

कहाँ तो ऋषियों का वह अमर संदेश कि विवाह उनका किया जाय जिनके गुण, कर्म, स्वभाव मिलते हों, अन्यथा नहीं। और कहाँ आज का यह उलटा रास्ता कि लड़की चाहे सुन्दर, सुशील, योग्य, घरेलू कार्यों में कितनी ही दक्ष तथा आज्ञाकारी क्यों न हो परन्तु उसका विवाह इसलिए नहीं होता कि उसके पिता के पास धन नहीं होता। आज इस प्रथा ने कितनी दर्दनाक घटनाएँ घटित की हैं। हम अखबारों में प्रतिदिन पढ़ते और सुनते हैं कि अमुक लड़की विवाह योग्य हो गई थी, और अर्था-भाव के कारण जब उसने यह देखा कि उसके माता-पिता दिन-रात इसी हेतु उदास और चिन्तित हैं कि लड़की शादी योग्य हो गई है और उसका विवाह-संबंध इसलिए नहीं हो रहा है कि उनके पास धन की कमी है, या वे इतना नहीं लगा सकते जितने की माँग की जा रही है; इसलिए उनकी उदासी और चिन्ता को हटाने का वह एक मात्र यही उपाय सोचती है कि अपने जीवन को ही समाप्त कर दिया जाय।

प्राचीन काल में राजे-महाराजों में, सेठ-साहुकारों में तथा गरीब-अमीर के सभी प्रकार के वर्गों में जो विवाह होते थे उनमें वे लोग सामर्थ्यानुकूल अपनी पुत्री को दान रूप में गायें, स्वर्ण तथा विविध प्रकार की चीजें प्रदान करते थे और यह धर्मानुकूल भी है कि माता-पिता अपनी पुत्री को अपनी सामर्थ्य से जो भी खुश होकर दें वह उचित है। उस समय आज की भाँति लिस्ट

बनाकर रुपए गिनाने की प्रथा नहीं थी। सगाई, टीका विवाह तथा विदाई के समय अलग-अलग निर्धारित रुपए नहीं गिनाए जाते थे। आज की प्रचलित दहेज-प्रथा अत्यन्त भयानक और घृणित है। आज उच्चवर्ग, मध्यम वर्ग, साधारण व्यक्ति तथा प्रत्येक जाति, खासकर वैश्य लोग और उनकी देखादेखी अन्य लोग भी बुरी तरह से इस कुप्रथा के शिकार हैं। यह प्रथा समाज को खोखला कर रही है।

दहेज प्रथा को प्रोत्साहन देनेवाला जेवरों का मोह—

दहेज-प्रथा को बढ़ावा देने में एक खास कारण जेवरों का मोह भी है। हमारे यहाँ भारत की स्त्रियाँ चाहे वह किसी भी वर्ग तथा जाति की हों सुविधानुसार न्यून या अधिक जेवर अवश्य पहनती हैं। ये जेवर अक्सर विवाह के समय बनवाए जाते हैं। चाहे वह खराब लगें या सुन्दर, चाहे अंग में फिट हों या न हों परन्तु उन्हें पहनना जरूरी है। क्योंकि जेवर को हमारे यहाँ सम्मान तथा बड़प्पन की दृष्टि से देखा जाता है। हमारे समाज की स्त्रियाँ जब भी कभी आपस में मिलती-जुलती हैं अथवा किसी विवाह-शादी पर्व-मेले या एक दूसरे के यहाँ मिलने-जुलने जाती हैं तो अक्सर उनकी बातें इसी विषय पर होती हैं कि आप यह चीज कहाँ से लाईं। मैंने यह अमुक जगह से मँगवायी है, अब आगे मुझे यह बनवाना है, अथवा जब लड़के की शादी होगी तब मैं भी इस नये फैशन की यह चीज बनवाऊँगी इस प्रकार का वातावरण बना रहता है। अब स्त्रियों में यहाँ तक हीन भावना आ गई है कि कोई चीज पास में न होने पर या कम होने पर वे किसी के यहाँ आती जातीं तक नहीं। और अक्सर देहातों में आप देखेंगे कि स्त्रियाँ स्वयं तो हर समय गंदी

और मैली-कुचैली साड़ी पहनती हैं और डब्बे में जेवर को रखा हुआ देखकर प्रसन्न होतीं तथा अपने आपको भाग्यशाली महसूस करती हैं। जेवरों का यह एक भयानक मोह बना हुआ है। एक समय था जब जेवरों का चढ़ाना ठीक था तथा उसके कई फायदे थे। उस समय जनसंख्या इतनी बढ़ी हुई नहीं थी और सोना-चाँदी का प्रयोग आज की भाँति वैज्ञानिक साधनों में नहीं होता था तथा यह प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता था। परन्तु आज हालत दूसरी ही है। आज रासायनिक, केमिकल तथा वैज्ञानिक साधनों में सोने की इतनी आवश्यकता तथा उपयोगिता है कि इसको अन्य कार्यों में प्रयोग नहीं करना चाहिए। विदेशी लोग हमसे कहीं ज्यादा समृद्धिशाली हैं उन्हें इसका मोह नहीं है। हमारे यहाँ के मध्यम वर्ग के परिवार में जितना सोना-चाँदी मिलेगा उसकी जगह विदेशों में एक अच्छे पैसेवाले के पास भी उतना नहीं होगा। सौन्दर्य की वृद्धि के कारण जेवर नहीं होते शरीर का स्वास्थ्य होता है। अनुमान है कि भारत को प्रति वर्ष करीब १०० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की हानि सोने के तस्कर व्यापार से उठानी पड़ती है। अब आप अनुमान लगाएँ कि इससे देश को कितनी हानि है। यदि हम इस दृष्टि से देखें कि हम इसको जितनी बार बनवाते हैं उतनी बार यह रुपए के बारह आने हो जाते हैं। इसके अलावा चोरी का भय बना रहता है, व्याज की दृष्टि से बहुत हानि होती है और अक्सर कुछ लोग तो सौदा, सट्टा वगैरः में हानि होने पर गहनों को बेचकर चुकाते हैं। इससे घर में कलह का वातावरण पैदा हो जाता है। इसलिए आवश्यक है तथा सरकार की नीति भी यही है कि इसका मोह छोड़ा जाय यह वर्तमान समय की माँग तथा आवश्यकता है। जो भाई इस कारोबार से रोज़ी कमाते हैं

सरकार को चाहिए कि उनको दूसरा काम दे, पैसे की मदद देवे ताकि वे अपना कार्य बदल सकें। इसके साथ ही विवाह एक ही स्त्री से कराया जाय। बहुविवाह अर्थात् दो तीन पत्नियाँ एक साथ रखना ठीक नहीं। चाहे बहुविवाह की प्रथा किसी भी धर्म, जाति, वर्ग आदि में हो, यह बुरी है, अच्छा यही है कि एक ही स्त्री से एक बार शादी की जाय। यदि कोई विधुर पुनः शादी करना चाहे तो वह विधवा स्त्री से ही शादी कर सके, आज-कल की तरह कुमारी कन्या से नहीं।

विवाह आज की तरह एक ही जाति में नहीं होने चाहिए। जैसे—आजकल वैश्य लोग वैश्यों में, ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों में तथा अन्य जाति वाले अपनी जाति में करते हैं। इससे हम जाति के अन्दर सीमाबद्ध हो जाते हैं और यह प्रथा विघटन तथा पृथक्वादिता की भावना को हमारे अन्दर पैदा कर देती है। आज बंगाल, आसाम, मद्रास तथा अन्य प्रान्तों के लोग परस्पर एक दूसरे से घृणा करते हैं तथा भाषा या अन्य किसी बात को लेकर आपस में झगड़ते हैं। एक प्रान्त का व्यक्ति दूसरे प्रान्त वाले व्यक्ति को विदेशी की भाँति अनुभव करता है। अब बात यहाँ तक बिगड़ गई है कि वह अपने प्रान्त से दूसरे प्रान्त-वाले को निकालना चाहता है। इससे देश की एकता में बाधा उत्पन्न होती है। आज यह समस्या काफी विकट हो गई है और जब तक हम एक दूसरे से हर बात में घुल-मिलकर नहीं चलेंगे तब तक ये बातें दूर नहीं हो सकतीं। प्राचीन समय में तो विदेशियों से भी शादी वगैरः के सम्बन्ध होते थे। हम सभी इस तथ्य को जानते हैं कि अर्जुन का एक विवाह अमरीका के शासक नागराज की कन्या से हुआ था। आज भी हमारे कई भाई जो डाक्टरी, इञ्जीनीयरी आदि की उच्च शिक्षा लेने के लिए

विदेशों में जाते हैं, उनमें कई एक वहीं शादी कर लेते हैं और वहीं रह जाते हैं। विदेश में बस जाना ठीक नहीं है। इससे देश को हानि पहुँचती है। बेशक, युवक लोग वहाँ जायँ और अच्छा यह है कि वे वहाँ जिस उद्देश्य से जाते हैं उसे पूरा करें और अपने देश में आकर अन्य जाति या अपनी जाति में शादी करें। और यदि वे विदेश में ही शादी कराते हैं तो अवश्य करें परन्तु वहाँ रहना नहीं चाहिए। वहाँ रहने से वह उद्देश्य पूरा नहीं होता जिसे लेकर वहाँ गये थे। इसलिए शादी उसी के साथ की जाय जो भारत आकर और भारतीय बनकर भारत में रह सके।

इसके साथ ही विवाहों में जो गन्दे तथा अश्लील गीत गाने की प्रथा अत्यन्त गलत है। गीत अवश्य गाये जायँ परन्तु वे अच्छे तथा शिक्षाप्रद हों। आजकल जो गीत पर्व तथा विवाह वगैरः में गाये जाते हैं उनको एक सभ्य पुरुष सुन नहीं सकता, उन्हें सुनकर उसकी गरदन शर्म से नीची हो जाती है। इसलिए अच्छा यह है कि सभ्य गीत गाये जायँ। इसके लिए आर्यसमाज ने कुछ सुधारक और शिक्षाप्रद गीत बनाकर एक अच्छा कार्य किया है। परन्तु ये बहुत कम प्रचलित हैं। अतः आवश्यकता है कि हमारे यहाँ के कवि इस तरफ भी कुछ ध्यान दें और अच्छे-अच्छे गीत तैयार करके समाज में उनका प्रचलन करें ताकि समाज से यह कुप्रथा दूर हो सके। लड़कियों के स्कूलों में भी पाठ्यक्रम के साथ-साथ ऐसी व्यवस्था हो कि वह समय-समय पर यह जान सकें कि ये गीत इस समय के लिए उपयुक्त हैं। इस प्रकार बचपन से ही अच्छे संस्कार डालने चाहिएँ।

देश में प्राचीन रूढ़िवादिता की मान्यताएँ भी बहुत ज्यादा फैली हुई हैं जो बिलकुल व्यर्थ हैं। उनसे इतने ज्यादा कार्य बढ़ जाते हैं कि जो आवश्यक कार्य समयानुकूल होने चाहिएँ वे

भी नहीं हो पाते। इसलिये इनको तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

इसी प्रकार आजकल विवाहों में ढुकाव के समय जो भंगड़ा, डांस आदि हमारे नवयुवक करते हैं यह बहुत ही अश्लील और अशोभनीय है। यह खुशी मनाने का सभ्य तरीका नहीं। ऐसा नहीं होना चाहिये। बरातों में भी कई भाई तेरह-तेरह चौदह-चौदह वर्ष की लड़कियाँ ले जाते हैं यह गलत प्रथा है।

निकासी या ढुकाव के समय आतिशबाजी वगैरः व्यर्थ की चीजें नहीं होनी चाहिएँ। इससे फजूलखर्ची भी बढ़ती है और वायुमंडल भी दूषित होता है। भोजन शुद्ध तथा सात्विक होना अनिवार्य है। पर्दा प्रथा नहीं होनी चाहिए। परन्तु आजकल फ़ेरी के समय नववधू के चित्र जो विवाह होनेवाले लड़के के दोस्त आदि लेते हैं यह उचित नहीं तथा सभ्यता के प्रतिकूल है। ये न लिए जायँ।

गृहस्थ-आश्रम की अवधि के बाद जब मनुष्य ५० वर्ष का हो जाय तब उसे वाणप्रस्थी बनना चाहिए और वेदादि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कर संन्यासी होकर धर्मोपदेश और समाज-सेवा करनी चाहिए।

मृत्यु-संस्कार :

जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होवे तब यह अत्यन्त आवश्यक है कि चाहे वह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या जाति का हो, चाहे वह साधु, संन्यासी, गृहस्थ या बच्चा ही (एक दिन का) क्यों न हो उसका दाह-कर्म करना ही उचित है। उसको दफ़नाना, जमीन में गाड़ना, किसी नदी आदि के जल में बहाना तथा मृतक शरीर को पशु-पक्षी आदि को डालना यह सब गलत और वैज्ञानिक दृष्टि से हानिकारक है। ऐसा नहीं करना चाहिए।
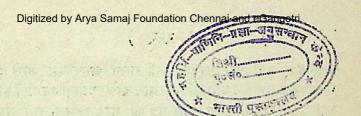
लोकतन्त्र में हिंसात्मक आन्दोलन

आजादी-प्राप्ति के लिये अंग्रेज हुकूमत से एक लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी, जिसके अन्दर अनेक प्रकार के आन्दोलन, हड़तालें, सत्याग्रह और अनेक कुर्बानियाँ करके भयंकर यातनाएँ, दमनचक्र तथा गोली-लाठी खाते हुये हमने अपनी माँग कायम रखी और अन्त में देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कर आजाद कराया।

किसी भी माँग को पूरी करने के लिये आन्दोलन होना स्वाभाविक है। हम बचपन से ही देखते हैं कि बच्चा भी जब कभी भूख से पीड़ित होता है तो वह रोता है, चिल्लाता है और जब तक उसको दूध न पिला दिया जाय वह मचलता ही रहता है। तब यह स्वाभाविक ही है कि हर प्राणिमात्र को अपनी आवश्यक माँग के लिये प्रयास या संघर्ष करना पड़ता ही है। आज हमारा देश आजाद है और यह ठीक है कि आज इसके सामने खाद्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, आरोग्यता, सिंचाई के साधन, आर्थिक, बिजली-नल, भाषा-विवाद आदि अनेक प्रकार की समस्यायें खड़ी हैं जिनके लिए समय-समय पर आन्दोलन, हड़तालें आदि होती हैं और उनको हल करने के लिए जनता सरकार से आग्रह करती रहती है।

परन्तु आज जो आन्दोलन होते हैं और जो आन्दोलनों का रूप है क्या यह समस्याओं के हल करने का सही रूप है? हमारा उत्तर है—नहीं, उलटे यह उलझन है। इसमें जहाँ कुछ दोष सर-

कार के हैं वहाँ आन्दोलनकर्त्ता भी गलत आन्दोलन करते हैं। आज के आन्दोलन अंग्रेजों के समय वाले आन्दोलन नहीं होने चाहिएँ। अब तो पिता और पुत्र की तरह रहने से समस्याओं का समाधान हो सकता है। जैसे पिता-पुत्र को दंड देता है, है तो वह हिंसा ही, परन्तु वह नसीहत के लिए है। ऐसे ही सरकार पिता है, आन्दोलन कर्त्ता पुत्र हैं और वह उनको उसी हिसाब से दण्ड दें, न कि विदेशी शासक अंग्रेजों की तरह। चाहे जिस पार्टी की तरफ से जो कोई भी माँग हो वह सरकार के खिलाफ हो या अन्य किसी पार्टी के विरुद्ध, उसके लिये ऐसी व्यवस्था हो कि वह पहले यदि प्रान्त के क्षेत्र के अन्तर्गत है तो प्रान्तीय सरकार को, या केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत हो तो केन्द्रीय सरकार की माँगों का पूरा विवरण दिया जाय और कहा जाय कि यदि इन्हें पूरा न किया गया तो हमें इन्हें मनाने के लिए दूसरा ढंग सोचने पर विवश होना पड़ेगा। उसको सीधे आंदोलन का रूप न दे दिया जाय। जब वे माँगें प्रान्तीय सरकार या केन्द्र के पास पहुँचें तो सरकार को चाहिए कि सतर्कता के साथ उनका अध्ययन करके तुरन्त जवाब दें कि आपकी जो माँगें आई हैं उनका पूर्ण रूप से अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं और हमें इसमें ये-ये कठिनाइयाँ हैं। इन्हें इस तरह से मान सकते हैं या नहीं मान सकते। जैसा भी उचित समझा जाये वैसा संतोषजनक जवाब दिया जाय ताकि वह चीज आगे न बढ़ने पावे। ये कार्य दोनों तरफ से निष्पन्न किए जायँ, उसमें अपनी स्वार्थ-सिद्धि न हो। सब कुछ राष्ट्रीय हित के आधार पर हों। जो भी माँगें पेश की गई हों और जवाब दिया गया हो उन सब बातों से जनता को अवगत कराया जाय ताकि जनता गुमराह न रहे। आजकल ऐसा भी हो जाता है कि लोग अपनी नेतागिरी अथवा

अपनी पार्टी को आगे बढ़ाने के लिए या स्वार्थ सिद्धि के लिए कोई आन्दोलन शुरू कर देते हैं और इधर-उधर की बातें बनाकर जनता को गुमराह कर देते हैं। जनता को यह भी नहीं मालूम होता कि आखिर बात क्या है, यह बात हमारे या राष्ट्र के हित में है भी या नहीं। जनता जोशीले भाषण सुनकर उनके पीछे हो जाती है और इस तरह आन्दोलन का रूप बन जाता है जिससे उनको स्वयं भी और राष्ट्र को भी अपार हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार गलत ढंग से आन्दोलन नहीं होने चाहिए।

यदि सरकार के उत्तर से माँग पेश करनेवालों को संतोष नहीं हो और उनको मजबूरन आन्दोलन करना ही पड़े तो वह आन्दोलन व्यवस्थित रूप से तारीख नियुक्त करके और सरकार को सूचित करके होना चाहिए ताकि सरकार पुलिस वगैरः का उस व्यवस्था के लिए पूर्ण इन्तजाम कर सके। आन्दोलन सदा शान्ति के साथ आरम्भ किए जायँ। इस प्रकार से जो आन्दोलन होगा उसमें सब कार्य शान्तिपूर्वक नक्की हो जायगा और उसका रूप विकृत नहीं होगा।

आज जितने भी बड़े नेता हैं चाहे वे किसी भी पार्टी के हैं, उन सबका लक्ष्य एक ही है कि देश प्रगति करे। फिर आज हमारे ये आन्दोलन हिंसात्मक क्यों होते जा रहे हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि हम कुछ गलत रास्ते की तरफ अग्रसर हो जाते हैं। इसमें आन्दोलनकर्त्ता और सरकार दोनों गलती करते हैं। आज सरकार का भी यह फर्ज है कि वह लोकतन्त्र का नारा लगाकर नेतृत्व न करे। हम जानते हैं कि लोकतन्त्र के आधार पर मुसोलिनी ने एक पार्टी बनाई। परन्तु डिक्टेटरशिप के कारण वह हिंसा में प्रवृत्त हो गई जिससे जो कुछ हुआ उसका इतिहास साक्षी है। इसी प्रकार हिटलर लोकतन्त्र से बना परन्तु

डिक्टेटरशिप से हिंसा में आया और सदा के लिए खत्म हो गया।

इसके साथ ही इन आन्दोलनों के लिए पुलिस भी जिम्मेदार है। वह भी यह कम महसूस करती है कि आज वह प्रजातन्त्र के अंतर्गत है। पुलिस का समय आने पर वह भी अंग्रेजों के समय के ही हथकंडे अपनाती है। ऐसा नहीं होना चाहिये। चाहे ये आन्दोलन भाषा के, प्रान्त के, मैसूर-महाराष्ट्र के, अथवा कृष्णा-गोदावरी के पानी के, स्वर्ण-नियंत्रण के, गोहत्या के, अकालियों के, छात्रों के हों या नक्सलबाड़ी, सिलीगुड़ी तथा पश्चिम बंगाल आदि में भिन्न-भिन्न रूप से खाद्य-समस्या के लिए घेराव रूप में हों, ये सबके सब भयावह हैं। इस प्रकार चलने से हमारे अन्दर पृथकवादिता की भावना आती है, एक दूसरे के प्रति प्रेम-भाव घटता है तथा खिंचाव पैदा होता है।

यह ठीक है कि आन्दोलन किसी भी असन्तोष की अभि-व्यक्ति के कारण होते हैं परन्तु यदि उसमें कोई स्वार्थ या अपनी लीडरी की गन्ध मात्र भी होती है तो वह अत्यन्त हानिकारक हो जाता है। उसके अन्दर यह सतर्कता रखी जाय कि वह राष्ट्र-हित के लिये हो और साम्प्रदायिकता तथा संकुचित दृष्टिकोण से दूर हो। वह हिंसक प्रवृत्तियों से दूर, शान्त तथा समाज के सर्वांगीण विकास के लिये हो ताकि समाज एकता के सूत्र में बँधा हुआ प्रगति की ओर अग्रसर हो।

———